हिन्दी-पत्रकारिता : राष्ट्रीय नव उद्‌बोधन

डा० श्रीपाल शर्मा
एम० ए०, पी-एच० डी०

राज पब्लिशिंग हाउस
दिल्ली-११००३१

मेरी लेखनी

के

प्रेरणा-स्रोत

श्रद्धेय गुरुजी

प्रो० वी० डी० गौतम

के

कमल-चरणों

में

सश्रद्ध समर्पित

आशीर्वचन

प्रस्तुत पुस्तक मेरे प्रिय छात्र डा० श्रीपाल शर्मा के अथक प्रयास की महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है। इसमे मुख्यत: उत्तर प्रदेश की हिन्दी पत्रकारिता के योगदान का विवेचन है। आधुनिक नव-जागरण में इस प्रदेश की हिन्दी पत्रकारिता का महत्त्वपूर्ण योग रहा है। डा० शर्मा ने भूली-बिसरी हिन्दी पत्र-पत्रिकाओं की कड़ियाँ खोजकर हिन्दी पत्रकारिता के प्रत्येक पहलू पर, इस पुस्तक में गवेषणात्मक, दुर्लभ, प्रामाणिक और आधिकारिक सामग्री प्रदान की है। अनेक अज्ञात और अल्पज्ञात पत्रों तथा विस्मृति के गर्भ में विलीन पत्रकारों की कीर्ति-रक्षा की दृष्टि से इस पुस्तक का ऐतिहासिक महत्व है। आरम्भ से ही पत्रकारिता और साहित्य एक-दूसरे के पूरक रहे हैं। इसमे सन्देह नही कि साहित्य के विकास में पत्र-पत्रिकाओं ने मुख्य भूमिका निभाई है। इस प्रकार प्रस्तुत पुस्तक का महत्व इतिहास के साथ-साथ हिन्दी साहित्य की दृष्टि से भी है।

मेरे विचार से यह पुस्तक इस प्रदेश की हिन्दी पत्रकारिता पर प्रथम प्रयास है, जिसमें यह तथ्य प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है कि हिंदी पत्रकारिता की कहानी भारतीय राष्ट्रीयता की कहानी भी है। हिन्दी पत्रकारिता के आदि उन्नायक समग्र राष्ट्रीय चेतना के प्रति पूर्ण रूपेण सचेत थे। फलतः विदेशी सरकार की दमन-नीति का उन्हें शिकार होना पडा था और यातनाएँ भी झेलनी पड़ी थी।

डॉ० शर्मा ने भारत मे प्रेस की स्थापना, उत्तर प्रदेश में हिन्दी पत्रकारिता के उद्भव-विकास, सामाजिक सुधार, राजनैतिक चेतना और हिन्दी गद्य की सशक्त शैली के विकास में हिन्दी पत्रकारिता के योगदान आर्यसमाज की हिन्दी पत्रकारिता, हिन्दी पत्रकारिता और धर्म, भारत के अन्य प्रदेशो मे हिन्दी पत्रकारिता एवं २०वी सदी में हिन्दी पत्रकारिता पर संक्षिप्त, परन्तु गम्भीर विवेचन किया है। इसके साथ ही पुनर्जागरणकालीन समस्त राष्ट्रीय आकाक्षाओं को प्रस्तुत करने का प्रयास किया है।

मुझे आशा है कि आधुनिक इतिहास तथा हिंदी के शोध-अध्येताओं, विद्यार्थियों और पत्रकारों के लिए यह पुस्तक आलोक-स्तंभ सिद्ध होगी।

डॉ० शर्मा शोध-लेखो के माध्यम से भी इस क्षेत्र मे उल्लेखनीय ख्याति प्राप्त करते जा रहे हैं। वास्तव में ये आशीर्वाद और बधाई के पात्र हैं। मेरी हार्दिक शुभकामना है कि डॉ० शर्मा इसी प्रबुद्ध भाव से इतिहास की सेवा करते रहें। मैं इनके उज्ज्वल भविष्य की कामना करता हूँ।

—विष्णुदत्त गौतम

उप-प्रधानाचार्य, रीडर, एवं अध्यक्ष इतिहास विभाग

एम० एम० एच० कालेज, गाजियाबाद

आभार

प्रस्तुत पुस्तक में उत्तर प्रदेश, जिसे १ अप्रैल, सन् १९०२ ई० से पूर्व नार्थ वेस्टर्न प्रोविन्सिज के नाम से सम्बोधित किया जाता था, की हिंदी पत्रकारिता जिसने सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक एवं साहित्यिक अर्थात् समग्र राष्ट्रीय चेतना को आत्मसात् कर प्रतिबिम्बित किया, के अनुशीलन के माध्यम से उसके मूल स्वरों को विवेचनात्मक, गवेष्णात्मक, प्रामाणिक एवं आधिकारिक रूप मे प्रस्तुत किया गया है।

भारतीय नव-जागरण का अनुभव सर्वप्रथम बगाल-भूमि ने किया। स्वभावतः भारतीय पत्रकारिता की जन्म-भूमि बगाल ही बन गई और हिंदी पत्रकारिता का उद्भव और विकास बंगाल मे ही हुआ। परन्तु उत्तर प्रदेश मे हिन्दी पत्रकारिता का जन्म १९ वर्ष देर से हुआ। यहाँ से सर्वप्रथम राजा शिवप्रसाद 'सितारे हिंद' ने अपना 'बनारस अखबार' (साप्ताहिक) जनवरी, १८४५ ई० मे काशी से प्रकाशित किया और यही से इस राज्य की हिंदी पत्रकारिता के उद्भव-विकास का शुभारम्भ होता है, परन्तु धीमी गति से। तत्पश्चात् यह राज्य हिंदी पत्रकारिता का गढ बन गया। १९वीं शती के उत्तरार्द्ध में मध्यम वर्ग के शिक्षित वर्ग ने, जो सीमित था, ने पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से समाज-सुधार, राजनैतिक अधिकारों, आर्थिक-दशा तथा हिंदी साहित्य के विकास हेतु अभियान चलाया।

हिंदी पत्रकारिता के अनुशीलन और इतिहास लेखन का श्रीगणेश भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के फुफेरे भाई बाबू राधाकृष्णदास ने १९वी शती के अन्तिम दशक मे किया था। इनकी पुस्तक—'हिंदी भाषा के सामायिक पत्रों का इतिहास' एक विवरण प्रधान इतिहास है। इस दिशा मे दूसरा प्रयत्न बाबू बालमुकुन्द गुप्त का—'हिंदी अखबार' का इतिहास है। हिंदी पत्रकारिता के विकास-क्रम की चर्चा आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के—'हिंदी साहित्य के इतिहास' में भी की गई। हिंदी पत्रकारिता पर सर्वप्रथम अनुसंधान कार्य डॉ० रामरत्न भटनागर ने 'दा ग्रोथ ऑफ हिंदी जर्नलिज्म' अंग्रेजी भाषा में लिखा। सम्पादकाचार्य पं० अम्बिका प्रसाद ने 'समाचार-पत्रों का इतिहास' लिखा।

इस दिशा में कुछ अंग्रेजी भाषा में लिखे कार्य भी सराहनीय है। सर जार्ज वार्ड का—'दा नेटिव प्रेस ऑफ इंडिया'; पी० एच० मुनेरेने का—'हिस्ट्री ऑफ एंग्लो इंडियन प्रेस'; एच० पी० घोष का –'प्रेस एंड प्रेस लाज'; मार्गेट बर्नस् का—'दा इंडियन प्रेस'; ए० डी० मनी का - 'जर्नलिज्म इन माडर्न इंडिया'; एस० पी० सेन का—'दा इंडियन प्रेस'; डॉ० नाविक कृष्णा मूर्ति का—'इंडियन जर्नलिज्म (ओरीजन, ग्रोथ, एंड डवलपमेंट ऑफ इंडियन जर्नलिज्म) फ्रोम अशोक टू नेहरू'; जे० नटराजन का—'ए हिस्ट्री भाफ इंडियन जर्नलिज्म'; एस० नटराजन का—'ए हिस्ट्री ऑफ इण्डियन प्रेस'; पैंटलोवेट का—'जर्नलिज्म इन इंडिया' और आडिट ब्यूरो का—'दा इण्डियन प्रेस' आदि हैं। ये उपरोक्त कार्य भारतीय पत्रकारिता के क्षेत्र में प्रशंसनीय योगदान हैं। परन्तु सभी विद्वान लेखकों ने प्रायः सम्पूर्ण भारतीय पत्रकारिता के

सामान्य इतिहास को लिखा है। उत्तर प्रदेश की हिंदी पत्रकारिता को अंश-मात्र कहीं-कही संक्षिप्त रूप में लिखा है।

इस क्षेत्र में कुछ शोध-ग्रंथों में प्रान्तीय पत्रकारिता का विवेचन भी किया गया है। इनमें डॉ० कृष्ण बिहारी मिश्र का प्रकाशित शोध-प्रबन्ध —'हिंदी पत्रकारिता: जातीय चेतना और खडी बोली साहित्य की निर्माण-भूमि' है, जिसमें अधिकतर बल साहित्य पर दिया गया है। वे बंगाल प्रदेश के कुछ हिंदी-पत्रों तक ही सीमित रहे। इस दिशा मे मैंने भी—'दा कान्ट्रीब्यूशन ऑफ प्रेस इन दा ग्रोथ आफ सोशियल एंड पोलीटिकल कान्सियसनैस इन यू० पी० एण्ड पंजाब : १८५८-१९१०' (अप्रकाशित) नामक विषय पर पी-एच० डी० की उपाधि फरवरी १९७६मे प्राप्त की। इस शोध-प्रबन्ध में मैंने उत्तर प्रदेश और पंजाब की सभी भाषाओ की पत्रकारिता का योगदान दिखाया और उत्तर प्रदेश की प्रमुख हिन्दी भाषा की पत्रकारिता को सीमित रूप में प्रस्तुत किया है।

हिंदी पत्रकारिता पर डॉ० वेदप्रताप वैदिक द्वारा सम्पादित—'हिंदी पत्रकारिता : विविध आयाम' नामक वृहद् ग्रंथ प्रकाशित हुआ है। इस ग्रंथ में उत्तर प्रदेश की हिंदी पत्रकारिता पर में केवल एक लेख –'उत्तर प्रदेश की हिंदी पत्रकारिता' दिया गया है। परन्तु एक लेख द्वारा इतने बडे हिंदी भाषी राज्य की हिंदी पत्रकारिता के सभी पक्षो को उभारा तथा उजागर नही किया जा सकता। अतः यह कहा जा सकता है कि कुल मिलाकर हिंदी पत्रकारिता के योगदान का मूल्यांकन सन्तोषजनक नही है।

सामग्री-संकलन के उद्देश्य से विभिन्न सामग्री-स्रोतों पर जाना पड़ा। इन स्थानों पर जिन सज्जनो ने सहयोग किया, उनका मैं हृदय से आभारी हूँ।

एम० एम० एच० कालेज, गाजियाबाद के प्रधानाचार्य एवं हिन्दी के प्रख्यात विद्वान डॉ० जयचन्द्र राय ने मुझे सदैव आगे बढ़ने की प्रेरणा प्रदान की। मैं उनका अत्यंत आभारी हूँ।

मेरे परम श्रद्धेय गुरुजी तथा इतिहास के प्रख्यात महामनीषी प्रो० वी० डी० गौतम, उप-प्रधानाचार्य, रीडर एवं अध्यक्ष इतिहास विभाग, एम० एम० एच० कालेज, गाजियाबाद ने मुखर आशीर्वचन मे मुझे प्रेरणा और दिशा-दृष्टि दी है। भविष्य में भी मुझे श्रद्धेय गुरुजी का आशीर्वाद एवं स्नेह-प्रकाश प्राप्त होता रहे, यही मनोकामना है। मैं उनके चरण कमलों में अपने श्रद्धा सुमन अर्पित करता हूँ।

डॉ० वेदप्रताप वैदिक के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करता हूँ, जिन्होंने प्रस्तुत पुस्तक की योजना बनवाई और इस कार्य हेतु निरन्तर प्रोत्साहित करते रहे।

पूज्य पं० फतहचंद्र शर्मा 'आराधक', तथा श्री डालचन्द्र शर्मा का मैं अत्यंत आभारी हूँ, जिन्होंने प्रस्तुत पुस्तक के सम्बन्ध में समय-समय पर सुझाव प्रदान किए। मेरी पुत्री कुमारी सुमन और पुत्र नीरज मैत्रेय बधाई के पात्र हैं, जिन्होंने पुस्तक के लेखन-कार्य में सहयोग दिया। मैं राज पब्लिशिंग हाउस के सहयोगी श्री श्रीकृष्ण 'मायूस' के प्रति आभार प्रकट करता हूँ, जिन्होंने इस पुस्तक के प्रकाशन को दिशा दी।

—श्रीपाल शर्मा

विषयानुक्रमणिका

१ भारत में प्रेस की स्थापना

१. **ईस्ट इंडिया कम्पनी से पूर्व प्रेस**--जब से मानव समाज एक राज्य के रूप में संगठित हुआ है तभी से राजनीतिज्ञ समाज के विचारों को मान्यता देते जा रहे हैं। जो भी शक्ति में होता है, वह प्रेस को किसी-न-किसी रूप में विकसित करने तथा उसका उपयोग करने का प्रयास करते आए हैं ताकि सरकार की नीतियों से सामान्य जनता सूचित हो जाए, सरकार जनता की आवश्यकता से अवगत हो, सरकार को उसकी नीतियों की प्रतिक्रिया का ज्ञान हो तथा दिन-प्रति-दिन की घटनाओं से जनता एवं सरकार दोनों अवगत हों। आवश्यकता आविष्कार की जननी है। प्राचीन भारत के महान् राजनीतिज्ञ चाणक्य ने राजा चन्द्रगुप्त मौर्य को सलाह दी थी कि राज्य में क्या हो रहा है यह जानने के लिए कार्य-कुशल गुप्तचरों को रखें।[1] महान् अशोक ने इस कार्य को करने के लिए शिला-लेखों तथा गुप्तचरों का प्रयोग किया।[2] ये सब तत्कालीन परिस्थितियों मे आधुनिक प्रेस की भांति कार्य करते थे।

गुप्तचर विभाग शक्तिशाली बनाया गया ताकि राजा का आतंक विकसित हो। अबुल फजल के अनुसार निरंकुश राजाओं ने आरम्भ से समाचार-सेवा को इसीलिए मान्यता दी।[3] अतः एक न्यूज-लेटर संस्था मुगल राजाओं से पहले ही विकसित थी।[4] उनके काल में न्यू-राइटर अथवा वाकया-नवीसों को प्रत्येक जिले में नियुक्त किया हुआ था। *उनकी रिपोर्ट के आधार पर निर्णय लिए जाते और इम्पीरियल नीतियों को* निर्धारित किया जाता था।[5] प्रेस की क्रिया और उसकी स्वतन्त्रता औरंगजेब के काल में भी पाई जाती है। चूंकि बादशाह ने एक लेखक से प्रश्न पूछा था कि उसने उसके

---

१. बेनीप्रसाद : 'एजीज आफ इम्पीरियल यूनिटी', प्रथम सस्करण, बम्बई, १९५१, पृ० ३२५
२. ए० एस० अल्तेकर : 'स्टेट एण्ड गवर्नमेंट इन एनसियन्ट इण्डिया', तृतीय सस्करण, १९५८, पृ० १०७
३. अबुल फजल : आईन-ए-अकबरी (ब्लोचमैन द्वारा अनुवादित) कलकत्ता, १९२६
४. जे० नटराजन : हिस्ट्री आफ इण्डियन जर्नलिज्म, पृ० २
५. अबुल फजल : आईन-ए-अकबरी (ब्लोचमैन द्वारा अनुदित)

पोते की आलोचना क्यो की ?[1] इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि भारत में ईस्ट इण्डिया कम्पनी के आने से पूर्व प्रेस की स्थापना हो चुकी थी।

२. **यूरोपियन का आगमन और आधुनिक प्रेस** पोर्चुगीज लोग इस देश मे अंग्रेजों से पूर्व आकर व्यापार ही नहीं बल्कि एक बड़े भू-भाग पर राज भी करने लगे थे। पोर्चुगीज वास्को-डी-गामा को इस ऋषि-भूमि को खोज निकालने का श्रेय जाता है। इस खोज के पश्चात् ही पोर्चुगीज यहाँ पर आये थे। तत्पश्चात् यूरोपियन लोगों के पैर यहाँ कैसे जमे, इतिहास इस बात का साक्षी है कि सन् १६६२ में इंग्लैंड के राजा चार्ल्स द्वितीय ने पोर्चुगाल की राजकुमारी से विवाह किया था और दहेज मे बम्बई का टापू प्राप्त किया। इससे स्पष्ट है कि अंग्रेजों के आगमन से बहुत पूर्व ही पोर्चुगाली लोगों ने भारत मे अपने साम्राज्य की नींव डाली थी। १५ अगस्त, १६४७ में अंग्रेजों का प्रभुत्व समाप्त होने पर भी वे गोआ, डामन और ड्यू में कब्जा जमाये रहे, इस प्रभुत्व का अन्त स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् हुआ।

पोर्चुगीज लोग भारत में अपने राज को विस्तृत नही कर पाये, क्योकि इनके पादरी धर्मान्ध थे, उन्होंने हिन्दुओं पर अनेकों क़हर और अत्याचार ढाये। उन्होंने बम्बई के पास एलीफेंटा नामक एक छोटे-से टापू के मंदिर की मूर्तियों की दयनीय दशा कर दी। किसी की नाक कटी है तो किसी का हाथ या पैर कटा है। परन्तु जहा पोर्चुगीज पादरियों ने अत्याचार किये, वहाँ कुछ मिशनरियों ने धर्म-प्रचार हेतु यूरोप से दो प्रेस मंगवाये जो सन् १५५० में यहां पहुँचे। सर्वप्रथम प्रेस गोआ में लगाया गया और ईसाई धर्म की पुस्तक भारतीय मलयालम भाषा में छपी, जो सेंट फ्रांसिस सैक्वीयर ने लिखी।[2] दूसरा प्रेस सन् १५७८ मे तमिलनाडु के तिनेवेली जिले के पोरी-कोल नामक स्थान पर स्थापित किया गया। इससे भी मिशनरी की धार्मिक पुस्तकें ही प्रकाशित होनी आरम्भ हुई।[3] तीसरा प्रेस मालाबार के विपिकोटा में पादरियों ने सन् १६०२ में स्थापित किया।[4] सन् १६१६ में जब अंग्रेज भारत पहुँचे, उस वर्ष भी बम्बई में पोर्चुगीजों ने एक प्रेस खडा किया था।[5] सन् १६७६ तक पोर्चगीजों द्वारा फिर किसी प्रेस की स्थापना का पता नहीं चलता। परन्तु उसी वर्ष विचूर के दक्षिण अम्बलकाड में एक और प्रेस लगाया जिससे कोचीन—तमिल शब्दकोष प्रकाशित हुआ, जो एक साहित्यिक कार्य था।[6]

ईसाई पादरियो से उत्साहित होकर हिन्दुओं ने भी अपने धर्म-ग्रन्थ मुद्रित और प्रकाशित करने का साहस किया। काठियावाड़ के भीमजी पारख ने सन् १६६२

---

१. अबुल फजल : आईन-ए-अकबरी (ब्लोचमैन द्वारा अनुवादित)
२. डा० रामरतन भटनागर : 'राइज एण्ड ग्रोथ ऑफ हिन्दी जर्नलिज्म (१६४७)
३ वही, पृ० ११
४. अम्बिकाप्रसाद बाजपेयी : 'समाचार पत्रो का इतिहास', प्रथम संस्करण, पृ० ६
५. वही, पृ० ६
६. डा० रामरतन भटनागर : पूर्व उद्धृत, पृ० ११

में गवर्नर जनरल से प्रार्थना की कि हिन्दु-धर्म ग्रन्थ छापने के लिए मुझ बम्बई मे छापाखाना लगाने की अनुमति दी जाए। इस कार्य हेतु उन्होंने मुद्रण-विशेषज्ञ हेनरी वालेस को इंग्लैंड से बुलाया था।[1] इससे यह स्पष्ट जान पडता है कि दक्षिण एवं पश्चिम मे मुद्रण कार्य की अच्छी प्रगति हुई थी। सन् १७२२ मे तंजौर जिले के तिनकोवर स्थान पर डेनमार्क के पादरियों ने प्रेस खोला था। इसमे पहले रोमन टाइप में छपाई होती थी, तत्पश्चात जर्मनी मे। (न्यू टेस्टामेंट) तमिल अक्षरों मे छपी।[2]

जहाँ पोर्चुगीज लोग इस क्षेत्र मे कार्य कर रहे थे, वहाँ अंग्रेज भी पीछे नही रहे। सन् १६७४ में हेनरी मिल्स नामक व्यक्ति को कोर्ट आफ डाइरेक्टर्स ने टाइपराइटर और बहुत सा कागज देकर बम्बई भेजा। परन्तु उस समय इस कार्य की जानकारी उन्हें नही थी। फलतः इस सामान की ओर किसी ने भी ध्यान नही दिया। परन्तु १६ जुलाई, १७५३ को कम्पनी ने इस ओर ध्यान दिया और उस सामान का उपयोग किया।

३१ दिसम्बर १६०० तक ईस्ट इंडिया कम्पनी भारत भूमि पर पैर रख चुकी थी, परन्तु उस समय यह शासन करने वाली संस्था नही थी, बल्कि एक व्यापारिक संगठन था। कालान्तर में इसने राजनैतिक क्षेत्र मे प्रवेश किया और सन् १७५७ में सिराजुद्दौला को प्लासी के मैदान में पराजित करने के पश्चात् अपनी साम्राज्यवादी नीति अपनाई। उसी समय यूरोपीयन्स के एक गुट ने प्रशासन तथा व्यापारिक नीतियों की कटु आलोचना करनी आरम्भ की। उस गुट ने अपने उद्देश्य की प्राप्ति के लिए प्रेस का और अधिक विकास किया।[3]

इस प्रकार प्रेस अपने विकास की ओर बढ रही थी। अंग्रेजों ने सन् १७७२ ई० को मद्रास में एक छापाखाना खोला और सन् १७७९ मे कलकत्ते में एक और छापाखाना खोला गया जो चार्ल्स विलकिन्स के प्रबन्धाधीन था। उसने हुगली में एक टाइप तैयार किया और नथलील ब्ररेहेल्अस ग्रामर ऑफ दा बंगाली लैंगवेज तैयार की। परन्तु यह आश्चर्य था कि सन् १७८० ई० से पूर्व कोई समाचार पत्र नही निकला। यूरोपियन समाज केवल इंग्लैंड से निकलने वाले पत्रों पर ही निर्भर था। गोपनीय दस्तावेज के आधार पर कहा जा सकता है, "उत्तरी भारत में भी प्रिंटिग प्रेस थी। जब आगरे का किला सन् १८०३ में लार्ड लेक के हाथ में आया, तब उसमें जो अमूल्य संपत्ति प्राप्त हुई, उसमें से एक छापाखाना भी था। यह छापाखाना नए प्रकाशन के लिए था और कहा जाता है कि टाइप उत्तम थी।"[4] यह छापाखाना वहाँ कौन ले गया था, इस विषय में कुछ ज्ञात नही है।

भारत में समाचार-पत्र न निकलने का कारण यह हो सकता है कि यूरोपियन समाज बहुत छोटा था, इसलिए सूचना एक-दूसरे को आसानी से उपलब्ध हो जाती

---

१. अम्बिकाप्रसाद बाजपेयी : समाचार पत्रों का इतिहास, प्रथम सस्करण, पृ० ७
२. वही, पृ० ७
३. डा० रामरमन भटनागर : पूर्व उद्धृत, पृ० १३
४. प्रोसीडिंग ऑफ दा बंगाल एशियाटिक सोसाइटी, मई १८६१

थी। परन्तु जैसे-जैसे इस समाज का विस्तार हुआ, तो विभिन्न विचारधारायें उत्पन्न हो गई। इन विचारधाराओं ने प्रेस के विकास का रास्ता खोल दिया। फलतः श्रीमान् विलियम बोल्ट ने सन् १७६६ में 'कांसिल हाउस इन कलकत्ता' के द्वार पर एक नोटिस चिपका दिया जिसमें लिखा था—"इस समय, वह क्षमा चाहते हुए सूचित करता है कि मनुस्क्रप्ट में बहुत चीजें देने को हैं जो व्यक्ति विशेष से संबंधित हैं, कोई मनुष्य जो चर्चित उद्देश्यो के लिए इच्छुक है, उसे कहा जाता है कि वह मिस्टर बोल्टस हाउस पर पढ सकता या उस की एक प्रति ले सकता है। प्रत्येक व्यक्ति प्रातः १० बजे से १२ बजे तक मिल सकता है।"[1]

बोल्ट को कोर्ट ऑफ डायरेक्टर्स द्वारा सेंसर किया गया। अतः उसने १७७७ में कम्पनी की नौकरी से त्याग-पत्र दे दिया और एक समाचार पत्र निकालना चाहा, परन्तु कम्पनी ने समाचार पत्र निकालने की अनुमति नही दी और उसे १८ अप्रैल १७७७ में आदेश दिया—

"उसे आदेश दिया जाता है कि वह बंगाल छोड़कर कलकत्ता पहुँचे और वहाँ से प्रथम जलयान जो अगली जुलाई को जायेगा, पकडे, और वहाँ से सितम्बर में यूरोप पहुँचे।"[2]

जाते समय बोल्ट के हाथ में हैंड बिल था, जिसमें उसने शिकायत की कि कलकत्ते में कोई छापाखाना नहीं है, वह इसका प्रबन्ध कर सकता था यदि पत्रकारिता कार्य अपने हाथों में लेता।[3] बारह वर्ष पश्चात् (१७८०) में कलकत्ते में प्रथम छापाखाना स्थापित हुआ और प्रथम समाचार पत्र 'कलकत्ता जनरल एडवरटाइजर,' जो 'हिकी गैजट' नाम से जाना जाता है, चूंकि इसे मिस्टर जेम्स अगस्टस हिकी ने प्रकाशित किया था। इसका प्रथम अंक २९ जनवरी, १७८० ई० में निकला। हिकी महोदय ने अपने पत्र में कंपनी के कर्मचारियों तथा गवर्नर जनरल, वारेन हेस्टिंग्स की नीतियो पर आक्रमण करने आरम्भ कर दिए। श्रीमती हेस्टिंग्स, साइमियन ड्रोज, कर्नल थोमस, डीन पीयरस और स्वेडिश मिशनरी, जॉन जाहारियां केरनंडर आदि उसकी आलोचना के लक्ष्य बन गये। फलतः हिकी परेशानी में फंस गया और १४ नवम्बर १७८० में गवर्नर जनरल ने इस पत्र की डाक सुविधा बंद कर दी, पत्र-प्रकाशन के सभी अधिकार छीन लिए गये। जून १७८१ में कारावास एवं ५००० रुपये से दंडित किया गया। परन्तु ये सब निर्भीक पत्रकार के आक्रमणों को नहीं रोक सके। उसने गवर्नर जनरल तथा मुख्य न्यायाधीश सर ईलीजाह ईम्पों की नीतियों पर आक्रमण निरन्तर जारी रखे। मुख्य न्यायाधीश के जून १७८१ के आदेशानुसार उसे पीटा गया, गिरफ्तार किया गया और जमानत देने पर ८०,००० रुपये का जुर्माना देना पडा। परन्तु हिकी ने अपने विचारों में कोई परिवर्तन नही किया और वह अपने पत्र का सम्पादन जेल से ही करता रहा तथा कुछ समय के

१. प्रोसीडिंग ग्राफ दा सेलक्ट कमेटी एट दा कांसिल ग्राफ कोर्ट विलियम

२. वही

३. डॉ० रामरतन भटनागर : पूर्व उद्धृत, पृ० १५

पश्चात् उसने बंगाल छोड़ दिया।[1] इस प्रकार कहा जा सकता है कि यही से आधुनिक पत्रकारिता का शुभारम्भ होता है। इस से पूर्व इसका सीधा सम्बन्ध केवल मिशनरियों के अपने प्रचार से था।

ईस्ट इंडिया कम्पनी एक व्यापारी एवं शासक की दोहरी भूमिका निभा रही थी। परन्तु एंग्लो-इंडियन प्रेस शासन से कम सम्बन्ध रखती थी। वह या तो व्यापारिक या व्यक्तिगत बातो को प्रकाशित कर रही थी। एंग्लो-भारतीय प्रेस के उद्भव से पूर्व एंग्लो-भारतीय समाज उन पत्रो पर निर्भर रहता जो इंग्लैंड से ६ मास विलम्ब से पहुँच पाते। ये पत्र इंग्लैंड तथा अन्य महाद्वीपों की घटना-चक्र से उन्हे अवगत कराते थे। परन्तु लगभग सन् १७८० ई० में 'कलकत्ता गजट' फरवरी १७८४ में 'बंगाल जनरल', फरवरी १७८५ में, 'ओरियन्टल मैगजीन आफ कलकत्ता एम्युजमेंट' प्रकाशित हुए। फरवरी १७८६ में 'कलकत्ता क्रोनीकल' सामने आया।[2]

समाचार-पत्र निकालने के प्रयत्न भारत के अन्य प्रदेशो से भी हुए। सन् १७८५ मे 'मद्रास कोरियर' राजकीय मान्यता प्राप्त, साप्ताहिक पत्र, रिचर्ड जानसन ने स्थापित किया, जिसमें प्राय: सरकारी विज्ञापन निकलते थे। सन् १७९१ में बोयड ने 'मद्रास कोरियर' से त्याग-पत्र दे दिया और अपना समाचार-पत्र 'हुकरू' प्रकाशित किया, जो एक वर्ष पश्चात् बोयड के स्वर्ग-वास के कारण बन्द हो गया। तत्पश्चात् आर० विलियम्स ने 'मद्रास गजट' १७९५ में प्रकाशित किया।[3] इसी बीच हरफ्रेयज नामक अंग्रेज ने अपने सम्पादकत्व में अनधिकृत रूप से 'इंडिया हेरल्ड' नाम का पत्र प्रकाशित किया। परन्तु उन्हे भी सरकार की आलोचना के कारण गिरफ्तार किया गया और इंग्लैंड भेज दिया गया।[4]

पत्रकारिता की दौड़ मे बम्बई प्रेसीडेन्सी भी पीछे नही रही। यहाँ से सर्वप्रथम सन् १७८९ मे 'बम्बई हेरल्ड' प्रकाशित हुआ तथा इसके पश्चात् 'कोरीयर' गुजराती भाषा मे प्रकाशित हुआ, परन्तु एक वर्ष पश्चात् यह 'बम्बई गजट' मे मिल गया।[5]

अत: यह कहा जा सकता है कि प्रारम्भिक पत्रकारिता केवल प्रेसीडेंसी कस्बों — कलकत्ता, मद्रास तथा बम्बई मे स्थापित हुई। इनमें कलकत्ता देश की राजधानी होने के नाते अग्रणीय था। इसका दूसरा कारण यह भी था कि यह कस्बा पूर्णरूपेण युरोपियन गतिविधियो का केन्द्र हो गया, परन्तु बम्बई और मद्रास की अंग्रेजी पत्रकारिता और सरकार के मध्य किसी प्रकार का टकराव नही था।[6] जबकि कलकत्ता मे स्थिति विपरीत थी। सन् १७९१ में 'बंगाल जनरल' के संपादक विलियम ड्रूने संकटपूर्ण स्थिति में

---

१. 'हिकी गजट' की पूरी फाइल कलकत्ता इम्पीरियल लाइब्रेरी मे सुरक्षित है।
२. एस० नटराजन : 'हिस्ट्री ऑफ दी प्रेस इन इण्डिया', बम्बई, १९६२, पृ० १९
३. एस० नटराजन : वही, पृ० १९
४. जे० नटराजन : पूर्व उद्धृत, पृ० ६
५. एस० नटराजन : पूर्व उद्धृत, पृ० १९
६. डा० रामरत्न भटनागर : पूर्व उद्धृत, पृ० १८

आ गये, क्योंकि उसने लार्ड कार्नवालिस की मृत्यु का झूठा समाचार प्रकाशित किया। जबकि वे मराठा युद्ध का अभियान चला रहे थे। डूने किसी-न-किसी तरह भारत से निष्कासित होने से बचे, परन्तु 'बंगाल जनरल' का संपादन न कर सके और अपना दूसरा पत्र 'इण्डियन वर्ल्ड' आरम्भ कर सरकार और उसके अधिकारियों की खुली आलोचना करने लगे।[1] फलत. डूने की गति भी वह ही हुई, जो हिक्की की हुई थी।

सन् १७९३ में डॉ० चार्ल्स मैक्लीन, जिसने बंगाल से 'हुकूरू' निकाला था, सरकार की नीतियों विशेषत: डाकखाने के पोस्टमास्टर जनरल क' आलोचना आरम्भ कर दी। परन्तु सरकार कहाँ चूकने वाली थी, उसने तुरन्त उसको म 'निष्कासित कर यूरोप भेज दिया।[2] इंग्लैण्ड जाकर इन्होंने वैलस्ले के विरुद्ध एक अच्छा अभियान चलाया।

१८वीं शताब्दी के अन्त तक अनेक पत्र प्रेसीडेंसी कस्बों से प्रकाशित हुए और ऐंग्लो-भारतीय प्रेस की नीव अच्छी तरह से जम गई। लेकिन ये पत्र भारतीय हितों की ओर कोई ध्यान नहीं देते थे। इनमें अधिकतर ब्रिटिश संसद और इंग्लैण्ड की सूचनाएँ होती थी। भारत में सामाजिक बुराइयों की ओर इन पत्रों का ध्यान नहीं जाता था।

१९वीं शताब्दी के प्रथम दो दशक प्रेस के उद्भव व विकास में बाधक रहे। चूंकि मारक्वीस वैलस्ले का रुख प्रेस के प्रति कड़ा था। पत्रकारों को देश निकाला और कारावास का दण्ड तथा प्रेस बन्द आदि नियमों ने इसके विकास में बाधा खड़ी कर दी थी। जब कि सम्पादक सरकार को आश्वासन दे रहे थे कि वे सरकार के साथ हैं। लार्ड मिंटो (१८०७-१८१३) की प्रेस सेंसर की नीति चलती रही, परन्तु १९ अगस्त, १८१८ को लार्ड हेस्टिंग्ज ने सेंसर की नीति हटा ली और सम्पादकों के मार्ग-दर्शन के लिए कुछ नियम बना दिये। इन नियमों का उद्देश्य यह बताना था कि उन विषयों की चर्चा पत्रों में न हो, जिनसे सरकार की सत्ता पर प्रभाव पड़ता हो अथवा जिनसे सार्वजनिक हितों की हानि होती हो।[3]

३. भारतीय समाचार-पत्र—भारतीय प्रेस के इतिहास में सबसे बड़ा चमत्कार तब उत्पन्न हुआ, जब प्रथम भारतीय समाचार-पत्र—'बंगाल गजट' (अंग्रेजी में साप्ताहिक) सन् १८१६ में गंगाधर भट्टाचार्य, जो एक अध्यापक थे, ने प्रकाशित किया। श्री भट्टाचार्य राजा राममोहन राय के उदारवादी विचारों से प्रभावित थे।[4] परन्तु यह पत्र लगभग एक साल तक ही चल पाया।[5] सन् १८१८ में जान बर्टन ने और

---

१. जे० नटराजन : पूर्व उद्धृत, पृ० ७
२. वही, पृ० ८
३. अम्बिकाप्रसाद : पूर्व उद्धृत, पृ० ३३
४. एस० नटराजन : पूर्व उद्धृत, पृ० २६
५. जे० नटराजन : पूर्व उद्धृत, पृ० १२

जेम्स मैकनजी ने 'वार्जन' नामक पत्र के निकालने की आज्ञा मांगी। उन्होंने आज्ञा मिलने पर रविवार से रविवार को प्रकाशन आरम्भ किया।

सन् १८१८ का वर्ष पत्रकारिता इतिहास में स्मरणीय है। चूंकि सन् १८१७ तक भारत में जितने पत्र निकलते थे, वे सब अंग्रेजी भाषा में होते थे। इस वर्ष स्वदेशी भाषा में पहला पत्र प्रकाशित हुआ, जिसके सम्पादक और प्रकाशक अंग्रेज थे। यह मासिक-पत्र सीरामपुर के बैपटिस्ट मिशनरियों ने निकाला था। इस पत्र का नाम 'दिग्दर्शन' था।[1] पादरियों ने जो भी कार्य इस देश मे किए, चाहे वे शिक्षा के क्षेत्र मे अथवा पत्रकारिता के क्षेत्र में हों, उन सब का उद्देश्य ईसाई धर्म का प्रचार करना था। 'दिग्दर्शन' के प्रकाशन के पश्चात् बंगाल से दो साप्ताहिक पत्र बंगाल की क्रांतिकारी भूमि से निकले, 'बंगाल गजट' (बगाली में) और सीरामपुर से 'समाचार दर्पण' जो साप्ताहिक पत्र था।[2] इसी समय अंग्रेजी भाषा का पत्र 'फ्रेंड ऑफ इण्डिया' का प्रकाशन हुआ, जो एक मासिक पत्रिका थी।[3]

'बंगाल गजट' ही पहला पत्र था, जो बंगला भाषा मे और बंगाली-भाषा प्रकाशक हरचन्द्र राय तथा सम्पादक गंगाधर भट्टाचार्य के द्वारा निकाला गया। ये दोनों राजा राममोहन राय के मित्र थे, जो उनके विचारों से प्रभावित थे। राजा राममोहन राय उस समय शिक्षित बंगालियों के नेता थे।[4]

लगभग सन् १८१८ में दो प्रतिभाओं जेम्स सिल्क बेंकिघम और राजा राममोहन राय ने भारतीय पत्रकारिता के क्षेत्र मे पदार्पण किया, पहला दूसरो पर शासन करने वाला तथा कठोर हृदय था तो दूसरा धैर्यवान, दृढ़ तथा कोमल हृदय था। दोनों ने पत्रकारिता को स्वतन्त्र कराने का उद्देश्य बनाया।[5] सिल्क बेंकिघम ने अंग्रेजी भाषा में 'कॅलकटा जनरल' नाम का आदर्श पत्र निकाला। यह पत्र स्वतन्त्र एवं उदार विचारो को प्रकाशित करता था। "इससे प्रतिक्रियावादी लोग चौंक पड़े और सरकार सजग हो गई। यह पत्र सरकार की निर्भीकता से आलोचना कर रहा था।"[6] इस कार्य में राजा राममोहन राय उन्हे सहायता कर रहे थे, परन्तु इस पत्र का प्रभाव घटाने हेतु गवर्नर की कॉन्सिल के एक सदस्य जान एडम ने लार्ड हेस्टिंग्ज के कान भरे और गैर सरकारी प्रतिक्रियाशील अंग्रेजों से कहा कि वे पत्र निकालें। अतः १८२१ में 'जान-बुल' नाम का पत्र उन्होंने निकाला, जो सरकारी पत्र माना जाता था।[7]

४. भारतीय भाषाओं में पत्र—भारतीय पत्रकारिता का नया अध्याय उस समय

---

१. अम्बिकाप्रसाद, पूर्व उद्धृत, पृ० ३३
२. जे० नटराजन : पूर्व उद्धृत, पृ० १७
३. वही,
४. अम्बिकाप्रसाद बाजपेयी : पूर्व उद्धृत, पृ० ३४
५. जे० नटराजन : पूर्व उद्धृत, पृ० १८
६. अम्बिकाप्रसाद बाजपेयी : पूर्व उद्धृत, पृ० ३४
७. वही, पृ० ३५

आरम्भ होता है जब स्वयं भारतीयों के संयोजकत्व तथा सम्पादकत्व में पत्रों का प्रकाशन आरभ होता है। इसका श्रेय राजा राममोहन राय को जाता है; जिन्होंने सन् १८२२ ई० में 'सम्वाद कौमदी' नामक बंगला साप्ताहिक को आरम्भ किया।[1] इसका मुख्य उद्देश्य सामाजिक बुराई सती-प्रथा का खण्डन करना था। राजा राममोहन राय ने ईसाई मिशनरियो का उत्तर देने के लिए 'ब्रह्मनिकल मैगजीन' का प्रकाशन किया।[2] राजा साहब ने अपने विचारों को और अधिक व्यापक बनाने हेतु फारसी मे 'मीरात-उल-अखबार' निकाला, जिसे अपनी तेजस्विता और प्रसिद्धि के कारण ब्रिटिश सरकार की दमन नीतियों का शिकार होना पड़ा।[3] चूंकि गवर्नर-जनरल की कॉन्सिल के वरिष्ठ सदस्य जॉन एडम को लार्ड हेस्टिंग्ज के स्थान पर अस्थायी गवर्नर जनरल सन् १८२३ में बनाया गया, जो प्रेस की स्वतन्त्रता से प्रसन्न नहीं थे। उसने अवसर मिलते ही सिल्क बकिंघम जैसे निर्भीक एवं स्वतन्त्र विचार वाले पत्रकार को भारत से निकाल कर इंग्लैंड भेज दिया। लेकिन वह वहाँ पर चुप नही बैठा और इंग्लैंड से 'ओरियन्टल हेरल्ड' नाम का पत्र निकाला।[4]

एडम ने ४ अप्रैल, १८२३ को सुप्रीमकोर्ट के सामने पत्रों के नियंत्रण हेतु नये प्रस्ताव रखे जो वेलेजली की पुरानी व्यवस्था से भी कठोर थे। इन नये कानूनों का प्रथम शिकार राजा राममोहन राय का फारसी वाला समाचार पत्र 'मिरात-उल-अख-बार' हुआ। फलत: ४ अप्रैल, १८२३ को उन्होंने पत्र का अन्तिम संस्करण प्रकाशित करते समय यह घोषणा की, "वर्तमान परिस्थितियों में पत्र का प्रकाशन रोक देना ही एकमात्र मार्ग रह गया है। जो नियम बने हैं, उनके अनुसार किसी यूरोपियन सज्जन के लिए जिसकी पहुँच सरकार के चीफ सेक्रेटरी तक है, सरकार से लाइसेंस लेकर पत्र निकाल देना आसान है, पर भारत के किसी निवासी के लिए जो सरकारी भवन की देहरी लांघने मे भी समर्थ नही हो पाता, पत्र प्रकाशन के लिए सरकारी आज्ञा प्राप्त करना दुस्तर कार्य हो गया है। फिर खुली अदालत में हल्फ़नामा दाखिल करना भी कम अपमानजनक नहीं है। लाइसेंस के छिन जाने का खतरा भी सदा सिर पर झूला करता है, ऐसी दशा मे पत्र का प्रकाशन रोक देना ही उचित है।"[5]

---

१. श्रीमती मार्गेट बर्नस ने अपनी पुस्तक 'दी इण्डियन प्रेस' में लिखा है कि इस पत्र की स्थापना भवानीचरण बनर्जी द्वारा दिसम्बर १८२० मे हुई। बाद मे इसे राजाराम मोहनराय ने ले लिया। जबकि रेव० जे० लोगों ने सरकार को १८५८ मे एक रिपोर्ट—"दी पास्ट कंडीशन एण्ड फ्यूचर प्रोस्पैक्टस ऑफ दी बर्नाक्लुर प्रेस ऑफ बंगाल" दी जिसमें लिखा कि राजाराम मोहनराय ने सन् १८१६ मे भवानीचरण बनर्जी के साथ सम्पादक के रूप में कार्य किया। बाद में भवानीचरण बनर्जी ने दूसरा पत्र 'चद्रिका समाचार' पत्र निकाला।

२. डा० कृष्ण बिहारी मिश्र : हिन्दी पत्रकारिता, कलकत्ता, १९६८, पृ० २०

३. वही, पृ० २०

४. अम्बिकाप्रसाद बाजपेयी : पूर्व उद्धृत, पृ० ३८

५. कमलापति त्रिपाठी : पत्र और पत्रकार, बनारस, १९४४, पृ० ६१-६२

दूसरा शिकार 'कलकत्ता जनरल' हुआ जिसके प्रथम सम्पादक सिल्क बकिंघम पहले ही निर्वासित किए जा चुके थे। अब उसके सम्पादक सैण्डी आरनाट थे जो गिरफ्तार करके निर्वासित कर दिये गए और 'कलकत्ता जनरल' बन्द कर दिया गया।[१] इस प्रकार से भारतीय पत्रकारिता दिन-प्रतिदिन कठोरता से कसी जा रही थी।

राजा राममोहन राय के प्रयास से सन् १८२२ मे अन्य पत्र –'जाम-ए-जाहन-नामा' तथा 'शम्स-उल-अखबार' प्रकाशित हुए। इसी वर्ष 'बम्बई समाचार' साप्ताहिक गुजराती मे प्रकाशित हुआ।[२] सन् १८२५ मे 'बम्बई गजट' और 'बम्बई केरियर' फ्रेंसिस वार्डन द्वारा निकाले गये।[३] प्रथम हिन्दी पत्र 'उदन्त मार्तण्ड' पं० युगल किशोर शुक्ल ने ३० मई, १८२६ में निकाला।[४]

परन्तु लार्ड विलियम बेंटिक के बंगाल के गवर्नर-जनरल बन जाने पर प्रेस कानूनों मे ढील हो गई। चूंकि बेंटिक उदार तथा प्रगतिशील व्यक्ति थे। भारत में ब्रिटिश राज के इतिहास में वे अपनी उदारता के लिए प्रसिद्ध है। वातावरण को अनुकूल पाकर राजा राममोहन राय पुनः पत्रकारिता के क्षेत्र में आगे बढ़े। उन्होने सन् १८२९ में अंग्रेजी भाषा में 'बंगाल हेरल्ड' नामक साप्ताहिक पत्र की स्थापना की, जो एक अंग्रेज पत्रकार के संपादन में प्रकाशित होने लगा। इस समय नीलरतन हलदार के सम्पादकत्व मे 'बंगदूत' भी प्रकाशित हुआ।[५]

राजा राममोहनराय का प्रभाव, सम्पन्न और धनी टैगोर परिवार पर बहुत गहरा था। उनकी प्रेरणा से द्वारका नाथ ने बंगाल के कतिपय गोरे पत्रों को खरीद लिया। 'बंगाल हरकारू' पहले उनके हाथ आया। कुछ वर्षों के बाद कट्टर साम्राज्यवादी यूरोपियनों का सुप्रसिद्ध 'जॉनबुल' पत्र भी खरीद लिया तथा इस का रूप और नाम परिवर्तित कर दिया। अब यह 'इंगलिस मैंन' के नाम से प्रसिद्ध होने लगा। श्री प्रसन्न कुमार ने 'रिफार्मर' नामक पत्र का आरम्भ किया जो भविष्य में प्रमुख पत्र बन गया।[६]

इस प्रकार देखा जाता है कि बेंटिक के काल मे पत्रकारिता का अच्छा विकास हुआ। देश में सामाजिक सुधार तथा रूढ़ियों के उन्मूलन की चेतना का सृजन हुआ। बेंटिक सती प्रथा सरीखी कुप्रथा को समाप्त करने के लिए प्रसिद्ध हैं परन्तु इस नई विचारधारा का विरोध भी साथ-ही-साथ हो रहा था। कट्टरपंथियो ने इसके विरोध के लिए पत्र प्रकाशित किए। 'समाचार चन्द्रिका' नामक पत्र इस वर्ग का प्रमुख साधन था।[७]

---

१. कमलापति त्रिपाठी : पूर्व उद्धृत, पृ० ९२
२. एस० नटराजन : पूर्व उद्धृत, पृ० २८
३. जे० नटराजन : पूर्व उद्धृत, पृ० २५
४. डा० श्रीपाल शर्मा के लेख 'उदन्त मार्तण्ड' से उद्धृत।
५. कमलापति त्रिपाठी : पूर्व उद्धृत, पृ० ९२-९३
६. वही, पृ० ९३
७. वही, पृ० ९४

परन्तु भारत के प्रबुद्ध शिक्षित वर्ग की माँग अबाध गति से तीव्र होती गई, जिसके कारण बेंटिक सरकार ने सती प्रथा को एक कानून द्वारा बन्द कर दिया। प्रगतिशील पत्रों की यह प्रथम विजय थी।

उपरोक्त सफलता से प्रगतिशील पत्रकारिता को विकसित होने में उत्प्रेरणा मिली। फलतः अनेक पत्र प्रकाश में आये। २८ जनवरी, १८३१ को ईश्वर चन्द्र गुप्त ने 'सवाद प्रभाकर' निकालकर सामाजिक सुधारों को बल दिया। यह चेतना देश के अन्य प्रदेशों मे भी फैल गई। सन् १८३० ई० मे बम्बई से कुछ पत्र प्रकाशित होने लगे। 'मुम्बई वर्तमान' को सितम्बर, १८३० में नैरोजी दोरबजी चन्द्रू ने निकाला। इसी वर्ष पेस्टोन्जी मैनगेजीवाला ने 'जाम-ए-जमशेद' को जन्म दिया।[1] सन् १८३२ ई० जेम्सप्रिंस के सम्पादकत्व मे 'जर्नल ऑफ दी रायल सोसाइटी ऑफ बंगाल' का प्रकाशन होने लगा। मद्रास भी इस दौड मे पीछे नही रहा। अत: यहाँ से एशियाटिक सोसाइटी की शाखा-सस्था मद्रास लिटरेरी सोसाइटी का 'जर्नल आफ लिटरेचर एण्ड साइन्स' प्रकाशित होने लगा।[2] पूना मे ओन्नूनद्रो विट्ठोबा ने 'पूना वर्तिक' निकालने की आज्ञा मागी।[3] बम्बई से बाल शास्त्री जमयेकर ने ऐंग्लो-मराठी साप्ताहिक 'बंबई दर्पण' (१८३२) मे निकालना आरम्भ किया।

उत्तर प्रदेश जो उस समय नार्थ वेस्टर्नप्रोविन्सीस के नाम से संबोधित किया जाता था, फारसी और उर्दू मे सरकारी शिक्षा के संरक्षण मे पत्र-पत्रिकायें निकाल रहा था।

परन्तु बीमारी ने उदारवादी लार्ड बेंटिक को ६ फरवरी, १८३५ को त्याग-पत्र देने के लिए विवश कर दिया और उनके स्थान पर कौंसिल के वरिष्ठ सदस्य सर चार्ल्स मेटकाफ गवर्नर-जनरल बने। सौभाग्य से लार्ड मैंटकाफ ने तत्काल ही प्रेस के प्रश्न पर विचार किया और मैकाले से अनुरोध किया कि वे प्रेस सम्बन्धी नये कानूनो का मसविदा तैयार करें। मेटकाफ एक उदारवादी और लोकतंत्रीय शासन प्रणाली में विश्वास करने वाले थे। अत. उन्होने प्रेस पर लगी सभी बाधाओ को दूर किया। इस कदम से भारतीय पत्रकारिता को खुली वायु मे साँस लेने का स्वर्ण अवसर प्राप्त हुआ। यह सत्य है कि प्रेस के उद्भव-विकास तथा स्वतन्त्रता के लिए जिस लगन से मेंटकाफ ने कार्य किया, वह सराहनीय है। उनकी प्रगतिशीलता और उदार हृदयता के लिए भारतीय पत्रकारिता ऋणी रहेगी।

कानून मन्त्री लार्ड मैकाले ने प्रेस सम्बन्धी कानूनो की ओर कासिल सदस्यों का ध्यान आकर्षित करते हुए कहा, "वह नियम जिसे अब मैं प्रस्तुत करने जा रहा हूँ, उसका उद्देश्य गंदगियों को दूर करना तथा सम्पूर्ण देश में प्रेस कानूनों में एकरूपता लाना है। इसे, उस प्रत्येक व्यक्ति को ग्रहण करना चाहिए जो समाचार-पत्र को बिना

---

१. जे० नटराजन : पूर्व उद्धृत, पृ० ३०
२. कमलापति त्रिपाठी : पूर्व उद्धृत, पृ० ६४
३. जे० नटराजन : पूर्व उद्धृत, पृ० ३१

पूर्व आज्ञा के स्थापित करना चाहता है। परन्तु कोई व्यक्ति राजद्रोही अथवा विप्लवकारी समाचार नही छापेगा।"[1]

इसी संदर्भ मे स्वयं गवर्नर-जनरल ने १७ अप्रैल, १८३५ मे अपने विचार प्रकट करते हुए कहा;[2]

"वे कारण जिन्होने मुझे कांसिल मे प्रस्ताव लाने के लिए झकझोरा, भारतीय प्रेस पर वर्तमान बाधायें, वे ही है जिनको मिस्टर मैंकाले ने कानून के प्रारूप के साथ प्रस्तुत किया, उन्होने हमारी प्रार्थना पर उन कारणो को तैयार किया जो निम्न है: प्रथम, प्रेस स्वतन्त्र होनी चाहिए, यदि निरन्तर राज्य सुरक्षित है। मेरे विचार से, स्वतन्त्र प्रेस से राज्य को कोई खतरा नही, यदि होता है तो लेजिस्लेटिव कांसिल उसका उपचार करने की पूरी शक्ति रखती है। द्वितीय है कि प्रेस पहले से स्वतन्त्र है चूंकि सरकार चली आ रही बाधाओ को कार्यान्वित करना नही चाहती, जैसा कि हम उनसे घृणा और द्वेष रखते हैं, जैसे प्रेस जंजीर में बधित है। इन वर्तमान पूरी बाधाओ का चलन रखने मे कोई तर्क नही, ये कभी भी लागू की जा सकती है यदि राज्य को कोई खतरा होगा। तृतीय है कि वर्तमान बाधायें सरकार के लचीलापन की जगह बनाती हैं। एक कांसिल अथवा एक गवर्नर प्रेस को स्वतन्त्र कर सकता है, दूसरा परतन्त्र कर सकता है। इसके लिए कोई कानून नही, कोई भी किसी दिन स्वेच्छाचारी, या आतंकवादी हल्के रूप से इन कानूनों को संशोधित कर सकता है, पूर्ण उल्लंघन मूकभाव से स्वीकृत किया गया है। चतुर्थ है कि कानून की भिन्न दशा या दूसरी प्रेसीडेंसीज में कानून की आवश्यकता, आदि के लिए सामान्य कानून जो पूरे भारत मे लागू होंगे, वे आवश्यक हैं। घृणित तथा व्यर्थ की बाधायें रखने का प्रश्न नही उठता। और मेरे विचार से मैंकाले के हम ऋणी है, जिन्होने इतने अच्छे कानूनों को तैयार किया। अन्य प्रकार के प्रावधानो पर पहले विचार हो चुका है और अधिक विस्तार से विचार अगली-कांसिल मे किया जायेगा। मैं अन्त करता हुआ कहता हूँ कि वे छोड़े नही जा सकते, वे दिखाते है कि कानूनों को संशोधित करना सरल है अपेक्षा बनाने के। कुछ वर्तमान बाधाओ को कुछ शब्दों में दूर किया, हम लम्बे कानून को बनाने के लिए विवश हुए ताकि छापने वालो और प्रकाशको को कानूनों की भूमि मे प्रवेश मिल सकें।"

यद्यपि कांसिल के वरिष्ठ सदस्य एच० टी० प्रिन्सेप तथा लैफ्टीनेंट कालोनल मोरीसन ने इन कानूनों का विरोध करते हुए सरकार के लिए घातक बताया। परन्तु मैटकाफ ने अंतिम कार्यवाही मे इन विरोधो को काट दिया और सर्वसम्मति से कानून पास हो गया।

सन् १८३५ से १८५६ के मध्य लार्ड आकलैंड, एलन बोरोह, हार्डिग प्रथम, और डलहौजी के काल में प्रेस सम्बन्धी नीति मे कोई परिवर्तन नही हुआ। फलतः

१. जे० नटराजन : पूर्व उद्धृत, पृ० १७
२. वही, पृ० १८

मेटकाफ के कानून नं० XI १८३५, के द्वारा भारतीय प्रेस का उद्भव व विकास न केवल बंगाल, बम्बई तथा मद्रास, बल्कि उत्तर प्रदेश (तत्कालीन नार्थ वैस्टर्न प्रोविंसीस) मे सहज भाव से हुआ। सन् १८३६ ई० में केवल कलकत्ते में २६ यूरोपियन पत्र प्रकाशित होते थे। इनमे ६ दैनिक थे। इनके अतिरिक्त ६ पत्र भारतीय भाषा में प्रकाशित होते थे। बम्बई मे १० गोरो द्वारा तथा चार भारतीयों द्वारा और मद्रास मे ६ गोरो द्वारा पत्र प्रकाशित हो रहे थे। इन प्रमुख नगरों के अलावा, लुधियाना, दिल्ली, आगरा, शिवरामपुर मोलमीन आदि स्थानों मे भी पत्र प्रकाशित होने लगे थे। सर सैयद अहमद खां के अग्रज श्री मुहम्मदखां द्वारा स्थापित 'सैयदुल-अखबार' नामक पहला उर्दू का समाचार-पत्र सन् १८३७ ई० मे दिल्ली से प्रकाशित होने लगा था।[1]

उत्तर प्रदेश मे परसियन तथा उर्दू प्रेस का विकास तेजी से हो रहा था। सन् १८३३ ई० में मुंशी वाजिद अली खान ने 'जुबदत्त-उल अखबार' परसियन भाषा में आरम्भ किया। उसके अखबार को मुख्यतः निम्न पाँच राजा और कुछ व्यापारी मासिक सहायता देते थे :[2]

		रुपये
राजा भरतपुर	...	३०
राजा अलवर	...	२०
नवाब झज्झर	...	१५
नवाब जोरा	...	१०
निज़ाम हैदराबाद (दक्षिण)	...	१५
सेठ लक्ष्मीचन्द्र	...	१५

सन् १८४६ मे राजकीय कालिज आगरा से 'सदर-उल-अखबार' भी प्रकाशित होता था। इसी समय दो अन्य पत्र—'उसदुद-उल-अखबार' तथा 'मुत्तवा उल-अखबार' भी प्रकाशित हुए।[3] जबकि सन् १८४४ में चार पत्र—'सुरज उल-अखबार', (परसियन), 'सैयुद-उल-अखबार'; 'दिल्ली—उर्दू-अखबार', और 'मुजहूर-उल-हक' अस्तित्व मे आये। अन्त के तीन पत्र उर्दू में होते थे।[4] सन् १८४४ से १८४८ तक तीन साप्ताहिक 'किरण-उस-सदयन', 'सैयक-उल-अखबार' तथा 'फवयुद-उल-सयुकीन', प्रकाशित हुए और शेख मुहम्मद जीयाउद्दीन ने सन् १८४६ मे 'जिया-उल-अखबार' की स्थापना की। दिल्ली से—'सिराज-उल-अखबार' (फारसी) जो बादशाह के कर्मचारियों की सहायता से निकलता था। दिल्ली से ही एक अन्य परसियन पत्र 'सादिक-उल-अखबार' निकलना आरम्भ हुआ, परन्तु इसका प्रकाशन बहुत सीमित था।[5]

---

१. कमलापति त्रिपाठी : पूर्व उद्धृत, पृ० ६६
२. जे० नटराजन : पूर्व उद्धृत, पृ० ४८
३. वही, पृ० ४६-५०
४. वही, पृ० ५०
५. वही, पृ० ५०

बरेली से प्रथम पत्र बरेली स्कूल के सुपरिटेंडेंट स्कूल के छात्रों की सहायता से निकाला करते थे। इसका सम्पादन मौलवी अब्दुल रहमान करते थे। सन् १८४७ में मेरठ से 'जामे-जमशेद' साप्ताहिक पत्र की स्थापना हुई, इसका सम्पादन बाबू शिव चन्द्र किया करते थे।[1] बनारस जो सदैव से शिक्षा का प्रमुख केन्द्र रहा है, वहाँ से भी अनेक पत्र-पत्रिकायें 'सुधाकर-अखबार', 'बनारस-अखबार' तथा 'बनारस गजट' प्रकाशित हुए।[2]

प्रथम स्वतन्त्रता युद्ध (१८५७) से पूर्व उत्तर प्रदेश में प्रेस का विकास तो हुआ, परन्तु यह फारसी या उर्दू भाषा में था, चूँकि सन् १८३६ तक फारसी न्यायालय की भाषा रही, तत्पश्चात् उर्दू ने उसका स्थान ले लिया। फलतः हिन्दी पत्रकारिता को बढ़ने का अवसर प्राप्त नहीं हुआ। यद्यपि विशेषतः हिन्दू देव नागरी भाषा के विकास का प्रयत्न कर रहे थे। राजा शिवप्रसाद जो उस समय शिक्षा विभाग मे काम करते थे, हिन्दुओं और मुसलमानों के लिए एक मिली-जुली भाषा को विकसित करना चाहते थे। उन्होंने जनवरी १८४५ में 'बनारस अखबार' निकला जिसकी लिपि तो देव-नागरी थी, परन्तु शब्द उर्दू के थे।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि १९वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में पत्रकारिता का विकास तो हुआ, परन्तु यह अधिकतर अंग्रेजी, फारसी एवं उर्दू भाषाओं में हुआ। हिन्दी जो उत्तर प्रदेश के लोगों की मातृभाषा है, उस को पत्रकारिता में उचित स्थान नहीं मिल पाया। सामान्य जनता ज्ञानार्जन के लिए कुछ अंग्रेजी फारसी या उर्दू के पढ़े-लिखे लोगों पर आश्रित रहती थी। यह स्थिति लगभग सन् १८५७ तक बनी रही।

---

१. जे० नटराजन - पूर्व उद्धृत, , पृ० २१

२. वही,

२ | हिन्दी-पत्रकारिता : उद्भव एवं विकास

पत्रकारिता और शिक्षा का चोली-दामन का साथ है। यदि शिक्षितों की संख्या नहीं बढती तो पत्रकारिता का उद्भव एवं विकास सम्भव नही था। उन्नीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध मे भारतीय कला तथा उद्योग-धन्धो को ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने कुचल दिया था। फलतः समस्त भारत मे शनैः-शनैः निर्धनता का साम्राज्य बढ रहा था। प्राचीन भारतीय शिक्षा-पद्धति को समाप्त कर दिया गया। परन्तु कुछ बुद्धिमान एवं उदार अंग्रेजी प्रशासकों तथा ईसाई मिशनरियो ने भारत में शिक्षा के महत्व और उपयोगिता को अनुभव किया। यद्यपि कुछ यूरोपियन शिक्षा का विरोध कर रहे थे।[1] इसी प्रकार का विरोध-पत्र कोर्ट ऑफ डायरेक्टर्स ने गवर्नर-जनरल को दिनांक ५ सितम्बर, १८२७ को दिया।[2]

परन्तु १८वी शताब्दी के उत्तरार्द्ध मे कम्पनी के प्रशासकों को प्रशासन के लिए शिक्षित आदमी नही मिल रहे थे। इसकी पूर्ति के लिए कुछ कालेजो की स्थापना की गई। लार्ड मैकाले ही एक ऐसा व्यक्ति था, जिसने वर्तमान शिक्षा-प्रणाली को जन्म दिया और अपने उद्देश्य की परिभाषा निम्न प्रकार दी : "हमें ऐसे वर्ग को बनाने के लिए भरसक प्रयत्न करना चाहिए जो हमारे और लाखों के मध्य एक कड़ी बने, यह वर्ग रक्त तथा रंग में भारतीय हो और स्वाद, विचार, शब्दों और बुद्धि में अंग्रेज हों।[3] इस कार्य हेतु अंग्रेजी शिक्षा का प्रसार किया गया। परन्तु साथ-ही-साथ दूसरी ओर भारतीय भाषाओ का ह्रास हो रहा था। विशेषतः उत्तर प्रदेश मे, जिसकी मातृ-भाषा हिन्दी है। इसके विकास में अंग्रेजी ने एक नई बाधा खड़ी कर दी। जबकि इसके

---

१. सैलेक्ट कमेटी आफ हाउस आफ लार्डस, जो ईस्ट इण्डिया कम्पनी के कार्यों की जानकारी हेतु नियुक्त की गयी थी। (५ जून, १८३३)

२. कोर्ट आफ डायरेक्टर्स का पत्र गवर्नर-जनरल को, दिनांक ५ सितम्बर, १८२७—एफेयर आफ दी ईस्ट इण्डिया कम्पनी, प्रकाशित १८३२, प्रथम संस्करण, पृ० ४४४-४४६

३. मैकाले की मिनट आफ, १८३५

विकास में पहले से ही परसियन एवं उर्दू रुकावट बनी हुई थी। अतः हिन्दी भाषा का विकास न होने से हिन्दी पत्रकारिता के विकास में रुकावट आई हुई थी।

इन कठिनाइयों के होते हुए भी हिन्दी के प्रबुद्ध वर्ग ने इस ओर प्रयास किया। कानपुर निवासी पं० जुगलकिशोर शुक्ल ने जो कलकत्ता के न्यायालय में क्लर्क हुआ करते थे, प्रथम हिन्दी पत्र 'उदन्त-मार्त्तण्ड' नामक पत्र ३० मई, १८२६ ई० में प्रकाशित किया। यह पत्र उन्होंने भारतीयों के हित-हेतु निकाला था। परन्तु बंगाल में हिन्दी का प्रचलन न होना और आर्थिक कठिनाइयों के कारण यह पत्र अधिक दिन न चल सका और ४ दिसम्बर, १८२७ को यह हमेशा के लिए अस्त हो गया।[1] इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि हिन्दी पत्रकारिता के अंकुर सर्वप्रथम बंगाल में प्रस्फुटित हुए और उत्तर प्रदेश हिन्दी प्रांत में इसका अंकुरण कुछ विलम्ब से हुआ।

उत्तर प्रदेश से प्रकाशित होने वाला 'बनारस अखबार' पहला साप्ताहिक हिन्दी पत्र था, जो जनवरी, १८४५ में काशी से प्रकाशित हुआ। इसे राजा शिवप्रसाद 'सितारे हिन्द' ने प्रकाशित किया। इसके सम्पादक श्री गोविन्दनाथ थत्ते, जो मराठी भाषा-भाषी थे, और हिन्दी अच्छी तरह नहीं जानते थे। यद्यपि यह हिन्दी लिपि में होता था, परन्तु इसमें उर्दू भाषा का प्रयोग होता था; क्योंकि राजा शिवप्रसाद उर्दू समर्थक थे। यह लीथो या शिला पट्ट पर मुद्रित होता था। इसमें अधिकतर अरबी-फारसी के शब्दों की भरमार होती थी। वे हिन्दुस्तानी नाम की दूसरी भाषा चलाने के पक्षपाती थे।[2] उर्दू भी ऐसी जिसे समझना असम्भव-सा था। उदाहरणार्थ—

"यहाँ जो पाठशाला कई साल से जनाब कप्तान किट साहब बहादुर के इहतिमाम और धर्मात्माओं के मदद से बनता है, उसका हाल कई दफा जाहिर हो चुका है। अब वह मकान एक आलीशान बन्ने का निशान तैयार हर चेहार तरफ से हो गया, बल्कि इसके नक्शे का बयान पहले मुन्दर्ज है, सो परमेश्वर के दया से साहब बहादुर ने बड़ी दन्देही मुस्तैदी से बहुत बेहतर और माकूल बनवाया है। देख कर लोग उस पाठशाला के किते के मकानों की खूबियां अक्सर बयान करते हैं और उसके बनने के खर्च का तजबीज करते हैं कि जमा से ज्यादा लगा होगा और हर तरफ से तारीफ के लायक है सो यह सब दानाई साहब ममदूह की है। खर्च से दूना लगावट में वह मालूम होता है।"[3]

''बनारस अखबार' के प्रकाशन के पश्चात् काशी से सन् १८५० में 'सुधाकर' का प्रकाशन तारामोहन मैत्रेय नामक बंगाली सज्जन ने किया। यह बंगाल एवं हिन्दी भाषाओं में प्रकाशित होता था। कहीं-कहीं तारामोहन मित्र नाम भी पाया जाता है। परन्तु वास्तव में वह मित्र नहीं मैत्रेय थे। मित्र कायस्थ होते हैं और मैत्रेय ब्राह्मण। भाषा

---

१. श्रीपाल शर्मा : उदन्त मार्तण्ड (लेख) रमता राम (साप्ताहिक पत्रिका) २४ मई, १९७६, पृ०
२. अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी : पूर्व उद्धृत, पृ० १०५-१०
३. वही

की दृष्टि से इस पत्र को उत्तर प्रदेश का पहला हिन्दी पत्र कहना चाहिए। इसके मुद्रक पंडित रत्नेश्वर तिवारी थे। इस की प्रसार संख्या चौहत्तर थी। इसके ५० हिन्दू, २२ यूरोपियन तथा २ मुसलमान ग्राहक थे। इनसे ७४ रु० महीना की आय होती थी। जब कि पत्र के प्रकाशन का व्यय ५० रु० मासिक था। इस पत्र में ज्ञान और मनोरंजन की पर्याप्त-पाठ्य सामग्री होती थी। इस पत्र के नाम पर ही काशी के प्रसिद्ध ज्योतिषी सुधाकर द्विवेदी का नामकरण हुआ। कहते हैं कि जब डाकिये ने सुधाकर पत्र का अंक इनके चाचाजी के हाथ में दिया, उसी दिन इनका जन्म होने से इनका नाम- सुधाकर रख दिया गया।[1]

सन् १८५२ में आगरे से 'वुद्धि प्रकाश' का प्रकाशन पत्रकारिता की दृष्टि से ही नही, भाषा एव शैली के विकास के विचार से भी विशेष महत्त्व रखता है। यह लाला सदासुखलाल के सम्पादकत्व में प्रकाशित होता था। वे 'नूरूल-अखबार' नामक एक उर्दू पत्र का भी सम्पादन किया करते थे। इन दोनो पत्रो की दो-दो सौ प्रतियां प्रति-दन सरकार खरीदती थी। सरकार जो दो-दो सौ पतियां खरीदती थी, उसका वितरण विशेषत: तहसीलों और जिलों के विद्यालयो में किया जाता था। 'वुद्धि प्रकाश' मे विविध विषयो जैसे इतिहास, भूगोल, शिक्षा तथा गणित आदि पर सुन्दर लेख प्रकाशित होते थे। इस की भाषा की प्रशंसा आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने भी की है।[2]

सन् १८५५ मे आगरे से ही 'सर्वहितकारक' शिव नारायण ने प्रकाशित किया। इसमें हिन्दी और उर्दू दोनों भाषा रहती थी, पर हिन्दी नाम होने से यह माना जा सकता है कि मुख्य भाषा हिन्दी ही होगी।[3]

राजा लक्ष्मणसिंह का नाम हिन्दी साहित्य मे प्रसिद्ध है। उन्होंने महाकवि कालिदास के 'शकुन्तला' एवं 'मेघदूत' आदि नाटकों का हिन्दी मे अनुवाद किया। वे १८६१ तक इटावे में डिप्टी-कलेक्टर थे। उनके किसी भी लेख से यह स्पष्ट नही होता कि उन्होने किसी समाचार पत्र को निकाला था, परन्तु तासी के अनुसार वे 'प्रजा-हितैषी' नामक पत्र के जन्मदाता थे, जो सन् १८५५ मे निकाला और सन् १८५७ के युद्ध के कारण बन्द हो गया हो और सन् १८६१ मे पुनः निकला हो। इसी कारण कुछ लोग 'प्रजा-हितैषी' का जन्म सन् १८६१ ही मानते हैं।[4]

भारतीय पत्रकारिता की कहानी भारतीय राष्ट्रीयता के विकास की कहानी है। दोनों का विकास एक-दूसरे का पूरक रहा है। प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम (१८५७) से पूर्व कुछ पत्रो ने आंदोलन को खूब भड़काया और इसका समर्थन किया।

---

१. अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी : पूर्व उद्धृत, पृ० १११
२. रामचन्द्र शुक्ल : हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० ४१०
३. अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी : पूर्व उद्धृत, पृ० ११८
४. रामचन्द्र शुक्ल : पूर्व उद्धृत

परन्तु गोरी सरकार ने सभी को कुचल दिया।[१] चूंकि सरकार उनसे आतंकित थी। प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम (१८५७) की असफलता के कारण राष्ट्रीय उत्साह कुछ समय के लिए ठण्डा पड़ गया था और भारतीय अवसाद और उदासी से दब गये थे।

'धर्म प्रकाश' नाम का मासिक पत्र सन् १८५९ मे मनसुख राम के सम्पादकत्व में अहमदाबाद से प्रकाशित हुआ करता था। यह विशेषतः धर्म, सम्प्रदाय तथा जाति से सम्बन्धित था। ऐसा अनुमान है कि यह हिन्दी का पत्र था जो सन् १८६७ मे आगरे से हिन्दी और संस्कृत में प्रकाशित हुआ। इसे सनातन धर्म सभा निकालती थी। सन् १८६० मे यही पत्र रुड़की से उर्दू और संस्कृत में प्रकाशित हुआ। उस समय इसके सम्पादक ज्वालाप्रसाद थे।[२] सन् १८६१ में आगरे से गणेशीलाल के सम्पादकत्व में 'सूरज प्रकाश' नामक पत्र का उदय हुआ। इसका उर्दू भाग 'आफताबे-आलमताब' हुआ करता था।[३] आगरे से जो पत्र उर्दू में शिवनारायण 'मुफीद-उल-खलाइक' नाम से निकालते थे, उसके दो भाग कर दिए गये। उर्दु का नाम तो 'मुफीद-उल खलाइक' ही रहा और हिन्दी का 'सर्वोपकारक' रखा गया। सन् १८६५ मे यह पत्र स्वतन्त्र हो गया।[४] इसी वर्ष गुलाब शंकर के सम्पादकत्व में 'तत्त्व-बोधनी' हिंदी पत्रिका का जन्म बरेली में हुआ।[५]

पत्रकारिता के क्षेत्र में ईसाई धर्म प्रचारको ने सराहनीय कार्य किया। यद्यपि उनका उद्देश्य ईसाई धर्म का प्रचार था परन्तु इस उद्देश्य-पूर्ति हेतु उन्होंने भारतीय भाषाओ का आलम्बन बनाया। अतः हिन्दी मे उन्होने पत्र प्रकाशित किए। उन्होंने 'लोकमत' पत्र आगरे शहर के पास सिकन्दरा से १ जनवरी, १८६३ मे प्रकाशित किया। यह मासिक पत्र था। इसमें अधिकतर बाइबिल का हिन्दी अनुवाद होता था। इसके संपादक हिन्दू जान पड़ते हैं जो नये ईसाई बने थे।[६]

उपरोक्त हिन्दी पत्रकारिता के उद्भव-विकास से प्रतीत होता है कि उत्तर प्रदेश के पश्चिम-भाग से, यह अधिक पनप रही थी और पूर्वी भाग में केवल काशी ही एक प्रमुख केन्द्र था जहां से पत्र निकल रहे थे। इसका कारण था कि उत्तर-प्रदेश की राजधानी आगरे में थी। हाकिम जवाहरलाल ने इटावे से 'प्रजाहित' पाक्षिक पत्र और आगरे से 'ज्ञान प्रकाश' (१८६१) प्रकाशित किए। 'ज्ञान प्रकाश' परम्परावादी धार्मिक पत्र था। इसी परम्परावादी क्षेत्र मे सन् १८६६ मे 'भारत खण्ड मित्र' आगरे

---

१. गैरसीन डी तासी : 'हिस्ट्री शैला लिटरेचर हिन्दी एट हिन्दुस्तानी', द्वितीय सस्करण, परीस, १८७०, पृ० १५४
२. अम्बिकाप्रसाद बाजपेयी : पूर्व उद्धृत, पृ० १२०
३. वही, पृ० १२०
४. जे० नटराजन : पूर्व उद्धृत, पृ० १८४
५. वही, पृ० २७६
६. अम्बिकाप्रसाद बाजपेयी : पूर्व उद्धृत, पृ० १२२

से पं० बंशीधर, जो एक अध्यापक हुआ करते, निकालते थे।[1] सन् १८६७ में आगरे से 'सर्वजनोपकारक' प्रकाशित हुआ।[2] सन् १८६६ में 'ज्ञान-दीपक पत्रिका' आगरे के निकट सिकन्दरा से आरम्भ हुई।[3]

सन् १८६७ तक संपूर्ण भारत विदेशी विचारधारा से प्रभावित हो चुका था। विदेशी विचार एवं भाव से रंगी शिक्षा उन्नति कर रही थी। ऐसी शिक्षा की उन्नति से परम्परावादी विचारधारा का लोप हो रहा था और समाज में अनेक समाज सुधारवादी संगठन, ब्रह्मसमाज, आर्य समाज, रामकृष्णा-मिशन, थियोसोफीकल सोसाइटी देवबन्द, अलीगढ़ आंदोलन, तथा स्थानीय और जातीय आधार पर बनी समाज सुधारवादी संस्थायें जन्म ले रही थी। ये समाज-सुधारक संस्थायें शिक्षित वर्ग ने बनायीं। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का स्थान इस शिक्षित वर्ग में सर्वोपरि है। इसी शिक्षित वर्ग ने पत्रकारिता को एक नई दिशा प्रदान की। भारतेन्दु जी के आगमन से हिन्दी पत्रकारिता को विकसित होने का अवसर प्राप्त हुआ। अतः १५ अगस्त, १८६७ को काशी से भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने 'कवि-वचन-सुधा'[4] मासिक पत्रिका का आरम्भ कर हिन्दी पत्रकारिता के विकास में अपना योगदान दिया। आरम्भ में, इसमें प्रसिद्ध कवियों की कविताओं को छापा जाता था। भारतेन्दु जी इसके माध्यम से भारतीय जनता को हिन्दी कविता की नई परम्परा से परिचित कराना चाहते थे। यह पत्रिका १६ पृष्ठों में छपती थी। इसके प्रथम अंक को देखने का सौभाग्य नेशनल लाइब्रेरी कलकत्ता में हुआ, जहाँ पर इसका अच्छा संग्रह है। इसके प्रथम पृष्ठ का आरम्भ, श्री गोपीजन वल्लभाय नमः से होता है। इसमें सर्वप्रथम वल्लभाचार्य की वंदना की गई है, जो निम्न प्रकार है—

श्री वल्लभ आचार्य के भजत भजन सब पाप।
श्री वल्लभ करुना करत हरत सकल संताप॥

जन-साधारण में प्रचलित भाषा का उदाहरण भी इसी अंक में छपे इश्तहार से प्राप्त होता है। यह इश्तहार इस प्रकार से है : "विदित हो कि जिन सुरसिकों को और गुण-ग्राहकों को 'कवि वचन सुधा' अर्थात् जो कि हर महीने में एक बार प्राचीन कवियों के रचित काव्य १६ पृष्ठ में छापे जायेंगे उसको खरीदना मंजूर हो तो कृपा करके खत बनाम बाबू हरिश्चन्द्र, मौहल्ला चौखम्भा बनारस को भेजें या बनाम गोपीनाथ पाठक, मोहतमिम लाइट प्रेस, मौहल्ला दशाश्वमेध में भेजें। दाम पहले पृष्ठ में लिखा है और पहिले-पहिले जिस महात्मा के यहाँ यह भेजा जाय यदि उनको लेना

---

१. डा० रामरतन भटनागर : पूर्व उद्धृत, पृ० ७६
२. अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी : पूर्व उद्धृत, पृ० १२८
३ जे० नटराजन : पूर्व उद्धृत, पृ० १८४
४. कविवचन सुधा : १५ अगस्त, १८६७, नेशनल लाइब्रेरी, कलकत्ता

हो इत्तिला दें नहीं तो उसी समय फेर दें और अगर न फेरेंगे तो यह समझा जायगा कि उन्हें लेना मंजूर है। फिर बराबर भेजा जायेगा और जो लोग इसकी मद्द करेंगे, उनके नाम भी प्रकाशित किए जायेंगे।"[1]

परन्तु 'कवि वचन सुधा' शीघ्र ही मासिक से पाक्षिक हो गई और इसमें पद्य के स्थान पर गद्य का समावेश होने लगा। सन् १८७५ मे यह साप्ताहिक हो गई और हिन्दी तथा अंग्रेजी में प्रकाशित होने लगी और इसमें राजनैतिक तथा सामाजिक लेख प्रकाशित होने लगे। अतः इसने हिन्दी पत्रों के पाठकों का एक व्यापक वर्ग तैयार कर दिया। भारतेन्दु जी ने युगानुरूप लेख प्रकाशित कर जन-साधारण तथा सरकार का ध्यान राजनैतिक एवं सामाजिक बुराइयो की ओर आकृष्ट किया। परन्तु कुछ समय पश्चात् उन्होंने इसका भार अन्य लोगों पर छोड़ दिया। जिससे सन् १८८३ में इसका स्तर गिर गया और सन् १८८५ में तो यह पत्रिका वन्द ही हो गई।[2]

यह समय अंग्रेज अधिकारियो के सामने हाथ जोडे रहने का था। परन्तु भारतेन्दु निडर भाव से राजनैतिक लेख लिखकर जनता-जनार्दन को झकझोर रहे थे। इस प्रकार यह कहना अतिशयोक्ति न होगी कि भारतेन्दु को हिन्दी पत्रकारिता मे वही स्थान मिलना चाहिए, जो राजा राममोहनराय का है।[3]

सन् १८६८ मे प्रयाग से विविध विषय भूपित 'वृत्तान्तदर्पण' नामक पत्र सदासुखलाल के सम्पादकत्व में निकला, पर दो वर्ष बाद वह कानून का पत्र बना दिया गया। सम्भवतः यह मासिक पत्र था।[4] सन् १८६६ के लगभग हिन्दी में अनेक पत्र प्रकाशित हुए। मेरठ में गिरप्रसाद सिंह ने 'मंगल समाचार'; आगरे से 'जगत् समाचार', 'जगदानन्द' और 'पापमोचन' प्रकाशित हुए। 'जगत्-समाचार' प्रति सोमवार को दारुल-उल-उलूम प्रेस से निकलता था। 'जगदानन्द' ठाकुरसिंह के सम्पादकत्व में तथा 'पापमोचन' (हिन्दी-उर्दू) कृष्णचन्द्र ने प्रकाशित किया।[5] 'विद्यादर्श' मेरठ से और 'समय विनोद' नैनीताल से पाक्षिक पत्र निकले। सन् १८७५ में 'समय विनोद' तथा 'सुदर्शन' समाचार-पत्र परस्पर मिल गये। इस समय अल्मोड़ा से 'अल्मोड़ा अखबार' भी प्रकाशित हुआ।

आगरे से 'एजूकेशनल गजट' उर्दू-हिन्दी में युसुफअली और अमीरउद्दीन के सम्पादकत्व में निकला था। इसकी हिन्दी में केवल ५० प्रतियाँ छपती थीं और इसका

---

१. 'कवि वचन-सुधा' : १५ अगस्त, १८६७, नेशनल लाइब्रेरी, कलकत्ता
२. अंबिका प्रसाद बाजपेयी : पूर्व उद्धृत, पृ० १२८-२६
३. डा० श्रीपाल शर्मा : (अप्रकाशित शोध ग्रन्थ) दी कन्ट्रीब्यूशन ऑफ इन दी ग्रोथ ऑफ दी सोशल एण्ड पोलिटिकल कानसियस इन दी यू० पी० एण्ड पंजाब १८५८-१६१०, पृ० १७ (जिस पर मेरठ विश्वविद्यालय ने उन्हें पी० एच० डी० की उपाधि प्रदान की)।
४. वही
५. वही, पृ० १८

वार्षिक मूल्य ६ रु० था। इसी वर्ष 'ब्रह्म ज्ञानप्रकाश' नामक पत्र कुछ ब्रह्म मतानुयाइयों ने बरेली से निकाला था।[1]

'आर्य-दर्पण' मुन्शी बख्तावरसिंह के सम्पादकत्व में शाहजहाँपुर से प्रकाशित हुआ। यह पत्रिका पश्चिमोत्तर प्रदेश में आर्यसमाज के कार्य-क्रमों के प्रचार हेतु सामने आई।

सन् १८७१ मे हिन्दी पत्रों की बाढ़-सी आई। कानपुर से 'हिन्दू प्रकाश' तथा प्रयाग से 'प्रयागदूत' प्रकाशित हुए। इसी वर्ष ईसाइयों ने भी दो पत्र निकाले थे, एक मेरठ से 'म्यूर गजट' और दूसरा सहारनपुर से 'सॉन्डर्स गजट'। 'म्यूर गजट' हिन्दी-उर्दू में तथा 'सॉन्डर्स गजट' शुद्ध हिन्दी में प्रकाशित होता था।[2] यू० पी० इलाहाबाद रिपोर्ट के अनुसार सन् १८७१-७२ में शुद्ध हिन्दी में ५ और हिन्दी-उर्दू मे पाँच समाचार पत्र प्रकाशित होते थे।[3] सन् १८७२ मे आगरे से 'प्रेमपत्र' नामक पाक्षिक पत्र रायबहादुर सालिगराम ने आरम्भ किया जिसके सम्पादक पं० रुद्रदत्त थे, जो अपने समय के प्रसिद्ध सम्पादक रहे हैं।[4]

सन् १८७३ मे भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने 'हरिश्चन्द्र मैगजीन' मासिक पत्रिका निकाली, जिसका नाम आठ अंकों के पश्चात् जून १८७४ में बदल कर 'हरिश्चन्द्रिका' कर दिया गया था। इसका पहला अंक १५ अक्टूबर, १८७३ को निकला। इसमें अधिकतर पुरातत्त्व, उपन्यास, कविता, आलोचना, ऐतिहासिक, राजनैतिक, साहित्यिक तथा दार्शनिक लेख, कहानियाँ एवं व्यंग्य आदि प्रकाशित होते थे। इसकी ५०० प्रतियाँ निकलती थीं। इसकी प्रतियाँ सरकार भी खरीदती थी। परन्तु इसके देशभक्तिपूर्ण लेखों को देखकर सरकार ने इसे लेना बन्द कर दिया। सन् १८८० में इसे 'मोहन-चंद्रिका' मे मिला दिया गया और चार वर्षों तक संयुक्त रूप से निकलती रही।[5]

भारतेन्दु जी ने स्त्री शिक्षा प्रचारार्थ 'बाल-बोधिनी' मासिक पत्रिका १ जनवरी, १८७४ को प्रकाशित की। इसके संपादक, मुद्रक और प्रकाशक हरिश्चन्द्र ही थे।[6] इसकी पृष्ठ संख्या ८ से १२ तक होती और इसका मूल्य ढाई आने प्रति होता था। इसके प्रथम अंक के प्रथम पृष्ठ पर जो निवेदन छपा है, वह नारी जागरण के लिए महत्त्वपूर्ण है— "मेरी प्यारी बहनों ! मैं एक तुम्हारी नई बहन बाल-बोधिनी, आज तुम लोगों से मिलने आयी हूँ, और यही इच्छा है तुम लोगों से सब महीनों में एक बार मिलूँ; *देखो मैं तुम सब लोगों से अवस्था में कितनी छोटी हूँ, क्योंकि तुम सब बडी हो चुकी*

---

१. अंबिका प्रसाद बाजपेयी : पूर्व उद्धृत पृ० १३४
२ वही, पृ० १३५
३. यू० पी० इलाहबाद रिपोर्ट १८६१-६२
४. अम्बिकाप्रसाद बाजपेयी : पूर्व उद्धृत, पृ० १४०
५. हिन्दी पत्रकारिता : विविध आयाम, दिल्ली, १९७६, पृ० १२०-२१ डा० वेद प्रताप वैदिक द्वारा संपादित।
६. बालबोधिनी : (प्रथम अंक) १ जनवरी, १८७४, नेशनल लायब्रेरी कलकत्ता।

हो और मैं अभी जन्मी हूँ, और इस नाते से तुम सबकी छोटी बहन हूँ, पर मैं तुम लोगों में हिल-मिलकर सहेलियों और संगिनों की भाँति रहना चाहती हूँ। इसमें मैं तुम लोगों से हाथ-जोडकर और आँचल खोलकर यही माँगती हूँ कि मैं जो कभी कोई भली-बुरी, कड़ी-नरम, कहनी-अनकहनी कहूँ, उसे मुझे अपनी समझकर क्षमा करना, क्योंकि मैं जो कुछ कहूँगी सो तुम्हारे हित की कहूँगी।"[1]

इसी वर्ष मेरठ से 'नागरी प्रकाश' मासिक पत्र, जिसका उद्देश्य नागरी एव हिन्दी अक्षरों का प्रचार था तथा प्रयाग से 'नाटक-प्रकाश' मासिक पत्रिका, जिसका उद्देश्य नाटकों का प्रचार करना था प्रकाश मे आये।[2]

'भारत बन्धु' (साप्ताहिक) अलीगढ से वकील तोताराम वर्मा निकाला करते थे। उसका वार्षिक मूल्य ७.५० रुपया था। वर्मा जी हिन्दी के भक्त और लेखक थे। हिन्दी की उन्होंने जीवन भर सेवा की। एक भाषा संवर्द्धिनी सभा भी बनाई थी।[3]

प्रसिद्ध इतिहासवेत्ता डॉ० ताराचन्द के अनुसार नार्थ वेस्ट प्रोविन्सीज में प्रेस का विकास प्रेसीडेन्सी शहरों—बम्बई, मद्रास तथा कलकत्ता की अपेक्षा धीमा था। सन् १८७५ मे कुल ३७४ वर्नाकूलर तथा एंग्लो-वर्नाकूलर तथा १४७ अंग्रेजी पत्रों में से १०२ बंगाल मे, ८, बम्बई मे, ५८ मद्रास मे, ६५ नार्थ वेस्ट प्रोविन्सीज में तथा ६३ पंजाब में थे।[4]

स्वामी दयानन्द सरस्वती ने आर्यसमाज की स्थापना कर इसी वर्ष भारतीय समाज को नई दिशा देनी आरम्भ की। फलत. प्रयाग मे 'प्रयाग धर्मप्रकाश' नामक मासिक पत्र पं० शिवराखन ने प्रकाशित किया। इसकी भाषा संस्कृत और हिन्दी होती थी।[5] प्रयाग से ही 'धर्मप्रकाश' पत्रिका, जिसमे सनातन धर्म की चर्चा हुआ करती थी, प्रकाशित हुई। 'सुदर्शन समाचार' भी प्रयाग से मुरलीधर और रामव्रजप्रसाद प्रकाशित करते थे। बनारस से 'आनन्द लहरी' साप्ताहिक पत्रिका धीरज शास्त्री के सम्पादकत्व में प्रकाशित की जाती थी परन्तु सन् १८७६ में नार्थ वेस्ट प्रोविन्सीज व अवध मे वर्नाकूलर समाचार पत्रों की संख्या ६० थी।[3] इसी वर्ष लक्ष्मीशंकर मिश्र के सम्पादकत्व मे, 'काशी-पत्रिका' का जन्म हुआ। यह इतनी शीघ्रता से प्रसिद्ध हुई कि उसकी प्रकाशन संख्या ४५० तक पहुँच गई।[6] इस समय वर्नाकूलर पत्रकारिता के क्षेत्र में एक विशेष बात यह हो रही थी कि शिक्षित और बौद्धिक विचार वाले व्यक्तियो की तीव्र

---

१. बालबोधिनी (प्रथम अंक), १ जनवरी, १८७४, नेशनल लायब्रेरी, कलकत्ता
२. अंबिका प्रसाद वाजपेयी : पूर्व उद्धृत, पृ० १४५
३. वही,
४. डा० ताराचन्द : हिस्ट्री ऑफ दी फ्रीडम मूवमेंट इन इंडिया, नई दिल्ली १५ अगस्त, १९६७ द्वितीय संस्करण, पृ० २७६
५. मार्गेट बर्नस : पूर्व उद्धृत, पृ० २७६
६. श्रीपाल शर्मा : पूर्व उद्धृत (शोध ग्रंथ) पृ० २२

इच्छा थी कि देशवासियों को ज्ञान प्रदान कर जागृत किया जाये।[1] 'आर्यभूषण' (मासिक) पत्रिका शाहजहाँपुर से पं० शिवनारायण के संपादकत्व में ब्रह्म-समाज के कार्यक्रम के प्रकाशन हेतु निकली।[2]

शाहजहापुर के एक अन्य सज्जन बख्तावरसिंह बड़े उत्साही आर्यसमाजी थे। उन्होंने १८७० मे 'आर्य-दर्पण' पत्र (साप्ताहिक) और ६ वर्ष पश्चात् 'आर्यभूषण' नामक मासिक-पत्र निकाला, जो सन् १९०६ तक चला।[3]

'भारतेन्दु मंडल' के वरिष्ठ सदस्य पं० बालकृष्ण भट्ट ने १ सितम्बर १८७७ को अपनी मनोभावनाओं को जनता तक पहुँचाने के हेतु 'हिन्दी-प्रदीप' (मासिक) पत्रिका हिन्दी प्रवर्धनी सभा के माध्यम से प्रयाग से प्रकाशित की। यह १६ पृष्ठों में होती थी। जिसका वार्षिक मूल्य एक रुपया आठ आना था। यह पत्रिका साधारण कागज पर निकलती थी और इसका कवर हरे या गुलाबी रंग का होता था। पत्रिका में भट्ट जी के लेख—विनोद और व्यंगयात्मक शैली मे, सामाजिक, राजनीतिक अथवा धार्मिक आशय से परिमंडित होते थे।[4] भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने इस पत्र का उद्घाटन किया था। आपने ही इसका सिद्धात गद्य मे लिखा था, जो इसके सिद्धांत उद्देश्य का संकेत करता था[5]—

शुभ सरस देश सनेह पूरित, प्रकट ह्वै आनन्द भरै।
बचि दुसह दुर्जन वायु सों मणि दीप सम थिर नहिं टरै॥
सूझै विवेक विचार उन्नति कुमति सब यामें जरै।
हिंदी-प्रदीप प्रकाशि मुरखतादि भारत तम हरै॥

पत्रकारिता के दृष्टिकोण से 'हिन्दी-प्रदीप' का जन्म एक क्रांतिकारी घटना थी। चूंकि इसने हिन्दी-पत्रकारिता को नयी दिशा प्रदान की। 'हिन्दी-प्रदीप' का राष्ट्रीय स्तर निर्भीकता का था। अतः गोरी सरकार की कड़ी नजर इस पर रहती थी। भट्ट जी को इसके प्रकाशित तथा मुद्रित करने मे अनेकानेक कठिनाईयों का सामना करना पड़ा। परन्तु वे अपने रास्ते से पीछे नहीं हटे।[6] इस पत्रिका में अप्रैल १९०८ के अंक मे पं० माधवशुक्ल की 'बम क्या है' नामक कविता छपी। फलतः सरकार ने इस पर रोक लगा दी।[7] भट्ट ने साहस बटोर कर इसे पुन: निकाला परन्तु सरकार की कोप-दृष्टि के कारण फिर बन्द करनी पड़ी।[8]

---

१. आर० एस० महरोत्रा के पेपर्स।
२. अम्बिकाप्रसाद : पूर्व उद्धृत, पृ० १४८
३. वही
४. डा० श्रीपाल शर्मा : निर्भीक राष्ट्रवादी पत्रकार पं० बालकृष्ण भट्ट (लेख) जयमहामना मासिक पत्रिका, जुलाई १९७६
५. वही
६. वही
७. हिन्दी प्रदीप : अप्रैल १९०८, माइक्रोफिल्म, नेहरू मेमोरियल म्यूजियम एवं लाइब्रेरी, नई दिल्ली
८. मधुकर भट्ट : बालकृष्ण भट्ट : व्यक्तित्व एवं कृतित्व, पृ० १२४

जब सन् १८७६ में लार्ड लिटन भारत के वायसराय बनकर भारत आये, उस समय भारतीय भाषाओं के पत्र तत्कालीन भारतीय जन-जागृति के विकास में पूर्ण-रूपेण सहयोग दे रहे थे। यद्यपि प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम (१८५७) को विदेशी साम्राज्यवादियों ने अपनी घृणित दमन नीतियों से कुचल दिया था तथापि विद्रोह उत्तर भारत, विशेषतः उत्तरप्रदेश (उस समय नार्थ वेस्ट प्रोविन्सीज) जागरण पथ पर शनैः-शनैः अग्रसर हो रहा था। समाचार पत्रों द्वारा की गई जन-जागृति लार्ड लिटन को खाये जा रही थी। फलतः उसने १४ मार्च, १८७८ को वर्नाकूलर प्रेस एक्ट की घोषणा की।[1] इस कानून के अनुसार सरकार को यह अधिकार मिल गया कि वह देशी भाषाओं के सम्पादक, प्रकाशक या मुद्रक को यह आदेश दे सकती थी कि वह सरकार से यह इकरारनामा कर दे कि अपने पत्र में कभी कोई ऐसी बात प्रकाशित नहीं करेंगे, जो जन-हृदय मे सरकार के प्रति घृणा या द्रोह-भाव का सृजन कर सकती हो।[2] कानून के द्वारा वर्नाकूलर प्रेस का गला घोट दिया गया। परन्तु प्रसन्नता इस बात की है कि लार्ड लिटन के निरंकुश दमन-चक्र के पश्चात भी भारतीय प्रेस अपना कर्त्तव्य पूर्ण निष्ठा से निभा रही थी और सन् १८७८ में नार्थ वेस्ट प्रोविन्सीज व अवध में देशी भाषाओं मे ४१ पत्र-पत्रिकाएँ प्रकाशित हो रही थीं। जबकि सन् १८७७ मे कुल ४६ थी।[3] सन् १८७८ मे सबसे पहला जातीय पत्र 'कायस्थ समाचार' प्रयाग से प्रकाशित हुआ। इससे पहले सनातनियों, आर्यसमाजियों तथा ब्रह्म-समाजियों के पत्र तो प्रकाशित हो रहे थे परन्तु किसी जाति विशेष का यह पहला पत्र था।[4] इसकी देखा-देखी अन्य जातियों ने भी अपनी जाति के नाम से पत्रों का प्रकाशन किया। इसी वर्ष 'आर्यामित्र' नामक पत्र काशी से भी प्रकाशित हुआ, जिसके मुद्रक एवं प्रकाशक हरि-कृष्ण भट्टाचार्य हुआ करते थे।[5]

वर्नाकूलर प्रेस एक्ट का विरोध देश-विदेश मे प्रतिदिन बढता जा रहा था और यह विरोध तब तक होता रहा जब तक लार्ड लिटन भारत में वायसराय पद पर आसीन रहे। साथ ही साथ हिन्दी पत्रकारिता उन्नति की ओर कदम बढ़ा रही थी। परन्तु सन् १८७९-८० मे इसकी गति कुछ धीमी रही।

सन् १८८१-८२ का समय हिन्दी पत्रकारिता के विकास मे विशेष स्थान रखता है। यू० पी० में उस समय लगभग ५५ पत्र-पत्रिकाएँ थी।[6] सन् १८८१ में कुछ 'नवीन-वाचक' लखनऊ से, 'भारत दीपिका' (नवम्बर मे) और 'आरोग्य दर्पण' प्रयाग

---

१. लेजिस्लेटिव डिपार्टमेंट : मार्च १६७८, न० १४३ से १४७ (ए)
२. कमलापति त्रिपाठी : पू० उद्धृत, पृ० १०१
३. रिपोर्ट आन नेटिव न्यूज पेपर्स : एन० डब्लू० पी० एण्ड पंजाब, १८७७
४. अम्बिकाप्रसाद बाजपेयी : पूर्व उद्धृत, पृ० १५१
५ रिपोर्ट आन नेटिव न्यूजपेपर्स : एन० डब्लू० पी० एण्ड पंजाब, १८७८
६. डा० श्रीपाल शर्मा : पूर्व उद्धृत (शोध ग्रन्थ) पृ० २५

से पं० जगन्नाथ वैद्य प्रकाशित करते थे, जिसका वार्षिक मूल्य दो रुपये ५० पैसे होता था। इसी वर्ष 'आनन्दकादम्बिनी' मिर्जापुर से पं० बदरीनारायण उपाध्याय के संपादकत्व तथा प्रकाशन में प्रकाशित हुई।[१]

हिन्दी-पत्रकारिता शनैः-शनैः अग्रसर हो रही थी। सन् १८८२ में कई साप्ताहिक पत्र तथा मासिक पत्र प्रकाश में आये। इनमें 'प्रयाग समाचार' का स्थान मुख्य था। इसके जन्मदाता पं० देवकीनन्दन तिवारी थे, परन्तु उनकी निर्धनता पत्र के लिए दुखदायी बन गई। वे अपना पत्र छापकर कंधे पर लादकर स्वयं बेचा करते थे। परन्तु वे स्वतन्त्र चिन्तन के व्यक्ति थे जो जी में आता था उसे लिखते थे। इस वर्ष ही प्रयाग से 'बलदर्पण' मासिक, जो सम्भवतय. व्यायामादि से संबंधित था, प्रकाशित हुआ।

इन दिनों उत्तर प्रदेश में हिन्दी-उर्दू की लड़ाई जोरों पर थी। शिक्षा अधिकारी उर्दू का स्पष्ट रूप से समर्थन कर रहे थे, जबकि हिन्दी को कार्यालय द्वारा स्वीकृत कर लिया गया था।[२] हिन्दी वाले प्रयास कर रहे थे कि किस प्रकार राजकीय कार्यालयों में प्रवेश पाया जाये? इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए मेरठ नगर के पं० गौरीदत्त शर्मा ने 'देवनागरिक प्रचारक' पत्र निकाला जो देवनागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित होता था।[३] शर्मा जी ने अपनी पत्रिका के माध्यम से हिन्दी के उत्थान में सराहनीय योगदान देकर हिन्दी के उन्नायकों में विशेष स्थान पा लिया।

सन् १८८३ तक हिन्दी पत्रकारिता ने कुछ तरुणता प्राप्त कर ली थी। साथ ही साथ उदारवादी लार्ड रिपन की उदारवादी नीतियों के कारण हिन्दी-पत्रकारिता के विकास का नया रास्ता खुलता जा रहा था। हिन्दी की नयी प्रतिभायें हिन्दी के उत्थान, समाज-सुधार एवं राजनैतिक चेतना को जागृत करने हेतु पत्रकारिता का आलंबन ले रही थीं। यद्यपि धनाभाव के कारण उनकी पत्रिका कुछ समय पश्चात् ही रुक जाती थी। फलतः गोस्वामी ज्वालाप्रसाद ने वृन्दावन से 'भारतेन्दु' नामक पाक्षिक पत्र को निकाला, परन्तु यह जनवरी १८८३ में बंद हो गया।[४] इसी वर्ष बरेली से राय बंशीलाल के सम्पादकत्व में 'सत्यप्रकाश' नामक मासिक पत्रिका तथा बाबूराम वर्मा ने 'दिनप्रकाश' लखनऊ से निकाले।[५] सबसे तेजस्वी मासिक पत्रिका पं० प्रतापनारायण मिश्र ने 'ब्राह्मण' कानपुर से प्रकाशित की। यह सन् १८८७ तक कानपुर से निकलती रही तत्पश्चात् इसके निकालने का भार खग विलास प्रेस, बांकीपुर के बाबू रामदीन सिंह ने लिया।[६] इस प्रकार कालांतर में उत्तर प्रदेश की

१. अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी : पूर्व उद्धृत, १८४
२. ए० एस० हैबेल का तासी को पत्र, पृ० ६६८, तासी के डिसकोर्सेज का अनुवाद
३. अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी : पूर्व उद्धृत, पृ० १८६
४. वही
५. वही, पृ० १८७
६. डा० रामरतन भटनागर : पूर्व उद्धृत, पृ० ११३

पत्रकारिता वर्ष-प्रतिवर्ष बढ़ रही थी। सन् १८८३-८४ में पत्रों की संख्या ६८ हो गई थी। सन् १८८४ में पत्र-पत्रिकाओं की संख्या ६३ हो गई, जिनमें ७६ उर्दू, १२ हिन्दी और ५ हिन्दी-उर्दू के थे।[1]

सन् १८८५ में एक प्रमुख पत्र 'भारत-जीवन' काशी से रामकृष्ण वर्मा के सम्पादकत्व में प्रकाशित हुआ और तुरन्त एक प्रभावशाली पत्र बन गया तथा १८८५ में इसकी सब से अधिक प्रतियाँ (१७५०) प्रकाशित होती थी।[2] इस समय जातीय पत्र-पत्रिकायें प्रकाशित हो रही थीं। क्योंकि प्रत्येक जाति अपनी जाति का सुधार चाहती थी। इन पत्रों में कान्यकुब्ज-प्रकाश' मासिक पत्रिका लखनऊ से पं० बलभद्र के सम्पादकत्व में प्रकाशित हुई। 'गौड़ कायस्थ' बाबूलाल के सम्पादकत्व में प्रयाग से 'कुल श्रेष्ठ' मथुरा से, 'भारतभूषण' कानपुर से, 'धर्म प्रचार' मासिक काशी से, एक बंगाली के द्वारा, 'अग्रवालहितकारक' नामक पाक्षिक लखनऊ से, 'मथुरा अखबार' पं० दीनदयाल शर्मा के संपादन में और आर्य-समाजियों द्वारा 'वेदप्रकाश' मेरठ से प्रकाशित हुए।[3] अतः इस वर्ष उत्तरप्रदेश व अवध से शुद्ध हिन्दी में १२, हिंदी-उर्दू ५ तथा हिंदी अंग्रेजी १ पत्र-पत्रिकायें अर्थात् १८ प्रकाशित हुईं।[4]

सन् १८८५ में राजा रामपाल सिंह अपना 'हिन्दोस्थान' लंदन से कालाकांकर ले आये और यहाँ से हिन्दी और अंग्रेजी संस्करण दैनिक अलग-अलग रूप से प्रकाशित करने लगे। इसी वर्ष कानपुर से बाबू सीताराम, जो हिंदी-प्रेमी थे, ने 'भारतोदय' नामक दैनिक पत्र निकालने का प्रयास किया। इसी वर्ष 'गुजराती-पत्रिका' हिंदी-गुजराती में काशी से गुजरातियों ने निकाली। 'भारत प्रकाश' मुरादाबाद से बनवारीलाल मिश्र ने तथा पं० ज्वालाप्रसाद ने आगरे से 'सत्यप्रकाश' को प्रकाशित किया तथा गुरुबख्श सिंह ने कानपुर से 'भारत चन्द्रोदय' निकाला। गंगासहाय और कल्याणराय ने मेरठ से 'आर्य-समाचार' निकाला।[5]

सरकारी रिपोर्टर की फाइल के अनुसार नार्थ वेस्ट प्रोविन्सिज से ७५ और अवध से २५ पत्र-पत्रिकायें प्रकाशित हो रही थीं जिनमें १६ शुद्ध हिन्दी में, ३ हिंदी-उर्दू में तथा १ हिंदी-अंग्रेजी में। हिंदी पत्रों में 'भारत-जीवन', रामकृष्ण वर्मा द्वारा सम्पादित, की प्रतियां (१७५०) सबसे अधिक थी।[6]

---

१. डा० ताराचन्द : पूर्व उद्धृत, पृ० ४६३
२. होम डिपार्टमेंट, पब्लिक, प्रोसीडिंग्स, मार्च १८८६, नं० १२२-२४ (बी)
३. रिपोर्ट ग्रान नेटिव न्यूज पेपर्स : एन० डब्लू० पी० एण्ड पंजाब, १८८५
४. वही
५. रिपोर्ट ग्रान नेटिव न्यूज पेपर्स : एन० डब्लू० पी० एण्ड पंजाब, १८८५
६. होम डिपार्टमेंट पब्लिक, प्रोसिडिंग्स, मार्च १८८६, नं० १२२-२४ (बी)

१. निम्न तालिका से ज्ञात हो जाता है कि नार्थ वेस्ट प्रोविन्स तथा अवध में समाचार पत्रों की स्थिति किस प्रकार थी :

राज्य	मासिक	द्वि-मासिक	त्रि-मासिक	साप्ताहिक	द्वि-साप्ताहिक	त्रि-साप्ताहिक	दैनिक	योग	पत्र जो आरम्भ हुए	रुक जाने वाले पत्रों की संख्या	उन पत्रों की संख्या जो रजिस्टर पर रहे।
एन० डब्लू० पी०	१४	४	३	५१	२	—	१	७५	१६	१३	६२
तथा अवध	८	३	१	९	—	१	३	२५	५	३	२२

स्रोत.—होम डिपार्टमेंट, पब्लिक, प्रोसीडिंग्स, मार्च १८८६, न० १२२-२४ (बी)

२. भाषा के आधार पर पत्रों का वर्गीकरण निम्न प्रकार से था—

भाषा	एन० डब्लू० पी०	अवध	योग
उर्दू	५४	२२	७६
हिन्दी	१६	३	१९
हिन्दी-उर्दू	३	—	३
उर्दू-अंग्रेजी	१	—	१
हिन्दी-अंग्रेजी	१	—	१
मराठी-अंग्रेजी	—	—	—
अरबिक	—	—	—
योग	७५	२५	१००

स्रोत: : होम डिपार्टमेंट, पब्लिक, प्रोसिडिंग्स, मार्च १८८६, न० १२२-२४ (बी)

इन दिनों विशेष बात यह थी कि कुछ पत्र-पत्रिकाओं ने राजनैतिक पहलुओं पर भी प्रकाश डालना आरम्भ कर दिया। आर्यसमाज संस्था ने भी अनेक स्थानों से अपने पत्रों—'आर्य-दर्पण', 'आर्यभूषण' 'आर्य समाचार', तथा बलदेव' आदि को प्रकाशित किया, ताकि समाज के कार्यक्रम को सरलता से जन-साधारण तक पहुँचाया जा सके।

सन् १८८६ का वर्ष हिन्दी पत्रकारिता के लिए शुभ सिद्ध हुआ चूँकि ब्रिटिश सरकार ने पत्रों को अपने समाचार देने आरम्भ कर दिए थे। सरकार के इस व्यवहार के लिए 'हिंदी-प्रदीप' तथा 'भारत-जीवन' ने सरकार को धन्यवाद दिया।[1] इस वर्ष कुछ नये पत्र —'रसिक पंच' मासिक प्रयाग से पं० बलभद्र मिश्र के संपादन में तथा पं० लक्ष्मणप्रसाद ब्रह्मचारी ने 'सुख संवाद' प्रकाशित करने आरम्भ किये।

परन्तु सन् १८८७ का वर्ष हिंदी-पत्रकारिता के विकास में कुछ असंतोषजनक रहा। पत्रों की संख्या ७७ से घटकर ७१ रह गई। [illegible] के आधार पर २२ उर्दू में, ११ हिंदी में, ४ हिंदी-उर्दू में, तथा २ उर्दू-अंग्रेजी में और इनमें से १८ उर्दू में तथा ३ हिंदी में प्रकाशित हुए। कुछ नये पत्र 'आयुर्वेदोद्धारक' मथुरा का मासिक पत्र पं० दत्तराम चौबे ने प्रकाशित किया। [illegible] के विरोध में पं० हरिशंकर ने 'धर्म सभा' नामक साप्ताहिक पत्र निकाला। [illegible] हिंदी और गुजराती में रामनारायण के सुमन प्रेस मथुरा से प्रकाशित हुआ और 'प्रयाग मित्र' पाक्षिक प्रयाग से निकाला।[2]

सन् १८८८ में तीन पत्र खत्रियों के निकले। इनमें 'खत्री-हितकारी' तथा 'खत्री अधिकारी' दोनों मथुरा से निकले और तीसरा 'खत्री-हितकारी' आगरे से प्रकाशित हुआ। 'भारत भगिनी' नामक मासिक पत्रिका श्रीमती हरदेवी ने प्रयाग से निकाली।[3] ये पत्र व्यापक रूप से [illegible] होते तथा दूसरे वालों को जोर-जोर से पढ़कर सुनाये जाते ताकि राजनैतिक तथा सामाजिक रूप से वे जागृत हो जायें।[4]

से, 'बृजविनोद' मथुरा से, 'अद्‌भुत शतक' आगरे से, 'धर्मसभा' पं० गौरीशंकर वैद्य के संपादकत्व में फर्रुखाबाद के गया प्रकाश प्रेस से छपता था, जो संभवतः आर्यसमाज के आंदोलन के विरोध मे निकलता था; इटावे से 'विचार पत्र' को चिमनलाल निकालते; 'भारतवर्ष' मासिक को, कानपुर से पं० रामनारायण वाजपेयी निकालते; काशी से कुलयशस्वी शास्त्री 'धर्मसुधावर्षण' मासिक को, प्रयाग से पं० गजाननराव हार्णो द्वारा 'आर्यजीवन' और 'आरोग्य जीवन' मासिक गोरखपुर से पं० चन्द्रशेखर धर मिश्र द्वारा 'विद्याधर्म दीपिका' मासिक, 'सुगृहिणी', मासिक पत्रिका श्रीमती हेमन्त कुमारी चौधरी के संपादन मे, प० चन्द्रशेखर गौड के संपादकत्व में 'बुद्धिप्रकाश' लखनऊ से और प० दामोदर शास्त्री ने 'मित्र' नामक साप्ताहिक पत्र निकाला।[1]

सन् १८६० मे भी अनेक पत्रों ने उत्तर प्रदेश की पवित्र एवं पावन भूमि पर जन्म लिया। मुजफ्फरनगर से 'ब्राह्मण-समाचार' साप्ताहिक हिंदी-उर्दू मे प्रताप नारायण के सम्पादकत्व मे निकाला गया। 'कायस्थ-पत्र' साप्ताहिक प्रयाग से निकला। 'निगमागम-पत्रिका' पहले मेरठ से निकली और १८६७ मे जब यह मासिक पत्रिका मथुरा से निकलनी आरम्भ हुई तो इसका नाम 'निगमागम-चन्द्रिका' हो गया। यह निगमागम मण्डली द्वारा प्रकाशित होती थी और इस के सम्पादक पं० ठाकुर प्रसाद शर्मा थे। 'ब्रह्मावर्त' कानपुर तथा 'बृजराज' मथुरा से प्रकाशित हुए। 'मोतीचूर' नामक मासिक बांकीपुर से मुंशी अमीर हसन ने तथा 'सत्य' मासिक मुरादाबाद से, 'सत्यधर्म मित्र' आगरे से, 'सत्य धर्म-पत्र' बरेली से रामप्रसाद दुर्गाप्रसाद के सम्पादकत्व में, 'साहित्य सरोज' मासिक मेरठ से, और 'हिंदी पत्र' अलीगढ़ से, 'परोपकारी' आर्यसमाज की परोपकारी सभा द्वारा आगरे से 'सरस्वती-विलास' नामक साप्ताहिक काशी से, 'तिमिरनाशक' काशी से प० कृपाराम के सम्पादकत्व मे और 'सुदर्शन चक्र' भारत-धर्म महामण्डल का साप्ताहिक पत्र मथुरा से पं० ठाकुर प्रसाद शर्मा के सम्पादकत्व में प्रकाशित हुआ।[2]

सन् १८६१ मे कई पत्र-पत्रिकाओ का श्रीगणेश हुआ। मिर्जापुर से 'खिचड़ी समाचार' साप्ताहिक, जिसकी भाषा वास्तव मे खिचड़ी होती थी, निकला। इसमे हिंदी और उर्दू दोनों भाषाओं का प्रयोग होता था, इसलिए उसका नाम खिचड़ी समाचार रखा था। इसके संपादक बाबू माधवप्रसाद वर्मा होते थे। इस वर्ष कुछ मासिक पत्र भी निकले। इनमें 'विद्याप्रकाश' नामक मासिक लखनऊ से रामनारायण ने आरम्भ किया तथा 'बालहितकर' मासिक लखनऊ से निकला। 'नौका जगहित' गौड प्रेस से बंशीधर ने तथा 'रामजन मित्र' प० गणपतराय ने आरम्भ किये। ये दोनों मासिक पत्र बनारस से प्रकाशित हुए। 'रामपताका' प्रयाग से पं० राधामोहन शुक्ल ने आरम्भ

---

१. इन पत्रों की सूची रिपोर्ट ग्रान नेटिव न्यूज पेपर्स : एन० डब्लू० पी० १८८६ के आधार पर तैयार की गई।

२. रिपोर्ट ग्रान नेटिव न्यूज पेपर्स : एन० डब्लू० पी० १८६० के आधार पर।

किया। एम० एल० शुक्ल ने 'शिक्षक' और पं० क्षेत्रपाल शर्मा ने 'जगतमित्र' को मथुरा से शुरू किया। पं० प्रतापनारायण मिश्र ने 'ब्राह्मण' मासिक प्रकाशित किया। सीताराम ने 'भारतोदय' और 'शुभचिंतक' के पश्चात् 'व्यापार' को जन्म दिया।[1]

हिंदी पत्रकारिता वर्ष प्रति-वर्ष अग्रसर हो रही थी। पत्रों की संख्या के साथ-साथ उसमें छपे मसाले भी अच्छे और सुव्यवस्थित होने लगे थे। अतः सन् १८०२ में इसकी संख्या में और भी बढ़ोत्तरी हुई। 'व्यापार हितैषी' काशी से हनुमान प्रसाद ने आरम्भ किया। गौ-सेवक' साप्ताहिक प्रयाग से गौ-सेवक प्रेस से जगतनारायण ने निकाला। पं० हरदयाल शर्मा ने फर्रुखाबाद से 'गोधर्म प्रकाश', 'नागरी निरोध' साप्ताहिक मिर्जापुर से काशीप्रसाद द्वारा, 'विज्ञविज्ञान' पाक्षिक वृन्दावन से पं० नन्हेलाल गोस्वामी द्वारा तथा 'भारत हितैषी' विशनस्वरूप द्वारा निकाले गये। 'ब्राह्मण हितकारी' मासिक काशी से पं० कृपाराम ने निकाला और बरवारीलाल ने 'सरस्वती प्रकाश' मासिक को जन्म दिया।

'ब्रजवासी' का प्रकाशन आर० एल० वर्मन ने मथुरा से किया। 'जैन-हितैषी' नामक मासिक को मुरादाबाद से बाबू पन्नालाल ने आरम्भ किया। 'क्षत्रियहितोपदेशक' को आगरे से ठाकुर हरनाथ सिंह ने निकाला। 'साकेत-जीवन' अयोध्या से बाबू रामनारायण सिंह निकालते थे। 'सत्ययुग' को बरेली में ठाकुरप्रसाद ने आरम्भ किया।[2]

सन् १८९३ में भी कुछ और पत्रों ने जन्म लिया। 'नागरी नीरद' मिर्जापुर से आनन्द कादम्बिन प्रेस से पं० बदरीनारायण तथा चौधरी प्रेमघन के संपादकत्व मे आरम्भ हुआ। मासिक पत्रों में 'भारत प्रताप' मुरादाबाद से पं० प्रतापकृष्ण ने निकाला। 'सुधा-सागर' कानपुर से पं० छदम्मीलाल दुबे और डॉ० भैरव प्रसाद ने इसमें सम्भवतः दवाओं के विज्ञापन निकाले थे। 'कायस्थ कान्फ्रेंस प्रकाश' कायस्थ कान्फ्रेंस का पत्र कानपुर से रायदेवी प्रसाद 'पूर्ण' जो अच्छे कवि भी थे, ने आरम्भ किया।[3] स्वदेशी पत्र जहाँ कुछ कम संख्या में इस वर्ष निकले, वहाँ उनकी उपयोगिता बढ़ती जा रही थी। गांव का अध्यापक, पटवारी तथा नम्बरदार ग्रामीण जनता को इन पत्रों को पढ़कर जोर-जोर से देश-विदेश के समाचार सुनाया करते थे।[4]

सन् १८९४ मे कई साप्ताहिक पत्र निकले। 'सनाढ्योपकार' सनाढ्य महा मंडल द्वारा प्रकाशित किया गया। यह आगरे से हीरालाल के प्रकाशन मे निकलता तथा इसके संपादक का नाम ज्ञात नही हो सका। 'नीतिप्रकाशन' तथा 'वंशीवाला' साप्ताहिक मुरादाबाद से वंशीधर द्वारा, बनारस से 'भारत भूषण' रामप्यारी द्वारा, मथुरा से 'विश्वकर्मा' सुन्दर देव द्वारा निकले।[5]

---

१. रिपोर्ट ग्रान नेटिव न्यूज पेपर्स : एन० डब्लू० पी० १८९१ के आधार पर।
२. वही
३. वही, १८९३
४. पायनीयर अंग्रेजी (पत्र) १६ नवम्बर, १८९३
५. रिपोर्ट ग्रान नेटिव न्यूज पेपर्स : एन० डब्लू० पी० १८९४

साप्ताहिक पत्रों में 'प्रताप' अलीगढ़ की ज्ञानोदय प्रेस से श्री ज्वालाप्रसाद द्वारा प्रकाशित हुआ।[1]

सन् १८९७ में कुछ और पत्र-पत्रिकायें सामने आयीं। कानपुर से 'रसिकमित्र' तथा 'रसिकवाटिका' साप्ताहिक पत्र निकले। 'रसिकवाटिका' श्री व्रजभूषण के सम्पादकत्व में निकला। 'विद्या-विनोद' साप्ताहिक लखनऊ से कृष्णवलदेव ने प्रकाशित किया। 'जैनगजट' साप्ताहिक देववन्द से निकला। 'सनातन धर्म पताका' पं० रामस्वरूप गौड के सम्पादकत्व में कानपुर से डायमंडजुवली प्रेस में छपती थी। रिकार्ड के आधार पर यह कहा जा सकता है कि सन् १९०० में इसका प्रकाशन मुरादाबाद से आरम्भ हुआ।

कुछ मासिक पत्र भी इसी वर्ष और निकले। इनमें 'भारतोपदेशक' मेरठ से ब्रह्मानन्द सरस्वती ने निकाला। 'जैन भास्कर' फर्रुखनगर से, 'काशी वैभव' काशी से, 'चन्द्रिका' लखनऊ से हजारीलाल द्वारा गुरुप्रकाश प्रेस से निकला। 'कवि' और 'समालोचक' मासिक बलिया से निकले। 'काल भैरव' पाक्षिक बनारस से गनेश वाजपेयी द्वारा आरम्भ किया गया।[2] परन्तु इन पत्रों की संख्या-वृद्धि और प्रसिद्धि सरकार की आँख में खटक रही थी। फलत. सरकार ने अप्रैल १८९६ में इनकी सहायता रोक दी। 'काशी-पत्रिका' इसी कारण से सन् १८९७ में बन्द हो गई थी।[3]

सन् १८९८ में और कई पत्रों ने जन्म लिया। इनमें 'आर्य मित्र' सप्ताहिक मुरादाबाद से आर्यसमाज द्वारा आरम्भ हुआ परन्तु कुछ वर्षों के पश्चात् यह आगरे से निकला। इसके सम्पादक पं० नन्दकुमार शर्मा हुआ करते थे। 'कान्यकुब्ज हितकारी' कान्यकुब्ज सभा द्वारा कानपुर से प्रकाशित हुआ। इसके सम्पादक पं० गुरुदयाल त्रिपाठी वकील थे। यह मासिक पत्र था। 'गौड हितकारी' गौड़ ब्राह्मणों का मासिक हिन्दी-उर्दू में प्रकाशित हुआ। 'सनातन धर्म' मासिक सहारनपुर और 'जैन हितोपदेशक' प्रयाग से प्रकाशित हुए। 'उपन्यास' मासिक काशी से किशोरीलाल ने; 'विचार पत्रिका' मुरादाबाद से, 'तंत्र प्रभाकर' मुरादाबाद से भगवानदीन द्वारा, श्री 'कान्यकुंज' कानपुर से मनोहरलाल द्वारा, 'उपन्यास लहरी' मासिक काशी से देवकीनंदन द्वारा तथा 'पंडित-पत्रिका' मासिक काशी से बालकृष्ण शास्त्री द्वारा सामने आए।[4]

१९वीं शताब्दी के अन्तिम वर्षों में जातीय पत्र अधिक निकले। सन् १८९९ में 'प्रेम पत्रिका' सप्ताहिक कानपुर से पं० मनोहरलाल मिश्र ने रसिक प्रेस से प्रकाशित की। कुछ पत्र मासिक भी सामने आये। इनमें 'देशहितकारी' मेरठ से, 'राजपूत' जो

---

१ रिपोर्ट आन नेटिव न्यूज पेपर्स : एन० डब्लू० पी० १८९६

२. वही, १८९७

३. काशीवाटिका (बनारस) २६ मार्च १८९६, रिपोर्ट आन नेटिव न्यूज पेपर्स १८९६, पृ० १७८

४. रिपोर्ट आन नेटिव न्यूज पेपर्स : एन० डब्लू० पी० १८९८ के आधार पर।

पहले पाक्षिक और बाद में मासिक कुँवर हनुमंतसिंह रघुवंशी के सम्पादकत्व में आगरे से, 'माथुर-वैश्य-सुखदायक' मथुरा के सुखदायक प्रेस से ज्वालाप्रसाद द्वारा, 'भूमिहार ब्राह्मण पत्रिका' कामेश्वर नारायण के सम्पादकत्व मे, 'नृत्यपत्र' आदि पत्र प्रयाग से प्रकाशित हुए।[1]

१६०० का वर्ष हिन्दी पत्रकारिता के इतिहास में महत्त्वपूर्ण है। इस वर्ष 'सर्वो हितकारी' साप्ताहिक अलमोडा से देवीप्रसाद के सम्पादकत्व में छपा। एक पाक्षिक 'खेत-खेती-खेतिहर' बनारस से माधोराव करमाकर द्वारा निकाला गया।"[2]

इस वर्ष कई मासिक पत्र-पत्रिकाएं और सामने आये। इनमें 'निर्भय-ब्रह्मानंद' इटावे से बालकृष्ण के सम्पादकत्व में, 'सुदर्शन' काशी से देवकीनंदन खत्री द्वारा, 'सनातन धर्म पताका' मुरादाबाद से रामस्वरूप द्वारा, 'जैनी' इलाहबाद से मनोहरलाल की देख-रेख मे, 'जैसस गोमर' को बाबू गोपालराम ने गाजीपुर से, 'प्रेम पत्रिका' कानपुर से पं० मनोहरलाल मिश्र द्वारा तथा 'भारतोद्धार' मेरठ से तुलसीराम द्वारा प्रकाशित हुए।[3] 'सरस्वती' हिन्दी की पहली सार्वजनिक मासिक पत्रिका जो इस वर्ष निकली, अपनी छपाई, सफाई, कागज और चित्रों के कारण शीघ्र ही लोकप्रिय हो गई। इण्डियन प्रेस प्रयाग से इसे बंगाली बाबू चिंतामणि घोष ने प्रकाशित किया था और इसे काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा का अनुमोदन प्राप्त था। यह कहा जा सकता है कि चिन्तामणि जी को सभा वालों ने ही प्रोत्साहित किया था और इसके सम्पादक सभा के मेम्बर, अवैतनिक थे।[4] इसके सम्पादक मंडल में बाबू राधाकृष्णदास, बाबू कार्तिकप्रसाद खत्री, ला० जगन्नाथ रत्नाकर, पं० किशोरीलाल गोस्वामी और ला० श्यामसुन्दर दास थे। बाद में पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी ने इस कार्य को किया। कविता-सम्बन्धी पत्र और सामने आये। 'काव्यकलानिधि' तो पं० महावीर प्रसाद मालवीय वैद्य के सम्पादकत्व में उस समय के भोढ जिला मिर्जापुर से (वर्तमान बनारस के ज्ञानपुर से) निकला था।[5]

अतः यह कहा जा सकता है कि १६वीं शताब्दी की हिन्दी पत्रकारिता का उद्भव एवं विकास बड़ी विषम परिस्थितियों में हुआ। समय-समय पर पत्र-पत्रिकायें जन्म लेती, परन्तु परिस्थितियाँ उसके रास्ते में दीवार की तरह बाधा बनकर खडी हो जाती। इसके बढते चरणों में उर्दू व अंग्रेजी आदि भाषाएं तथा सरकारी मशीनरी मुख्यतय रुकावटें पैदा कर रही थी। ब्रिटिश सरकार आये दिन नये-नये प्रशासनिक तथा वैधानिक कानून बनाकर इसे पंगु बना रही थी, परन्तु हिन्दी-प्रेमी, साहित्यकार एव देश भक्त, व्यक्तिगत तथा संस्थाओं के माध्यम से शनैः-शनैः इसे गति प्रदान कर रहे थे।

१. रिपोर्ट आन नेटिव न्यूज पेपर्स : एन० पी० १८६८ के आधार पर
२. वही, १६०० के आधार पर
३. वही
४. अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी : पूर्व उद्धृत, पृ० २३८
५ वही

३ | सरकारी नीति : हिन्दी पत्रकारिता

प्रेस सम्बन्धी नियम जो सन् १८३५ मे बनाये गये थे, वे सन् १८५७ तक निरन्तर चलते रहे। लोकतंत्रीय बीज बोने वाले अंग्रेज विचार-विमर्श को मानव सभ्यता के लिए आवश्यक मानते हैं। 'उन्होंने इस विचार-विमर्श को विरोध के पश्चात भी निरन्तर रखा जबकि विदेशी सरकार के लिए स्वतंत्र प्रेस घातक होता है।[1] लार्ड बेंटिग सन् १८२८ में वायसराय के रूप में भारत आये। उनकी उदार नीति ने भारतीय पत्रकारिता को विकसित होने का अवसर प्रदान किया। उन्होंने पत्रकारिता के महत्व को समझा और अच्छे प्रशासन हेतु इसे लाभदायक साधन माना।[2] चूंकि समाचार-पत्र तथा मैगजीन, उसे समस्त कासिल, बोर्डस् और सचिव, जो उसे घेरे रहते थे, की अपेक्षा अधिक सूचना देती थी।[3] किन्तु विधान पुस्तक पर स्थित आदम के बनाये गये प्रेस नियमों को दूर नही कर सके।

बेंटिग के पद-त्याग के पश्चात सर चार्ल्स मेंटकाफ भारत के गवर्नर-जनरल बने। सौभाग्य से मेंटकाफ ने प्रेस सम्बन्धी नियमों की ओर तुरन्त ध्यान दिया। चूंकि भारतीय सम्पादकों ने संयुक्त रूप से १५ सितम्बर, १८३५ को विधान पुस्तिका में आदम के प्रेस नियमों के विरुद्ध एक विरोध-पत्र उन्हे प्रस्तुत किया। विरोध-पत्र के उत्तर में लार्ड मेंटकाफ ने कहा, 'मैं मानता हूँ कि प्रेस स्वतंत्र होनी चाहिए, परन्तु प्रेस हमारे भारतीय राज्य के स्थायित्व में घातक नही होनी चाहिए।[4]' समाचार-पत्रों के सम्पादकों

---

१. ५ अगस्त, सन् १८३२ में माउंट स्टूवर्ट एल्फाइनस्टोन ने लोक सभा सेलेक्टिड कमेटी के सामने भविष्यवाणी की—"यदि भारतीय सरकार इसी प्रकार चलती रही तो समय आने पर हमारी स्थिति ऐसी दयनीय होगी कि इस प्रकार का अनुभव किसी भी सरकार को नहीं होगा।"
—कैम्ब्रिज हिस्ट्री आफ इंडिया, संस्करण ५, दिल्ली, १९५८, पृ० ५४८

२. आडिट ब्यूरो : दा हिस्ट्री आफ प्रेस इन इण्डिया, बम्बई, १९५८, पृ० २३

३. सैनियाल, एस० सी० : हिस्ट्री आफ इंडियन प्रेस, कलकत्ता रिव्यु, जुलाई १९०८, पृ० ३६६

४. आडिट ब्यूरो : पूर्व उद्धृत, पृ० ५५

के एक प्रतिनिधि-मण्डल को उन्होंने सहानुभूतिपूर्वक सुना[१] और उन्होंने लार्ड मैकाले से यह अनुरोध किया कि वे प्रेस के सम्बन्ध में नये कानून का मसविदा तैयार करें। उन्होंने यह आधार भी तैयार किया कि विचारों को प्रकट करने की स्वतंत्रता प्रत्येक मनुष्य को मिलनी चाहिए। फलत: १५ सितम्बर, १८३५ ई० को प्रेस सम्बन्धित नया कानून बनाया गया और आदम द्वारा बनाये गये गला-घोंट नियमों को समाप्त कर दिया गया।[२] मेंटकाफ ने कहा, 'मैं खुले रूप में मानता हूँ कि प्रेस स्वतंत्र होनी चाहिए, लेकिन यह भारतीय साम्राज्य के लिए घातक नहीं होनी चाहिए।'[३] अत: भारतीय पत्रों ने राहत की साँस ली और भारतीयों ने गवर्नर-जनरल के प्रति कृतज्ञता प्रकट की। प्रेस को तो राहत मिल गई, परन्तु मेंटकाफ के लिए इसका परिणाम अच्छा नहीं रहा। चूँकि कोर्ट ऑफ डाइरेक्टर्स उनकी इस नीति से क्षुब्ध हो उठे। उन्होंने कड़े शब्दों में मेंटकाफ की निंदा की और उन्हें उनके पद से हटा कर पश्चिमोत्तर सीमाप्रांत जैसे छोटे-से प्रांत का गवर्नर बनाकर भेज दिया और दो वर्ष के अन्दर उन्हें बाध्य किया कि वे भारत छोड़कर इंगलैंड वापस चले जाएं।[४] यद्यपि चार्ल्स मेंटकाफ को अपनी प्रगतिशीलता तथा उदारता के लिए महान मूल्य चुकाना पड़ा, पर वह भारतीय पत्रकारिता का मार्ग अवश्य प्रशस्त कर गये।

संवैधानिक कदम

(१) गला-घोंट प्रेस अधिनियम १८५७ : सन् १८५७ के पूर्व भारतीय स्वतंत्रता युद्ध की भूमिका बन चुकी थी। देश के प्रत्येक प्रांत में देशी और विदेशी भाषाओं में अनेक पत्र-पत्रिकाएँ जन्म ले चुकी थी। तत्कालीन राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक, एवं आर्थिक असंतोष को ये पत्र-पत्रिकाएँ प्रकाशन में ला रही थी। इन असंतोषों के कारण ही प्रथम स्वतंत्रता का युद्ध (१८५७) आरम्भ हुआ। अंग्रेजी पत्र खुले रूप से तत्कालीन गवर्नर जनरल लार्ड कैनिंग की निंदा कर रहे थे और विद्रोह को न दबा सकने की समस्त जिम्मेदारी उनके सिर मढ़ रहे थे।[५] दूसरी ओर भारतीय पत्र पूर्ण रूप से स्वतंत्रता युद्ध का समर्थन कर रहे थे। इस प्रकार कहा जा सकता है कि सन् १८५७ के स्वतंत्रता युद्ध ने भारतीय प्रेस को राष्ट्रीयता के आधार पर विभाजित कर दिया।[६] परिणामस्वरूप लार्ड कैनिंग ने १३ जून, १८५७ ई० को प्रेस कानून नं० XI को बनाया, जिसके माध्यम से बिना लाइसेंस की प्रिंटिंग प्रेस को बन्द कर

---

१. बनर्जी, एस० एन० : ए नेशन इन दा मेकिंग, लंदन, १९२५, पृ० २४२
२. मार्टिन म्यूरो : पूर्व उद्धृत, पृ० २३
३. वही, पृ० २५
४. त्रिपाठी कमलापति : पूर्व उद्धृत, पृ० ६६
५. 'इगलिशमैन', १५ जून, १८५७; बंगाल हरकारा, १५, १६, २७ जून १८५७; फ्रैंड आफ इंडिया, १८ जून, १८५७
६. प्रेम नारायण : प्रेस एण्ड पोलिटिक्स इन इंडिया, दिल्ली, पृ० ४७

दिया गया। यह कानून वस्तुतः आदम द्वारा निर्मित पुराने नियमों के प्रतिरूप थे, पर कैनिंग ने उन्हें लागू करते समय यह घोषणा की थी कि इनके जीवन की अवधि केवल एक वर्ष की है।

कैनिंग की घोषणा के अनुसार *भारतीय प्रेस को स्वतंत्र कर दिया गया।*[1] साथ-ही-साथ भारत के शासन का प्रबन्ध ईस्ट इण्डिया कम्पनी के हाथों से हस्तान्तरित होकर ब्रिटिश संसद के हाथो में पहुँच गया। अब भारतीय प्रेस अपने नये विकास के युग में प्रवेश कर गई। परन्तु प्रेस अपने-अपने स्वार्थ के अनुसार विभाजित हो गई, क्योंकि शासक और शासित दोनों आर्थिक, भौगोलिक एवं सांस्कृतिक दृष्टिकोण से भिन्न थे। अंग्रेज पत्रकारों ने पृथकतावादी विचारधारा स्थापित कर ली और स्वदेशी पत्रकारों को असभ्य और विद्रोही बताया और वे स्वदेशी-पत्रों के विरुद्ध सरकार के कान भरते रहते थे। दोनो के बीच की इस खाई को अर्ल ऑफ एलनबोरो ने ७ दिसम्बर, १८५७ को ब्रिटिश संसद मे स्पष्ट रूप से चित्रित किया।[2]

' "भारत के प्रेस पूर्ण रूप से भिन्न रूप में स्थित हैं। इंगलिश प्रेस भारत के लोगों की प्रेस नही है। यह अजनबी सरकार और शासक वर्ग की प्रेस है, जो उनके स्वार्थ को प्रकाशित करती है। मैं यह नही कहता कि यह समय-समय पर देश के हित को नही उभारती, इंगलिश प्रेसका यह उद्देश्य वास्तव में नहीं है। यह तो उन व्यक्तियों का प्रतिनिधित्व करती है, जो इसके समर्थक हैं। दूसरी ओर स्वदेशी प्रेस, जैसे हम सोचते हैं *कि यह गन्दी, धोखेबाज हैं चूंकि शासक वर्ग की नीतियों का विरोध करती* है। अग्रेजी प्रेस स्वदेशियों की समझ से बाहर है, जब तक उनका अनुवाद स्वदेशी भाषा में न हो जाये! इस बीच में भारतीय मस्तिष्क पर इस बात का प्रभाव नही होता। इसी प्रकार स्वदेशी प्रेस का प्रभाव हमारे ऊपर नही होता चूंकि हम इसे नहीं पढते हैं। अतः यह स्पष्ट है कि इंगलिश प्रेस का प्रभाव भारतीयों पर तब तक नही पड़ेगा, जब तक उसके लेखों को अनुवादित नही किया जाता।"

अब यह बात स्पष्ट हो गई कि एंग्लो इण्डियन पत्र स्वदेशी भाषाओं के पत्रों के विरुद्ध षडयंत्र रच रहे थे ताकि सरकार उनकी स्वतंत्रता को छीन ले और वे अपने देशवासियों की परेशानियों को प्रकाशित न करें।[3] ये पत्र स्वदेशी-पत्रों को विद्रोही तथा बेवफा बता रहे थे। परन्तु 'अल्मोड़ा अखबार' के अनुसार यह आरोप एकदम झूठा था।[4] वे सरकार को समर्थन देने का आश्वासन दे रहे थे परन्तु उन आश्वा-

---

१. हंसर्ड का पार्लियामेंट्री डिबेट, १८५७-५८, वोलुम CXVIII, पृ० २४०
२. मामो टू मारगोल, १४ मार्च १८६६, मारगोल पेपर्स, माइक्रोफिल्म रील नं० ३११
३. श्रीपाल शर्मा : पूर्व उद्धृत अप्रकाशित शोध ग्रंथ, पृ० ५६
४. अल्मोड़ा अखबार : १५ सितम्बर, १८६६; रिपोर्ट आन नेटिव न्यूजपेपर्स, एन० डब्लू० पी० एण्ड पंजाब, १८६६

सनों के पश्चात् भी समय-समय पर सरकार संवैधानिक तथा प्रशासनिक कदम उठा रही थी।

२. इण्डियन पैनल कोड में संशोधन—सन् १८५७ के पश्चात लार्ड कैनिंग ने सरकार और प्रेस के सम्बन्ध सुधारने का प्रयास किया। सबसे पहला कदम इस ओर यह था कि इण्डियन पैनल कोड की धारा ११३ को समाप्त किया गया, जो लार्ड मैकाले ने सन् १८३६ में लगाई थी। चूंकि यह धारा पत्रकारिता की गर्दन पर तलवार लटकाने का काम कर रही थी। यह संशोधन सन् १६६० में किया गया और प्रेस को राहत मिली।

३. रेगुलेशन आफ प्रिंटिंग प्रेस एण्ड न्यूजपेपर्स एक्ट XXV १८६७—हिंदी पत्रकारिता अपने चरण बढ़ा ही रही थी कि जान लारेंस ने इसे नियमित करने के लिए 'रेगुलेशन ऑफ प्रिंटिंग प्रेस तथा न्यूजपेपर्स कानून XXV १८६७' पास कर दिया। इस कानून ने पुस्तकों और समाचार-पत्रों के प्रकाशन की स्वतंत्रता को छीन लिया।[1] यह कदम इसलिए उठाया गया चूंकि भारतीय पत्रकारिता, विशेषतः हिंदी पत्रकारिता राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय घटनाओं के आधार पर राजनैतिक चेतना जगा रही थी और विशेष रूप से भारत में ब्रिटिश सरकार की प्रशासनिक नीतियों की कटु आलोचना कर रही थी। साथ-साथ ही कुछ संगठन—वाहवी आन्दोलन, ब्रह्म-समाज तथा अन्य संस्थाएं सामाजिक एवं राजनैतिक सुधार हेतु क्रांतिकारी कदम उठा रही थी। अतः जान लारेंस से ये सब कुछ देखा नहीं गया और कानून बना दिया।

इस प्रकार प्रेस और सरकार के सम्बन्ध बिगड़ते जा रहे थे और अधिकारी यह अनुभव करते जा रहे थे कि आपत्तिजनक लेखों के साथ किस प्रकार का व्यवहार करें अथवा उनको किस प्रकार दण्डित करें। अतः इंडियन पैनल कोड की वास्तविक धारा के साथ एक और धारा जोड़ी गई जो प्रेस के आपत्तिजनक लेखकों को दण्डित कर सकें।[2] इस नई धारा को सन् १८७० में जोड़ा गया जो इण्डियन पैनल कोड की धारा १२४ अ बन गई।[3]

परन्तु सरकारी तंत्र हिंदी पत्रकारों की बढ़ती हुई गति को न रोक सका। जन-मानस की भावना सरकार के प्रतिकूल होती जा रही थी। भारत में ब्रिटिश अधिकारी सन्देह में थे और विशेषतः बंगाल सरकार बार-बार प्रार्थना कर रही थी कि प्रेस को दबाने के लिए नये कानून बनाए जायें, ताकि पत्रकारों को दण्डित किया जा सके, जो सरकार विरोधी लेख छाप रहे थे।[4] दूसरी ओर लार्ड लिटन के काल में सूखा, अकाल और द्वितीय अफगानिस्तान युद्ध आदि अशांति के कारण बन रहे थे और इन

१. एस० नटराजन : पूर्व उद्धृत, पृ० ६६
२. स्ट्रेचे टू लारेंस, २८ जुलाई, १८६८, लारेंस कलेक्शन, रील ५
३. मार्गेट बर्नस : पूर्व उद्धृत, पृ० २६६
४. बंगाल सरकार ने भारत सरकार को २ अगस्त, १८७३ में लिखा। होम डिपार्टमेंट, जुडिशियल प्रोसिडिंग्स (अ) मई, १८७८, नं० ६६

प्रश्नों को लेकर हिंदी-पत्रकार सरकार विरोधी लेख व सम्पादकीय लेख लिख रहे थे। फलतः सरकार और प्रेस के सम्बन्ध दिन-प्रतिदिन बिगड़ते जा रहे थे।

साथ-ही-साथ अधिकारियों के विरुद्ध भारतीय भी अपना रोष प्रगट करने हेतु सभाएँ आयोजित कर रहे थे। इस प्रकार की सभाएँ अप्रैल १८७६ ई० में कानपुर, लखनऊ और इलाहाबाद में हुईं।[१] इन विरोधों के कारण समस्त प्रांत में राजनैतिक चेतना जन्म लेती जा रही थी।[२] परन्तु देश में एक आतंकित वातावरण भी बनता जा रहा था और ऐसे वातावरण में दिल्ली के दरबार में पत्रकारों को निमंत्रित किया गया। जहाँ उन्होंने कुछ प्रतीक्षा करके वायसराय को एक ज्ञापन दिया, जिसमें प्रार्थना की गई कि ब्रिटिश राज और भारतीय जनता की उन्नति के लिए उनके वर्तमान अधिकार निरन्तर रखे जाएँ।[३] ज्ञापन सुन तथा पढ़कर वायसराय ने एक टिप्पणी से विश्वास प्रकट किया कि उनके अधिकारो को सुरक्षित रखा जाएगा।[४] कांसिल के एक उदारवादी तथा भारत हितैषी होब हाउस ने लिखने और बोलने के इस अधिकार का समर्थन किया।[५]

अतः यह ऐतिहासिक सत्य है कि भारतीय प्रेस, विशेषतः हिंदी प्रेस अपने यौवन की ओर अग्रसर हो रही थी और भारतीय जनता को उद्बोधित कर रही थी। यही कारण था कि ब्रिटिश सरकार और उसके अधिकारी हिंदी प्रेस को सशंक दृष्टि से देख रहे थे।

४. गैगिंग प्रेस एक्ट IX आफ १८७८—भारतीय भाषाओं के समाचार-पत्रों की संख्या वृद्धि; लोकप्रियता तथा बढ़ते हुए प्रभाव को देखकर लिटन और उसकी सरकार सशंक और भयभीत हो उठी। यह आवश्यक हो गया था कि सरकार उन पत्रों के बढ़ते हुए कदमो को रोके। अतः लार्ड लिटन ने प्रेस की स्वतंत्रता हनन करने हेतु नये कानून की रचना करने का निश्चय किया और इस सम्बन्ध में अन्य लोगों के विचारों को माँगा।[६] भारत मे ब्रिटिश अधिकारियो के विचार इस सम्बन्ध में थे कि पुनः प्रेस सम्बन्धी कानून बनाये जायें जो इसकी उन्नति तथा प्रभाव को अवरुद्ध कर सकें। अतः बंगाल के लैफ्टीनेंट गवर्नर ने इस विचार का दिल खोलकर समर्थन किया।[७] यह वही सज्जन था जिसने भारतीय प्रेस को चेतावनी दी थी कि सरकार की आलोचना और सरकारी अधिकारियो के कार्य की आलोचना करना 'डिस्लोयल्टी' और 'सडीसियस'

---

१. बंगाली, २० मई, १८७६
२. इगलिशमैन, ६ मई, १८७६
३. लिटन टू सलीसबरी, १६ जनवरी, १८७७, सलीसबरी पेपर्स, रील ८१५
४. नेटिव ओपिनियन, १४ जनवरी १८७७
५. मिनट आफ होबहाउस, १० अगस्त, १८७६. होम डिपार्टमेंट, जूडीशियल प्रोसीडिंग्स, अप्रैल १८७८, नं० २१५ (अ)
६. लिटन टू सलीसबरी, १६ जनवरी, १८७७, सलीसबरी पेपर्स, रील ८१५
७. टैम्पोल टू सलीसबरी, २६ अगस्त, १८७५, सलीसबरी पेपर्स, १४७(अ)

है।' एसले ने भी भारतीय प्रेस की आलोचना करने वाली भावना खतरनाक बताते हुए प्रार्थना की कि इसे बन्द करें।[2] फलतः लार्ड लिटन ने प्रेस का गला घोंटने का निश्चय किया और नार्थ वेस्ट प्रोविन्सीज के लैफ्टीनेंट गवर्नर ने जनवरी, १८७८ में कानून का मसौदा तैयार किया।[3] बिल के सार को टेलीग्राम के द्वारा सक्रेटरी ऑफ स्टेट फार इण्डिया के पास स्वीकृति हेतु भेजा गया। ये सब तैयारी गोपनीय थी और भारतीय प्रेस को तनिक भी इसका ज्ञान न हो पाया। फलतः १४ मार्च, १८७८ को गवर्नर जनरल की कांसिल में 'वर्नाक्युलर प्रेस एक्ट' को एक ही मीटिंग मे पास कर दिया।[4] इस कानून के अनुसार सरकार को यह अधिकार प्राप्त हो गया कि वह भारतीय भाषा के किसी पत्र के सम्पादक, प्रकाशक या मुद्रक को यह आदेश दे कि वह सरकार से इकरारनामा कर लें कि अपने पत्र में कभी कोई ऐसी बात प्रकाशित न करेंगे जो जन-हृदय में सरकार के प्रति घृणा या द्रोह के भाव उत्पन्न करें। जिला मजिस्ट्रेटों अथवा पुलिस कमिश्नरों को ऐसी शक्ति दे दी कि वे किसी भी समाचार-पत्र से जमानत ले सकते थे या किसी प्रकाशित सामग्री को जब्त कर सकते थे।

भारत एवं इंगलैंड दोनों में इस बिल का घोर विरोध हुआ। सर जार्ज बर्डवुड सी० एस० आई० ने सोसाइटी ऑफ आर्ट की एक मीटिंग में "दा नेटिव प्रेस ऑफ इण्डिया' विषय पर बोलते हुए कहा कि भारतीय भाषा के पत्रों से अधिक वफादार और कुछ हो नही सकता और इसे कोई खतरा भी नही हो सकता।[5] आर्थर होब हाउस ने वाइसराय की कांसिल मे इस काले कानून का घोर विरोध करते हुए कहा, 'यह बिल जनभावना के विरुद्ध है।'[6] उदारवादी तथा भारत हितैषी गलैंडस्टोन ने २३ जुलाई, १८७८ को ब्रिटिश ससद में निम्न शब्दों से इस कानून का विरोध किया, "मैं देख सकता हूँ, मैं न्याय के साथ सोचता हूँ कि प्रेस पर जो वार्षिक रिपोर्ट हमारे पास है वह सन्तोषजनक है और भारतीय प्रेस अपना कार्य ठीक प्रकार कर रही है।"[7] भारतीय पत्रो ने गलैंडस्टोन के प्रयासो के लिए धन्यवाद के लेख प्रकाशित किए।

इस गला घोंट कानून ने भारतीय शिक्षित जनता को आन्दोलित कर दिया और विशेषतः बंगालियों को, जहाँ इस कानून को सख्ती से लागू किया गया। एक बहुत बड़ी सभा कलकत्ता के टाउन हाल मे हुई, जिसमें ५,००० आदमी उपस्थित थे, इस

---

१ होम डिपार्टमेंट, जूडिशियल प्रोसीडिंग, अप्रैल, १८७८, नं० २२६ (अ)

२. वही

३. मिनट बाई लिटन, २८ अक्टूबर, १८७७, होम डिपार्टमेंट, जूडिशियल प्रोसीडिंग, नं० २११, २१६

४. होम डिपार्टमेंट, जूडिशियल प्रोसीडिंग, अप्रैल, १८७८, नं० २१८ (अ)

५. एस० आर० महरोत्रा के पेपर्स

६. मिनट बाई होबहाउस, १० अगस्त, १८७६, होम डिपार्टमेंट, जूडीशियल प्रोसीडिंग, अप्रैल १८७८ नं० २१५ (अ)

७ हंसर्ड पार्लियामेंट्स डिबेट्स, १८७८, वोलुम CCXLII, पृ० ५०

सभा में प्रेस कानून का विरोध किया गया तथा ब्रिटिश संसद से अपील की गई कि इसे समाप्त करें।[1] परन्तु एसोसिएशन के सचिव ज्योतिन्द्रमोहन ने कानून के समर्थन मे अपना मत दिया। अतः ढाका के छात्रों ने ज्योतिन्द्रमोहन को देश-द्रोही कह कर उनके पुतले जलाये।[2] पूना सार्वजनिक सभा ने भी इस प्रेस कानून के विरुद्ध एक विरोध सभा २ मई, १८७८ को की।[3]

'हिंदी-प्रदीप' ने एक विस्तृत विवरण देते हुए लिखा, "लेजिस्लेटिव कांसिल के सदस्यों ने वर्नाक्युलर प्रेस कानून के समर्थन में जो कुछ कहा, वह पूर्णतः असत्य है। प्रथम, उन्होने कहा कि वर्नाक्युलर के समाचार-पत्रों के सम्पादक पढ़े-लिखे नही, यदि उनका अभिप्राय यह है कि वे किसी विश्वविद्यालय के स्नातक नहीं, अथवा वे पेंट आदि नही पहनते, अथवा वे भारतीय सभ्यता से चिपके हैं, तब वे सही हैं, यदि शिक्षा का अर्थ सच्चाई, शक्ति, उचित और अनुचित में अन्तर करना, ईमानदारी और राष्ट्रीयता हैं, तब तो वर्नाक्युलर पत्रों के सम्पादक किसी अंग्रेजी पत्र के सम्पादक से कम नहीं हैं। द्वितीय, लेजिस्लेटिव कांसिल के सदस्य कहते है कि वर्नाक्युलर पत्रों को अशिक्षित और मूर्ख पढ़ते हैं। यह बात यह दिखाती है कि वे वास्तविकता से कितनी दूर है।"[4]

अतः इस कानून के विरुद्ध भारत और इंगलैंड दोनो में आवाज उठी। ग्लैडस्टोन ने ब्रिटिश संसद में कानून के विरोध मे प्रस्ताव रखा। प्रस्ताव के पक्ष में १५२ और विरोध में २०८ मत आये। इस प्रकार उनका प्रस्ताव गिर गया। ग्लैडस्टोन के अतिरिक्त अन्य अंग्रेज सज्जनों—सर विलियम म्यूर, सर आरस्कीन पीरे और कर्नल यूल आदि ने इस कानून का विरोध किया।

जहाँ एक ओर इसकी निंदा हो रही थी, वहाँ दूसरी ओर इसका समर्थन भी हो रहा था। उदाहरणार्थ, 'अलीगढ इंस्टीट्यूट गजट' ने इसका समर्थन करते हुए लिखा, "यदि किसी देश की प्रेस स्वतंत्रता चाहती है तो उसे उस देश की सरकार का वफादार होना चाहिए। उसकी भावनाएँ पक्षपात पूर्ण नहीं होनी चाहिए, जबकि भारतीय प्रेस इस ओर सफल नही हुई।"[5]

ब्रिटिश एसोसिएशन के पिटीशन में स्पष्ट रूप से कहा गया था कि वर्नाक्युलर

---

१. रिपोर्ट आफ दि प्रोसीडिंग आफ ए पब्लिक मीटिंग आन दी वर्नाक्युलर प्रेस एक्ट जो टाउन हाल कलकत्ता मे बुधवार १७ अप्रैल, १८७८ मे हुई थी। यह मीटिंग ब्रिटिश इंडियन एसोसिएशन द्वारा बुलाई गई थी।

२. एस० एन० बनर्जी : पूर्व उद्धृत, पृ० ५९-६०

३. क्वाटरली जनरल आफ दी पूना सार्वजनिक सभा, वोल्यूम १, न० २, पृ० १

४. हिंदी-प्रदीप : १ अप्रैल, १८६८, रिपोर्ट आन नेटिव न्यूज पेपर्स, एन० डब्ल्यू० पी० एण्ड पंजाब, १८७८, पृ० २७०

५. अलीगढ़ इंस्टीट्यूट गजट, २३ मार्च, १८७८

प्रेस पूर्णतः वफादार है और किसी प्रकार के राजद्रोहात्मक लेख नहीं छाप रही और विद्यमान विधान किसी भी सम्पादक को दण्ड देने मे पर्याप्त है ।[1]

अतः उपरोक्त कानून का समस्त देश में विरोध हो रहा था। अनेक पिटीशन ब्रिटिश संसद को भेजे गये। ईस्ट इण्डिया एसोसिएशन की बम्बई शाखा, इण्डियन एसोसिएशन, पूना सार्वजनिक सभा, ब्रिटिश इण्डियन एसोसिएशन, कलकत्ता मिशनरी कांफ्रेंस और वर्नाक्युलर प्रेस एक्ट कमेटी आदि ने इस कानून को समाप्त करने हेतु गवर्नर-जनरल और ब्रिटिश लोक-सभा को अपने पिटीशन भेजे।[2] यह आन्दोलन तब तक चलता रहा, जब तक इंगलैंड में कन्जरवेटिव मंत्रीमण्डल चुनाव में हार नहीं गया।[3] अतः इंगलैंड मे सरकार परिवर्तन और नई सरकार का वायसराय लार्ड रिपन भारत मे आया। इस प्रकार के वातावरण मे सन् १८८१ के आरम्भ मे सेक्रेटरी ऑफ स्टेट ने सुझाव दिया कि लार्ड लिटन के वर्नाक्युलर प्रेस एक्ट को समाप्त किया जाये। समय की आवश्यकता के अनुसार लार्ड रिपन ने इस कानून को विलोपित करने की इच्छा दिखाई।[4] विलोप बिल बिना किसी विचार-विमर्श के, ७ दिसम्बर, १८८१ ई० मे पास हो गया।[5] भारतीय प्रेस ने राहत की सांस ली और वायसराय को धन्यवाद दिया।

४. आफिशियल सीक्रेट्स एक्ट ऑफ १८८९—सरकार और पत्रकारिता का संघर्ष प्रेस वर्नाक्युलर एक्ट IX ऑफ १८७८ के विलोप होने पर समाप्त नहीं हो जाता। इस विलोप के पश्चात् एंग्लो-इंडियन पत्रों ने लार्ड रिपन की उदार नीतियों के विरुद्ध जोरदार आन्दोलन चलाया और साथ-ही-साथ भारतीय पत्रों पर राजद्रोह का आरोप भी लगाया। इन एंग्लो-इण्डियन पत्रो ने मांग की कि एक नया प्रेस कानून बनाया जाये ताकि भारतीय पत्र विशेषतः हिंदी भाषा के पत्र राजद्रोह के लेख प्रकाशित न करें। इन पत्रो ने लार्ड रिपन को प्रसिद्धि का भूखा बताया। यहाँ तक कि राष्ट्रीय आन्दोलन के अवरोधक राजा शिवप्रसाद ने एक स्मरण-पत्र तैयार किया, जिसमें प्रेस कानून में फिर से परिवर्तन करने का अनुरोध किया।[6] जबकि दूसरी ओर राष्ट्रीय पत्र इन सबका खण्डन कर रहे थे।[7]

---

१. ब्रिटिश इण्डियन एसोसिएशन की ओर से गवर्नर—जनरल को पिटीशन दिया गया। २० सितंबर १८७८, होम डिपार्टमेंट, जुडिशियल, प्रोसीडिंग्स, अक्टूबर, १८७८, नं० १६५-६६

२. होम डिपार्टमेंट, जुडिशियल, प्रोसीडिंग्स, अप्रैल, १८७८, प० २३६-२४० (ए)

३. गुरमुख निहाल सिंह : लैंडमार्क्स इन इण्डियन कान्स्टीट्यूशनल एंड नेशनल डवलपमेंट, वोल्यूम प्रथम—१६००—१६१९, पृ० ६४

४ जे० नटराजन, : पूर्व उद्धृत, पृ० ६१

५. वही

६. अखबार-ए-कैसर : २१ सितम्बर, १८८६, रिपोर्ट ऑन नेटिव न्यूज पेपर्स : एन० डब्ल्यू० पी० एंड अवध १८८६, पृ० ६०६

७. हिंदुस्थान : ११ अगस्त १८८०, वही, १८८०, पृ० ५०३-५०४

यह वास्तविकता है कि प्रशासनिक तंत्र सामान्य जनता की भावनाओं तथा इच्छाओं को केवल समाचार-पत्रों के माध्यम से जान सकती है। यदि सरकार पत्रों का दमन करने लगे तो पत्रकारिता और सरकार के मध्य संघर्ष छिड़ जाता है। वह भी विशेषतः विदेशी सरकार यदि राज कर रही हो तो।

अतः चारों ओर के दवाब ने सरकार को विवश कर दिया कि वह कोई-न-कोई कदम उठाये। फलतः विवश हो सरकार ने ६ अक्टूबर, १८८६ को कार्यालय गोपनीय प्रकटीकरण प्रलेख और सूचना कानून नं० १५ पास किया और १७ अक्टूबर को इसे स्वीकृति प्रधान कर दी। इस कानून के अन्तर्गत, "जो व्यक्ति किसी प्रलेख या योजना से अवगत या उस पर उसका अधिकार है और इस कानून के अन्तर्गत आते हैं, उनका प्रकाशित करना कि, या किसी को बताना या बताने का प्रयास करना कानूनन अपराध है, चूँकि यह सरकार और देश के हित में नहीं है। यदि किसी व्यक्ति विशेष को किसी सरकारी अधिकारी ने विश्वास में लेकर कोई सरकारी योजना बनाई, जिस का सम्बन्ध जल सेना या स्थल सेना से है, उस योजना की सूचना देता है या उसका भेद खोलता है तो सरकार देश हित में उस व्यक्ति को एक वर्ष की सजा या जुर्माना या दोनों दे सकती है।"[1]

इस कानून को देखकर वर्नाकूलर पत्रों ने कहा, "यह कठोर कदम जनता के मस्तिष्क में सन्देह उत्पन्न करेगा और सरकार को जनता की वास्तविक भावनाओं और इच्छाओं का ज्ञान नहीं हो पायेगा।"[2] इस कानून का अधिकतर प्रभाव वर्नाकूलर पत्रों पर पड़ा, जबकि दूसरी ओर अंग्रेजी पत्र विशेषतयः 'पाइनीयर' खुले रूप में सरकारी नीतियों को प्रकाशित कर रहा था।

५. १८६८ का राजद्रोह अधिनियम---अपने आपको शक्तिशाली बनाने के लिए सरकार ने राजद्रोह कानून को पास किया, जो प्रेस की स्वतन्त्रता पर अंकुश था। दूसरी ओर भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना के पश्चात् देश की राजनैतिक दशा बदल रही थी और हिंदी-पत्रकारिता ने सरकार की आलोचना करना आरम्भ कर दिया था।[3] जबकि एंग्लो-इण्डियन पत्र और 'अलीगढ़ इन्स्टीट्यूट गजट' कांग्रेस के आंदोलन और हिन्दी-पत्रकारिता के प्रकाशन को सरकार के लिए खतरा बता रहे थे। आकलैंड काल्वीन, नार्थ वेस्टर्न प्रोविन्सिज के गवर्नर के अनुसार कोई भी पत्र ऐसा नहीं था जो सरकार के चित्र को गलत ढंग से प्रस्तुत न कर रहा हो।[4]

लंसडाउन के अनुसार, "पत्रकारिता अकेली ही सरकार के लिए खतरा है, जो

---

१. रामरतन भटनागर : पूर्व उद्धृत, पृ० १४२-१४३
२. अलमोड़ा अखबार : ४ नवम्बर, १८८६, रिपोर्ट आन नेटिव न्यूज पेपर्स : एन० डब्ल्यू० एंड पंजाब १८८६, पृ० ७०२
३. बनर्जी, डब्ल्यू० सी० : इण्डियन पोलिटिक्स, कलकत्ता, १८६८, पृ० ८
४. होम डिपार्टमेंट, पब्लिक प्रोसिडिंग्स, अक्टूबर १८६१, नं० २६०-२८०

के हित में देख सकते थे।[1] परन्तु अन्य अंग्रेजों ने इस प्रयास को ब्रिटिश शासन के हित में नही माना। बम्बई के गवर्नर ने ८ जनवरी, १८५९ को एक टिप्पणी में सर थोमस मुनरो की भविष्यवाणी को उद्धृत करते हुए कहा :

"मैं प्रेस के भावी खतरे से नही डरता हूँ। हमारी सेना को प्रभावित करने के लिए अनेक वर्ष चाहिए, यद्यपि खतरा समीप नही है परन्तु वह दिन दूर नही है, जब यह हमे घेर लेगा, यदि प्रेस को स्वतन्त्र किया तो। चूंकि प्रेस की स्वतन्त्रता और विदेशी शासन मेल नही खाते।"[2]

इन सब विरोधों के पश्चात् भी सन् १८६० में लार्ड कैनिंग ने इण्डियन पैनल कोड की धारा ११३ जो गत २० वर्षों से प्रेस के सिर पर नंगी तलवार की भांति लटक रही थी, को समाप्त कर दिया।[3]

(२) अनुवादक—लार्ड कैनिंग की कुछ उदार नीतियो, राजनैतिक कारणों और समाज-सुधार आंदोलनो के फलस्वरूप हिंदी-पत्रो की सख्या दिन-प्रतिदिन शनैः-शनैः बढ रही थी। इन पत्रों की गतिविधियो को दृष्टि में रखकर ब्रिटिश ससद ने यह आवश्यक समझा कि भारत मे देशी भाषाओं के लिए एक अनुवादक होना चाहिए और गवर्नर-जनरल इन समाचार-पत्रों की एक साप्ताहिक रिपोर्ट बनाकर ब्रिटिश संसद को भेजे। अतः भारत मे ब्रिटिश सरकार ने इस कार्य हेतु एक पंडित और मौलवी की नियुक्ति की, जो देशी भाषाओं के पत्रों का अनुवाद करके साप्ताहिक रिपोर्ट तैयार करते थे, ताकि सरकार को जनता की भावनाओं और इच्छाओ का ज्ञान हो जाये। इस कार्य हेतु सरकार ने नार्थ वेस्टर्न प्रोविन्सिज के लिए दिल्ली गजट के संपादक जार्ज थर्गेटरीबर नियुक्त किया।[4]

सरकार के इस कदम पर हिंदी पत्रों ने, प्रसन्नता व्यक्त की, ताकि सरकार उनके पत्रो को देखे, उनके कार्य, दशा और विचारों से अवगत हो। इस नियुक्ति ने पत्रों की संख्या बढाने मे उल्लेखनीय कार्य किया। परन्तु साथ-ही-साथ पत्रो में यह खेद भी प्रकट किया गया कि इस पद पर एक विदेशी की नियुक्ति उचित नहीं, क्योंकि वह भारतीय भावनाओ और इच्छाओं को समझने में असमर्थ था।

लार्ड कैनिंग के उत्तराधिकारी लार्ड एलजीन, जो सन् १८६२ में वायसराय बने, ने प्रेस की गतिविधियो मे कोई विशेष बाधा नहीं डाली। वायसराय ही नहीं बल्कि नार्थ वेस्टर्न प्रोविन्सिज के लैफ्टीनेंट गवर्नर को भी प्रेस की सेंसरशिप में विश्वास नही था। उन्होंने स्वयं इच्छा व्यक्त की—

---

१. बर्नस, मारग्रेट : पूर्व उद्धृत, पृ० २५९
२. होम डिपार्टमेंट, पब्लिक प्रोसीडिंग्स, २५ मार्च, १८५९, नं० ६३-६६
३. जे० नटराजन, : पूर्व उद्धृत, पृ० ६९-७०
४. दिल्ली गजट : माईक्रोफिल्म, १८६४-६५, रील न० १, पृ० ११, रिपोर्ट्स ग्रान नेटिव न्यूज पेपर्स : एन डब्ल्यू० पी० एण्ड पजाब।

सरकार के कार्य और नीतियों को अस्त-व्यस्त करती हैं और जनता को सरकार के विरुद्ध भड़का रही है।"[१] एलजीन ने अनुभव किया और सेक्रेटरी ऑफ स्टेट को लिखा, "प्रेस कानून गत एक वर्ष से विचाराधीन है। अब मैं यह कहना चाहता हूँ कि मेरी कांसिल के अधिकतर सदस्य यह चाहते हैं कि एक सशक्त कानून बनाया जाए जो झूठे राजद्रोह के लेखों को कम करे।"[२] परन्तु "सेक्रेटरी ऑफ स्टेट ने वायसराय को ६ जुलाई, १८९४ को सूचित किया कि यदि वर्तमान परिस्थितियों में प्रेस कानून बनाना संभव न हो तो राजद्रोह कानून के अन्तर्गत वर्नाकूलर प्रेस को नियन्त्रित किया जाए।"[३]

जो अंग्रेज भारत मे रहते थे और भारत में एंग्लो-प्रेस ब्रिटिश सरकार को यह सलाह दे रही थी कि भारतीय प्रेस के पंख काटे जाएं। यहाँ तक कि ब्रिटिश संसद के अनुदार सदस्य एम० भुवनुगरी ने भारत मे ब्रिटिश सरकार को सलाह दी कि वह प्रेस का गला घोंटे।[४] जबकि भारतीय पत्र इन उपरोक्त कदमों का विरोध कर रहे थे और आश्चर्य प्रकट कर रहे थे। चूंकि सरकार उपरोक्त सलाहों को कार्य-रूप दे रही थी।[५]

कुछ हिंदी पत्रों मे इस बात पर आश्चर्य प्रकट किया कि पूना हत्या-कांड हिंदी पत्रों के जोशीले लेखो के कारण हुआ अतः प्रेस की स्वतन्त्रता को समाप्त किया जाये। यह तो उचित था कि जिन पत्रो में इस प्रकार के लेख छपे, उन्हे बंद कर दिया जाता, परन्तु यह कहा का न्याय था कि सभी पत्रो की स्वतन्त्रता समाप्त कर दी गई जबकि अधिकतर पत्र भारत मे ब्रिटिश सरकार के वफादार थे। जबकि एंग्लो-इण्डियन पत्र जो चाहते वही छापते थे और भारतीय पत्रकारो को इससे वंचित किया जा रहा था। यहाँ तक कि वर्नाकूलर पत्र एंग्लो-इण्डियन पत्रो मे छपे लेखो को भी नहीं छाप सकते थे।

१. प्रशासनिक कदम

भारत में ब्रिटिश सरकार ने समय-समय पर प्रेस-सम्बन्धित कुछ निम्नलिखित प्रशासनिक कदम भी उठाये—

१. सम्पादक कक्ष—इस दिशा में लार्ड कैनिंग ने सर्वप्रथम कदम उठाया था। उसने संपादक कक्ष की स्थापना की, जहाँ पर संपादक सरकारी कागज, जन-सामान्य

---

१. लसडाउन की मिनट्स, १५ सितम्बर, १८९०, माइक्रोफिल्म, राष्ट्रीय अभिलेखागार

२. माइक्रोफिल्म, एम० एस० एस०, इ० यू० आर—सी०, १४५।-१-३ फोलर मनुस्क्रीप्ट, प्लेस आफ आरीजन : इंडिया आफिस लाइब्रेरी (अ० भा० अभिलेखागार)

३. वही

४. पैसा अखबार : २४ जुलाई, १८९६—रिपोर्ट आन नेटिव न्यूज पेपर्स : पंजाब १८९६, पृ० ६५०-६५१

५. वही, पृ० ६६६

के हित में देख सकते थे।[1] परन्तु अन्य अंग्रेजों ने इस प्रयास को ब्रिटिश शासन के हित में नहीं माना। बम्बई के गवर्नर ने ८ जनवरी, १८५६ को एक टिप्पणी में सर थौमस मुनरो की भविष्यवाणी को उद्धृत करते हुए कहा :

"मैं प्रेस के भावी खतरे से नहीं डरता हूँ। हमारी सेना को प्रभावित करने के लिए अनेक वर्ष चाहिए, यद्यपि खतरा समीप नहीं है परन्तु वह दिन दूर नहीं है, जब यह हमें घेर लेगा, यदि प्रेस को स्वतन्त्र किया तो। चूँकि प्रेस की स्वतन्त्रता और विदेशी शासन मेल नहीं खाते।"[2]

इन सब विरोधों के पश्चात् भी सन् १८६० में लार्ड कैनिंग ने इण्डियन पैनल कोड की धारा ११३ जो गत २० वर्षों से प्रेस के सिर पर नंगी तलवार की भाँति लटक रही थी, को समाप्त कर दिया।[3]

(२) अनुवादक—लार्ड कैनिंग की कुछ उदार नीतियों, राजनैतिक कारणों और समाज-सुधार आंदोलनों के फलस्वरूप हिंदी-पत्रों की संख्या दिन-प्रतिदिन शनैः-शनैः बढ़ रही थी। इन पत्रों की गतिविधियों को दृष्टि में रखकर ब्रिटिश संसद ने यह आवश्यक समझा कि भारत मे देशी भाषाओं के लिए एक अनुवादक होना चाहिए और गवर्नर-जनरल इन समाचार-पत्रों की एक साप्ताहिक रिपोर्ट बनाकर ब्रिटिश संसद को भेजे। अतः भारत मे ब्रिटिश सरकार ने इस कार्य हेतु एक पंडित और मौलवी की नियुक्ति की, जो देशी भाषाओं के पत्रों का अनुवाद करके साप्ताहिक रिपोर्ट तैयार करते थे, ताकि सरकार को जनता की भावनाओं और इच्छाओं का ज्ञान हो जाये। इस कार्य हेतु सरकार ने नार्थ वेस्टर्न प्रोविन्सिज के लिए दिल्ली गजट के संपादक जार्ज थर्गेटरीबर नियुक्त किया।[4]

सरकार के इस कदम पर हिंदी पत्रों ने प्रसन्नता व्यक्त की, ताकि सरकार उनके पत्रों को देखे, उनके कार्य, दशा और विचारों से अवगत हो। इस नियुक्ति ने पत्रों की संख्या बढ़ाने मे उल्लेखनीय कार्य किया। परन्तु साथ-ही-साथ पत्रों में यह खेद भी प्रकट किया गया कि इस पद पर एक विदेशी की नियुक्ति उचित नहीं, क्योंकि वह भारतीय भावनाओं और इच्छाओं को समझने में असमर्थ था।

लार्ड कैनिंग के उत्तराधिकारी लार्ड एलजीन, जो सन् १८६२ मे वायसराय बने, ने प्रेस की गतिविधियों मे कोई विशेष बाधा नहीं डाली। वायसराय ही नहीं बल्कि नार्थ वेस्टर्न प्रोविन्सिज के लैफ्टीनेंट गवर्नर को भी प्रेस की सेंसरशिप में विश्वास नहीं था। उन्होंने स्वयं इच्छा व्यक्त की—

---

१. बर्नस, मारग्रेट : पूर्व उद्धृत, पृ० २५६
२. होम डिपार्टमेंट, पब्लिक प्रोसीडिंग्स, २५ मार्च, १८५६, नं० ६३-६६
३. जे० नटराजन, : पूर्व उद्धृत, पृ० ६६-७०
४. दिल्ली गजट : माईक्रोफिल्म, १८६४-६५, रील नं० १, पृ० ११, रिपोर्ट्स आन नेटिव न्यूज पेपर्स : एन डब्ल्यू० पी० एण्ड पंजाब।

"लैफ्टीनेंट-गवर्नर सचेत हैं कि शिक्षा-विभाग के आफिसर प्रेस पर दृष्टि रखें, ताकि सरकार जनता की भावनाओं और इच्छाओं से अगवत हो, चूंकि प्रेस सरकार और जनता के बीच मध्यस्थ हैं। सरकार की प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से सेंसरशिप लगाने की कोई इच्छा नहीं है।"[१]

नार्थ वेस्टर्न प्रोविन्सिज के डायरेक्टर ऑफ़ पब्लिक इंस्ट्रक्शन श्री कैम्पसन ने गवर्नर से सहमति प्रकट करते हुए कहा, "संपादक स्वतंत्र है परन्तु गत छः महीने से उनके लेख अमित्रतापूर्ण हैं। यद्यपि सरकार प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से कोई सेंसरशिप नहीं लगाना चाहती, बल्कि इन लेखों को केवल जनता की भावना मानती है।"[२]

(३) **प्रेस कमीशन**—जैसा कि पहले देख चुके है कि सन् १८७८ का वर्नाकूलर प्रेस कानून अत्यन्त बेतुका और भयानक था। इस कानून के अन्तर्गत जिला मजिस्ट्रेट अथवा कमिश्नर को अधिकृत किया हुआ था कि वह किसी भी सपादक या प्रिन्टर को बुलाकर उससे लिखवा सकता था कि वह कोई सरकार द्रोही लेख नहीं छापे। उस कानून की देश-विदेश में काफी आलोचना की गई। अतः लार्ड लिटन तत्कालीन वायसराय ने हल्के हृदय से प्रेस कमिश्नर की नियुक्ति की, जो समाचार-पत्रों को सरकारी इच्छा की ठीक सूचना दें।[३] सरकारी सूचना देने के अतिरिक्त उस का दायित्व यह भी था कि वह त्रुटिपूर्ण कथन को शुद्ध करे। इस कदम का स्वागत किया गया।[४] इन कार्यों के अतिरिक्त उसका उत्तरदायित्व निम्न प्रकार था —

"नियुक्त अधिकारी का दायित्व है कि वर्नाकूलर प्रेस कानून के कार्य को देखे, प्रेस की कानूनी आवश्यकता और इच्छाओं को ध्यान से देखे, संपादकों की शिकायतों को प्राप्त करना तथा उनका उचित उत्तर देना, वह सरकार और प्रेस के मध्य निर्णायक का कार्य करे। उसका दायित्व है कि संपादक जो लेख उसे दें, उसमें उचित संशोधन करें।"[५]

वर्नाकूलर प्रेस कानून से एंग्लो-इण्डियन पत्र प्रसन्न थे। परन्तु प्रेस कमिश्नर की नियुक्ति से अप्रसन्न थे। अतः उन्होंने भी वर्नाकूलर पत्रों की आवाज में आवाज मिलाकर प्रेस कमिश्नर की नियुक्ति का विरोध किया।

फलतः अंग्रेजी-पत्रों और वर्नाकूलर-पत्रों ने मिलकर एक विरोध-पत्र तैयार किया कि वर्नाकूलर प्रेस कानून और प्रेस कमिश्नर की नियुक्ति ने प्रेस की स्वतन्त्रता समाप्त कर दी, चूंकि समाचार-पत्रों को सरकार और उसके प्रशासन के सम्बन्ध में ठीक सूचना प्राप्त नहीं होती और सरकार को भी जनता-जनार्दन की भावनाओं का

---

१. होम डिपार्टमेंट, पब्लिक, प्रोसीडिंग्स, ५ नवम्बर १८६३, नं० ६
२. वही, अगस्त, १८६४, नं० ५२-५४ (ए) पृ० ७५७
३. नटराजन, जे० : पूर्व उद्धृत, पृ० ८५
४. बार्टिट ब्यूरो : पूर्व उद्धृत, पृ० ५१
५. हंसर्ड पार्लियामेंट्री डिबेट्स, थर्ड सीरीज, मई से जून, १८७८, वोल्यूम सी० सी० एक्स० एल०, पृ० १०७१

पत्रों को सभी सरकारी सूचना विज्ञापन और वायसराय और अन्य अधिकारियों के भाषण बड़ी सरलता से प्राप्त हो रहे थे।

इस प्रकार हिंदी पत्रों की आर्थिक दशा दिन-प्रतिदिन गिरती जा रही थी। 'हिन्दी-प्रदीप' के अनुसार, "संपादक को पत्र प्रकाशन से विशेष आय नहीं होती है। उसकी सब मिलाकर २५० रुपये की आय होती है और सरकार १० रुपये का कर लगा देती है। कर वसूल का तरीका तो बहुत-ही आपत्तिजनक है।"[1] कभी-कभी पत्र की आर्थिक सहायता यह कहकर बंद कर दी जाती थी कि वे सरकार के विरुद्ध अशिक्षित जनता में विष फैला रहे हैं।

(५) पुलिस तथा मैजिस्ट्री—पुलिस और मजिस्ट्रेट वर्नाकूलर संपादकों के दमन में गन्दे और पूर्व नियोजित तरीकों को काम में लाने में कभी चूकते नहीं थे। इन संपादकों को संदेह की दृष्टि से देखा जाता और उन लेखों को राजद्रोही कहा जाता था। भारतीयों के कष्ट को उभार कर लाने को ये राजद्रोह कहते[2] और पत्रों पर संदेहात्मक दृष्टि रखते थे।[3] जिला कलक्टरों को यह अधिकार था कि वह किसी भी पत्र को बंद कर सकता था। उदाहरणार्थ, मेरठ जिले के कलक्टर ने, यह कारण बताकर कि ग्राम के नम्बरदार और जमीदार आपत्ति करते है, 'मेरठ गजट' को बंद कर दिया।[4]

जब कभी कोई पत्र पुलिस या मजिस्ट्रेट के गन्दे व्यवहार को जनता के सामने लाने का प्रयास करता तो उसकी स्वतन्त्रता को सदैव के लिए छीन लिया जाता और संपादकों को जेल में डालना तो साधारण-सी बात थी। इस कार्य को करने के लिए एंग्लो-इण्डियन पत्र अपना पूर्ण सहयोग सरकार को प्रदान करते। 'पायनीयर' ने सरकार को सलाह दी कि वर्नाकूलर प्रेस पर कड़ी नजर उसी प्रकार रखनी चाहिए, जिस प्रकार किसी आदिवासी अपराधी पर रखी जाती है।[5] इसी पत्र ने हिंदी-पत्रों के संपादकों को झूठे और घूस देने वालों से सम्बोधित किया।[6] लखनऊ के मजिस्ट्रेट ने सन् १८९७ में अकाल और प्लेग के दिनों मे, संपादकों को अपने घर बुलाकर चेतावनी दी कि वे किसी प्रकार के भड़काने वाले लेख को नहीं छापेंगे, चाहे वह किसी अन्य अंग्रेजी पत्र मे ही क्यों न लिया गया हो।[7] परन्तु कुछ निडर पत्रकार अपने कर्तव्य को बड़ी निष्ठा से करते और हर आने वाले खतरे के लिए तैयार रहते थे।

---

१. हिंदी प्रदीप : अप्रैल १८८८—वही १८८८, पृ० २४६
२. बर्नस, मारग्रेट : पूर्व उद्धृत, पृ० २५६
३. होम डिपार्टमेंट, पब्लिक प्रोसीडिंग्स, १४ जनवरी, १८६६, नं० २५
४. लारेंस गजट (मेरठ) जनवरी १८६५, रिपोर्ट्स आन नेटिव न्यूज पेपर्स : एन० डब्ल्यू० पी० एंड पंजाब १८६५
५. पायनीयर, २४ दिसम्बर, १८६७
६. वही,
७. वही,

हिंदी संपादक दयनीय दशा में रहते थे। उन्हें ईमानदारी से सरकार के अनुचित कार्य की आलोचना करने की स्वतन्त्रता नहीं थी। जबकि इस प्रकार की आलोचना आदि से शासक और शासित दोनों का लाभ था।[1]

अतः यह स्वभाविक था कि एक विदेशी सरकार पत्रों के लेखों से सचेत रहे। उसे विलम्ब होने से पूर्व ही दमन करना चाहिए। परन्तु सरकार स्वतन्त्रता हेतु जन-आदोलनों को समाप्त नहीं कर सकती। यही नार्थ वेस्टर्न प्रोविन्सिज में भी हुआ। सरकार ने जितना पत्रों को दबाना चाहा, उतना ही स्वाधीनता आंदोलन गतिमान हुआ।

---

१. आर्यमित्र, २४ जनवरी, १६१०, रिपोर्ट आफ नेटिव न्यूज पेपर्स १६१०, पृ० ८७

हिन्दी पत्रकारिता : समाज सुधार आन्दोलन

अठारहवीं शती के अन्तिम चरण तक भारत में ब्रिटिश साम्राज्यवादी नींव पड चुकी थी। अंग्रेजों की राजनीतिक सत्ता की स्थापना के साथ-साथ पाश्चात्य संस्कृति और उसकी विचारधारा भारतीय जन-जीवन को प्रभावित करने लगी थी। भारतीय संस्कृति पतन की ओर जा रही थी और उसकी नव-सृजन की शक्ति प्रायः लुप्त हो चुकी थी। भारत के लिए यह एक चिन्ताजनक सांस्कृतिक संकट का समय था। एक ओर तो पुरातनपंथी समुदाय प्राचीन परम्पराओं और रूढियों से चिपके रहना चाहता था और वह प्रत्येक परिवर्तन का विरोध करता था तो दूसरी ओर अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त भारतीयों का एक ऐसा वर्ग धीरे-धीरे बनता जा रहा था जो भारतीय संस्कृति को हेय दृष्टि से देखता था और पश्चिम की प्रत्येक बात को सत्य के रूप में स्वीकार करता था। यह वर्ग पाश्चात्य संस्कृति का भक्त था और भारतीय सामाजिक तथा धार्मिक जीवन को निरर्थक बताकर उसकी अवहेलना करता था। बंगाल में इस विचारधारा का विशेष बोल-बाला था। यहाँ पाश्चात्य संस्कृति तथा ईसाई धर्म का प्रचार तीव्रता के साथ हुआ। परिणाम-स्वरूप अनेक उच्च शिक्षा प्राप्त हिंदू प्रथम स्वतन्त्रता सग्राम (१८५७ ई०) से पूर्व ही हिंदू धर्म का परित्याग कर ईसाई हो गये। भारतीय जनता के लिए यह दुर्भाग्य का विषय था कि राजनीतिक पराजय अब धीरे-धीरे धार्मिक पराजय मे भी परिणित होती जा रही थी। ऐसे निराशा-युक्त और अंधकारपूर्ण वातावरण में कुछ ऐसे भारतीयों का उदय हुआ जो इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि यदि देश की काया पर से नैराश्य की केंचुली उतार फेंकनी है तो सामाजिक लोकाचारों में मौलिक परिवर्तन की आवश्यकता है। इस कार्य में पत्रकारिता मुख्य भूमिका निभा सकती है। अतः उत्तर प्रदेश के शिक्षित वर्ग ने हिंदी पत्रकारिता को अपना यंत्र बनाया ताकि प्रदेश मे फैली सामाजिक बुराइयों—शिशु-हत्या, बाल-विवाह, विधवाओं की दयनीय दशा, दहेज प्रथा, वेश्या-वृत्ति, अंध-विश्वास तथा छुआ-छूत आदि को समाप्त किया जा सके।

इस शिक्षित वर्ग ने जातीय आधार पर सामाजिक संगठनों की स्थापना की। इस दिशा मे ईसाई मिशनरियों ने भी कुछ कार्य किया परन्तु भारतीयों के सुधार के लिए नही, बल्कि अपने ईसाई धर्म के प्रचार और साम्राज्यवाद की नींव को सशक्त करने के लिए। भारतीयों में पहल सब से पहले राजा राममोहनराय ने ब्रह्म समाज की स्थापना करके की। यद्यपि इस समाज की स्थापना बंगाल में हुई थी तथापि इसकी अनेक शाखाएँ भारत के अन्य प्रदेशों में भी खोली गई ताकि समाज में फैली बुराइयों को समाप्त किया जा सके। इसके अतिरिक्त 'जलवा-ए-तूर' (समाचार-पत्र) तथा 'अवध अखबार' के अनुसार, कानपुर में 'सोशियल इम्प्रूमेंट सोसाइटी', अलीगढ में 'रिफोर्म लीग' और लखनऊ मे 'हिन्दू धर्म सोसाइटी', 'जलसा-ए-हिंदू धर्म प्रकाश' आदि की स्थापना की गई ताकि समाज में धार्मिक भावनाओं को पुनः जागृत किया जा सके और धर्म-परिवर्तन को रोका जा सके[1] और उस दीवार को तोडा जाए, जिसने भारतीय मस्तिष्क को बन्द कर रखा था।

भारतीय समाज को पाश्चात्य संस्कृति भी प्रभावित करती जा रही थी। पं० जवाहरलाल नेहरू ने इस प्रभाव के विषय मे लिखा, "भारत में वास्तविक पश्चिमी प्रभाव तकनीकी परिवर्तनों के द्वारा १९ वीं शती में आया। इन नये विचारों ने उस क्षितिज को खोला जो लम्बे समय से संकुचित हो गई थी।"[2] इस सम्बन्ध में लाला लाजपतराय ने अपने विचार इस प्रकार व्यक्त किए, "तर्कपूर्ण आधार पर यह कहा जा सकता है कि आर्यसमाज का जन्म उन परिस्थितियों का परिणाम है जो पश्चिमी प्रभाव ने पैदा की।"[3] अतः पाश्चात्य संस्कृति ने भारतीय संस्कृति को प्रभावित किया। यद्यपि इसमें कुछ त्रुटियां भी थीं तथापि इन त्रुटियों के होने पर, भी, "यह एक ऐसी चाबी थी जिसने उस खजाने का ताला खोल दिया, जहाँ से आधुनिक पश्चिमी विचारधारा को भारत आने का अवसर प्राप्त हुआ।"[4]

सन् १८७५ मे आधुनिक भारत के समाज एवं धर्म सुधारक स्वामी दयानंद सरस्वती ने आर्य समाज को जन्म दिया। इसकी शाखाएँ उत्तर प्रदेश मे भी खोलीं गयी। इसका मुख्य उद्देश्य इस्लाम और ईसाई धर्मो के प्रभाव को रोकना था। दिसम्बर १८८५ मे अखिल भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना हुई। इसने भी सामाजिक सुधार आंदोलन के कार्यो को अपने कार्यक्रमों मे विशेष रूप से रखा।

उत्तर प्रदेश के जाट भी किसी से पीछे नही रहे। उन्होंने सन् १८९० में मेरठ में एक जाट कांफ्रेन्स की स्थापना की, जिसका उद्देश्य विवाह प्रथा में सुधार करना

---

१. 'जलवा-ए-तूर' ३० अप्रैल, १८७०, तथा 'अवध अखबार', २० सितम्बर, १८७० रिपोर्ट आन नेटिव न्यूज पेपर्स : एन० डब्लू० पी० एण्ड पंजाब, १८७०
२. जवाहरलाल नेहरू : दा डिस्कवरी आफ इंडिया, कलकत्ता, १९४६, पृ० ३९८
३. लाला लाजपत राय : दा आर्यसमाज, पृ० २९३
४. ए० आर० देसाई : सोशियल बैकग्राउण्ड आफ इंडियन नेशनलिज्म (द्वितीय संस्करण), १८५४, पृ० १३६

था। इसने 'जाट समाचार' पत्र भी प्रकाशित किया।[1] नेशनल सोशियल कान्फ्रेंस की स्थापना हुई जिसकी शाखाएँ उत्तरप्रदेश मे भी खोली गईं। पंडित अयोध्यानाथ, लाला बैजनाथ और पंडित मदनमोहन मालवीय आदि इस संस्था के समर्थक तथा मुख्य सदस्य थे। इसी प्रकार उत्तरप्रदेश में विभिन्न स्थानों पर अनेक जातीय संस्थाएँ स्थापित हुईं जो निम्न प्रकार से हैं[2]—

क्र० सं०	स्थान	संस्था का नाम
१.	मथुरा	गौड ब्राह्मण सभा
२.	मथुरा	कायस्थ सभा
३.	मथुरा	अग्रवाल सभा
४.	गोरखपुर	कायस्थ सभा
५.	गोरखपुर	टेम्परेंस एसोशिएशन
६.	गाजीपुर	कायस्थ सभा
७.	गाजीपुर	हाई कास्ट रिफोर्म सोसाइटी
८.	बरेली	साधारण अमृत वर्द्धनी सभा
९.	बरेली	कायस्थ सभा
१०.	बरेली	ब्राह्मण सभा
११.	इलाहाबाद	कायस्थ सभा
१२.	इलाहबाद	हिंदू समाज
१३.	बलिया	कायस्थ सभा

इस प्रदेश में मुस्लिम समाज ने भी अपनी संस्थाएँ स्थापित की, परन्तु कुछ कम। इन जातीय संस्थाओं ने समाज सुधार आदोलन को जनता तक पहुँचाने के लिए पत्रकारिता का सहारा लिया और उन्होंने अपनी पत्र-पत्रिकाएँ निकालीं। अतः पत्रकारिता ने समाज में फैली विभिन्न बुराइयों के विरुद्ध अपना सशक्त अभियान चलाया।

शिशु-हत्या : यह प्रथा विशेष रूप से राजपूतों मे पाई जाती थी। वे लोग कन्या को अपने परिवार के लिए अपमानजनक मानते थे तथा अपनी कन्याओं के लिए उपयुक्त पतियों को ढूँढ़ना भी कठिन पाते थे। कर्नल टॉड के कथनानुसार, "यद्यपि धर्म इस अत्याचार का अधिकार प्रदान नहीं करता तथापि राजपूतों में विवाह के लिए जो नियम थे, वे दृढ़तापूर्वक शिशु-हत्या को प्रोत्साहन देते थे। यह प्रथा दहेज के कारण भी बढ गई थी। परन्तु यह प्रथा प्राचीन भारत में स्पष्ट रूप से दिखाई नहीं देती है।" पी० वी० काने के अनुसार कुछ यूरोपियन लेखकों ने हिन्दू धर्म-ग्रंथों की त्रुटिपूर्ण व्याख्या की कि यह प्रथा प्राचीन भारत मे भी प्रचलित थी[3] परंतु यह भी

१. हेमरथ, चार्लस् एच० : इंडियन नेशनलिज्म एंड हिन्दू सोशियल रिफोर्म, बम्बई, १९६४, पृ० २८०
२. रिपोर्ट आफ दा १०वीं नेशनल सोशियल कांफ्रेंस, पृ० १९
३. पी० वी० काने : हिस्ट्री आफ धर्मशास्त्र, वोलूम द्वितीय, खंड प्रथम, पृ० ५०९

कटु-सत्य है कि लड़के के जन्म पर खुशी मनाई जाती और लड़की के जन्म पर दुख प्रकट किया जाता था।[1]

चाहे जो भी हो, १८वीं शताब्दी के अन्त में और १९वीं शताब्दी में यह कुप्रथा एक सामाजिक बुराई बन चुकी थी।[2] यद्यपि सन् १७९५ में बंगाल के XXI कानून के अधीन शिशु-हत्या को हत्या घोषित कर दिया गया था। इतना होने पर भी यह प्रथा विशेष रूप से जारी रही। उच्च हिंदू कन्या के जन्म को सामाजिक शोषण मानने लगे थे, चूंकि उन्हें उस आदमी के सामने झुकना होता था जिससे अपनी कन्या का विवाह करना होता था। इस झूठे गर्व और मर्यादा के फलस्वरूप ही कन्या-हत्या जैसी कुप्रथा ने जन्म लिया।[3]

उत्तर प्रदेश में यह कुप्रथा अधिकतर राजपूतों, जाटों, गुज्जरों, अहीर तथा त्यागियों आदि में व्याप्त थी।[4] जब हिंदी पत्र-पत्रिकाओं ने इसके विरुद्ध अभियान आरंभ किया तो गवर्नर-जनरल ने भी १८७० के कानून में इस कुप्रथा को रोकने की व्यवस्था की।[5] इस कानून की धारा १ को अलीगढ जिले के ५७ ग्रामों मे लागू किया गया जहां पर यह बुरी तरह से फैली हुई थी। निम्नलिखित तालिका इस जिले की तीन जातियों में बच्चों की संख्या दिखाती है[6]—

	जादोन		पूरलर		चौहान	
	लड़के	लड़कियाँ	लड़के	लडकियाँ	लड़के	लडकियाँ
पार्ट I	२८४	११२	४१३	१५८	२४६	८०
पार्ट II	९१३	६४८	२९९	१८६	२५६	२०५
योग	११९७	७६०	७१२	३४४	५०२	२८५

सन् १८७० के कानून की धारा १ को सहारनपुर, मुजफ्फरनगर और गाजीपुर जिलों में भी लागू किया गया। मुजफ्फरनगर जिले के कुशोल्नी क्षेत्र मे पुंडीर राजपूतों में इस प्रथा ने भयंकर रूप धारण कर लिया था।[7] इसी प्रकार से प्रांत के अन्य भागों में भी इस कानून को लागू किया गया।

इस कुप्रथा को रोकने में हिंदी पत्रकारिता ने अपना सक्रिय सहयोग दिया। सरकार और जनता को इसके प्रति जगाया। विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं ने बताया कि

१. महाभारत १५९-११
२. ललिता पाणिग्रही : ब्रिटिश सोशियल पोलिसी एंड फीमेल इन्फेंटेसाइड इन इंडिया, पृ० ६
३. वही, पृ० ७
४. एन० डब्लू० पी० जूडीशियल सँसस, २० फरवरी, १८७५
५. होम डिपार्टमेंट पुलिस, मई १८७२, न० १३-१७ (ए)
६. वही : मार्च १८७४, न० १-५ (ए)
७. वही : जनवरी १८७०, न० ५५-५६ (ए), फरवरी १८७४, न० ७१-७७ (ए) और मई १८७४, न० ४२-४३ (ए)

समय-समय पर समाज सुधार संगठनों और उनके नेताओं ने इस क्षेत्र में सराहनीय कार्य किया। सर्वप्रथम इस दिशा में राजा राममोहन राय, केशव चन्द्र, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर और स्वामी दयानन्द सरस्वती आदि ने उल्लेखनीय सफलता प्राप्त की। बम्बई प्रदेश से एम० बी० मालाबारी, जो पारसी थे, ने बाल-विवाह के विरुद्ध आन्दोलन चलाया। उसने "नोटिस ऑन इन्फेंट मैरिज इन इंडिया" और 'एनफोरसड विडोहुड' नाम के अपने दो नोटिस प्रकाशित किए। वह इस कुप्रथा को समाप्त करने हेतु एक कानून चाहते थे। अतः उसने सारे देश में भ्रमण कर जनता को जागृत किया। इस पवित्र कार्य में हिन्दी पत्रकारिता ने उसका सहयोग दिया।

'हिन्दोस्तान' (कालाकांकर) ने मालाबारी की मथुरा मीटिंग को प्रकाशित करते हुए लिखा, "इस कुप्रथा को समाप्त करने के लिए वहाँ पर एक कमेटी गठित की गई और मालाबारी का प्रयास अवश्य फल देगा।[१] मालाबारी के नोटिस के समर्थन में मेरठ के हिन्दुओं ने वाइसराय को एक स्मरण-पत्र भेजा, जिसमें कहा गया कि इस अप्राकृतिक और अमानवीय कुप्रथा के विषय में विश्व इतिहास में कहीं भी कुछ नहीं लिखा और यह कुप्रथा महिला-शिक्षा के विकास में भी बाधक है।"[२]

परन्तु कुछ परम्परावादी और प्रतिक्रियावादी पत्र-पत्रिकाएँ विवाह आयु को निश्चित करने में सरकारी हस्तक्षेप का विरोध कर रही थीं। 'सज्जन विनोद' और 'प्रयाग समाचार' दोनों ने सरकारी हस्तक्षेप का कड़ा विरोध किया।[3] 'भारत बन्धु' ने भी सरकारी हस्तक्षेप का विरोध किया।[४]

सुधारवादी और उदारवादी पत्र-पत्रिकाओं—"हिन्दोस्तान" और 'अल्मोड़ा अखबार' ने बाल-विवाह का खुले रूप में विरोध किया।[५] विवाह सम्बन्धी आयु को बढ़ाने हेतु बैप्टीस्ट मिशनरी सोसाइटी ने भी एक स्मरण-पत्र भारत सरकार की सेवा में विचाराधीन प्रेषित किया।[६]

"हिन्दोस्तान" के अनुसार हाथरस में बक्शी नंद किशोर आनरेरी माजिस्ट्रेट की अध्यक्षता में ब्रह्म वश महत्व नाटक संस्था संगठित हुई। इसने सामाजिक सुधार और ब्राह्मणों की दशा सुधारने के लिए प्रोत्साहन देने का निश्चय किया। इसने एक प्रस्ताव पास करके प्रार्थना की कि विवाह के समय कन्या की आयु ८ वर्ष के अतिरिक्त

---

१ 'हिन्दोस्तान' १८ मार्च १८८५, वही १८८५, पृ० २२२
२. होम डिपार्टमेंट, पुलिस, प्रोसीडिंग्स, नवम्बर १८८६, न० १३१-१६८ ई, पृ० ५१
३. 'सज्जन विनोद' और 'प्रयाग समाचार' २४ मार्च, १८८६, रिपोर्ट्स आन नेटिव न्यूज़पेपर्स, एन० डब्लू० पी० एंड पंजाब १८८६, पृ० २६०
४. 'भारत बन्धु' १० सितम्बर १८८६, वही १८८६, पृ० ६२३
५. हिन्दोस्तान' २६ सितम्बर तथा 'अल्मोड़ा अखबार' २० दिसम्बर १८८९, वही
६. होम डिपार्टमेंट, जूडीशियल प्रोसीडिंग्स, मार्च १८८८, न० ७१-८१

१२ वर्ष और लड़के की आयु कन्या से ५ वर्ष अधिक अर्थात १७ वर्ष होनी चाहिए।[1] और 'हिन्दी-प्रदीप' ने इस विषय में लिखा कि कन्या की आयु १२ या १४ वर्ष और लड़के की आयु १८ या २० वर्ष होनी चाहिए।[2] नेशनल सोशियल कांफ्रेंस की मीटिंग २६ दिसम्बर, १८८९ को बंबई में हुई, जिसमें प्रस्ताव पास किया गया कि विवाह के समय कन्या की आयु कम-से-कम १४ वर्ष होनी चाहिए।[3]

अतः इन आन्दोलनों को दृष्टि में रखकर भारत में ब्रिटिश सरकार ने सन् १८८९ में इस आयु के प्रश्न पर एक संवैधानिक कदम उठाने का निश्चय किया। कुछ पत्र-पत्रिकाओं ने इस कदम की भर्त्सना करते हुए लिखा कि यह कदम भारतीय धार्मिक और सामाजिक रीति-रिवाजों में सीधा हस्तक्षेप है। परन्तु हिन्दी पत्रकारिता के उदार और सुधारवादी गुट ने इसका समर्थन किया। इस प्रकार देखा जाता है कि हिन्दी-पत्रकारिता इस प्रश्न को लेकर विभाजित हो गई।

सरकारी कदम का समर्थन करते हुए 'हिन्दोस्तान' ने कहा कि यह आयु बढ़नी चाहिए और सरकार का कदम सराहनीय है।[4] इसी प्रकार के विचार 'अल्मोड़ा अख-बार' ने भी प्रकाशित किए।[5]

परन्तु परम्परावादी पत्रों ने इसका घोर विरोध किया। 'खिचड़ी समाचार' ने एक लेख में लिखा, 'हिन्दुओं में विशेषतः विवाह धार्मिक बन्धन है, न कि यूरोपियनों की तरह कानूनन समझौता और हिन्दू धार्मिक ग्रंथों के अनुसार मासिक-धर्म आने पर विवाह अपवित्र होता है। मासिक-धर्म प्रायः कन्या को १० वर्ष की आयु में आता है, अतः उसका विवाह १० वर्ष से पूर्व होना आवश्यक है। इस प्रकार इस सम्बन्ध में सरकारी संवैधानिक कदम भारतीय धार्मिक प्रथाओं में हस्तक्षेप है। विद्वान पंडितों की एक मीटिंग करनी चाहिए और सरकार को एक स्मरण-पत्र देना चाहिए।[6] 'भारत-जीवन' ने इस बिल को हिन्दू धर्म के लिए अन्याय पूर्ण बताया और महारानी विक्टो-रिया के सन् १८५८ की घोषणा के विपरीत कहा।[7] अपने फरवरी अंक में इसने कहा, 'यह समझना कठिन है कि सरकार इतनी शीघ्रता में इस बिल को क्यों पास करना चाहती है ? जबकि यह हिन्दू धर्म के विपरीत है और सारे भारत में इसका विरोध हो रहा है।"[8]

---

१. हिन्दोस्तान, ३० नवम्बर, १८८९, रिपोर्ट आन नेटिव न्यूजपेपर्स, एन० डब्लू० पी० एण्ड पंजाब, १८८९, पृ० ७०४
२. हिन्दी-प्रदीप, जून १७९०, वही १८९०, पृ० ६१६
३. होम डिपार्टमेंट जुडीशियल प्रोसीडिंग्स, जनवरी १८९१, न० १२६ (ए)
४. हिन्दोस्तान, १४ जनवरी, १८९१, रिपोर्ट आन नेटिव न्यूजपेपर्स, एन० डब्लू० पी० १८९१, पृ० ३८
५. अल्मोड़ा अखबार २९ दिसम्बर १८९३, वही १८९३, पृ० १०
६. खिचड़ी समाचार १७ जनवरी, १८९१, वही १८९१, पृ० ५६-६०
७ भारत जीवन, १६ जन० १८९१, माइक्रोफिल्म, नेहरू मेमोरियल म्यूजियम एवं लाइब्रेरी, नई दिल्ली।
८. वही ६ फरवरी १८९१, वही

अतः सरकार ने इस कुप्रथा को रोकने के लिए सन् [illegible] में एक कानून बनाया। परन्तु यह समूल रूप मे समाप्त नही हुई। उदाहरणार्थ सन् [illegible] मे आगरे में एक बाल-पत्नी को अस्पताल में भरती कराया गया चूंकि उसके पति ने उसके साथ जबरदस्ती सम्भोग किया और वह चार मास पश्चात मर गई। वह बाल-पत्नी शारीरिक रूप से हल्की तथा कमजोर थी और उसको मासिक धर्म तक नही आना आरम्भ हुआ था। अतः अभियुक्त को दो वर्ष का कारावास मिला।[1]

विधवापन : बाल-विवाह प्रथा प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से प्रभाव डाल रही थी। अनेक कन्याएँ अपने यौवन को प्राप्त करने से पूर्व ही विधवा हो जाती थी। विधवा-जीवन कितना कष्ट मे व्यतीत होता उसकी व्याख्या करना सरल नही। विधवा जीवन के प्रत्येक सुख से वंचित होकर एक दयनीय जीवन व्यतीत करती थी। तरुण अवस्था में होने पर भी वे पुनः विवाह नही कर पातीं। विधवा एक समय खाती, जमीन पर सोती, सफेद कपड़े पहनती और घर के कार्य का सबसे अधिक बोझ उठाती। सबसे हृदयविदारक यह था कि उसे प्रत्येक शुभ अवसर से दूर रखा जाता चूंकि वह अशोभनीय थी। वह किसी नववधू का स्वागत भी करने से वंचित रहती। अतः वह अपने यौवन भरे जीवन को धीरे-धीरे बिना किसी कष्ट को दिखाए जलाती रहती।

ईश्वरचन्द्र विद्यासागर ने निरन्तर इस कुप्रथा को समाप्त करने का प्रयास किया और उनके प्रयत्न से ब्रिटिश सरकार ने सन् १८५६ में इसे समाप्त करने के लिए कानून बनाया। ईश्वर चन्द्र विद्यासागर ने एक उदाहरण प्रस्तुत करने के लिए अपने पुत्र का विवाह एक विधवा के साथ किया।'[2]

परन्तु सन् १८५६ के पश्चात भी यह कुप्रथा किसी-न-किसी रूप में समाज को खाये जा रही थी। सामाजिक संगठनो के नेताओ के प्रयास के साथ-साथ हिन्दी पत्रकारिता ने भी इसे समूल उखाड़ फैंकने का बीड़ा उठाया।

हिन्दू महिलाएँ अधिकतर ८ या ९ वर्ष की आयु मे विधवा हो जाती और जब वे विवाह योग्य अवस्था मे आती तो अपने काम वासनावश कुछ-न-कुछ कर बैठती तो उसके माता-पिता की प्रतिष्ठा समाज में गिर जाती। 'कवि-वचन-सुधा' के एक लेख के अनुसार, "गर्भ निरोध के सभी सुरक्षात्मक कदम उठाने के पश्चात भी यदि कोई महिला गर्भवती हो जाती तो वह गर्भपात करने का प्रयास करती। यदि गर्भ-पात मे असफल हो जाती तो वह उस असंवैधानिक शिशु को भूखा मारकर मारने का प्रयास करती। यद्यपि सभी भारतीय पुर्नविवाह की आवश्यकता को अनुभव कर रहे थे परन्तु किसी मे भी यह साहस नही हो पा रहा था कि इस कुप्रथा के विरुद्ध आवाज उठाएँ। अतः इसे समाप्त करने के लिए सरकार को आगे आकर विशेप कानून बनाना चाहिए।"[3]

---

१. होम डिपार्टमेंट, जुडीशियल, प्रोसीडिंग्स, अगस्त १८९३, न० १८७-१९६
२. होम डिपार्टमेट, पब्लिक, ४ मार्च, १८५६, न० १६-३०
३. 'कवि-वचन सुधा' ११ मार्च १८७८

'आर्यन' (मासिक) ने भी इसके लिए विधान (कानून) की आवश्यकता पर जोर दिया।[1]

'अल्मोड़ा अखबार' ने कहा, "प्रत्येक बुद्धिमान व्यक्ति कानून की आवश्यकता को अनुभव करता है, परन्तु अधिकतर लोग इस प्रकार के कानून को अपने धर्म में हस्तक्षेप समझते हैं और सरकार का हस्तक्षेप सारे देश में असन्तोष उत्पन्न करेगा।"[2] पत्र-पत्रिकाओ ने इसके विरुद्ध वातावरण बनाते हेतु उन जातीय संस्थाओं के प्रस्तावों को प्रकाशित किया जो इस कुप्रथा के विरुद्ध थे। 'प्रयाग समाचार' ने उस मीटिंग की कार्यवाही को प्रकाशित किया जो राजा रामपालसिंह की अध्यक्षता में दिनांक १८ जनवरी, १८८५ में, कायस्थ पाठशाला इलाहाबाद में हुई थी। इस मीटिंग मे प्रस्ताव पास किया गया कि हिन्दुओं मे पुनर्विवाह को प्रोत्साहित करना चाहिए।[3]

आर्य समाज और उसकी पत्र-पत्रिकाओ ने समाज सुधार आन्दोलन विशेषत: पुनर्विवाह मे उल्लेखनीय कार्य किया। 'आर्य दर्पण' ने एक लेख मे लिखा, 'विधवाओं ने अपनी दयनीय दशा को अनुभव किया है और उन्होने शिकायत की कि विधुर कितनी ही बार विवाह कर सकता है जबकि विधवा को यह अनुमति नही।'[4] इसी प्रकार मेरठ मे जाट कान्फ्रेंस ने १८६० में विवाह सम्बन्धित कानून की आवश्यकता पर बल दिया।[5]

अत: कहा जा सकता है कि १९वीं शती के अन्तिम दशक मे हिन्दी पत्रकारिता ने इस दिशा मे एक नवीन चेतना का सृजन कर इस कुप्रथा को समूल समाप्त करने का भरसक प्रयत्न किया।

दहेज प्रथा—जब से मानव एक समाज के रूप मे संगठित हुआ तभी से वह मान, मर्यादा और प्रतिष्ठा का भूखा रहा। वह अपने आपको सबसे धनी और आदरणीय दिखाना चाहता रहा। वह त्यौहारो और विवाहों आदि अवसरो पर अपने आपको प्रदर्शित करता है। इस प्रकार छोटे और सादे सामाजिक तथा धार्मिक उत्सवो ने असाधारण और कीमती रूप धारण कर लिया। प्राचीन काल से चली आ रही विवाह प्रथा शनै:शनै: दिखावे में परिवर्तित हो गई और इस पर अधिक व्यय करना आवश्यक-सा हो गया। इस चक्र मे वह समुदाय पिसता जा रहा था, जो निर्धन था। एम० के० गाधी के शब्दों में, 'अधिक व्यय वाले विवाह ने दुल्हे और दुल्हन के मां-बाप को कुचल दिया। विवाह की तैयारी मे अधिक समय और धन नष्ट होता है। मूल्यवान कपड़े, आभूषण और कीमती खाने ने मा-बाप की कमर तोड़ दी।"[6]

---

१. 'आर्यन' १ जून, १८७८, रिपोर्ट आन नेटिव न्यूज पेपर्स, एन० डब्लू० पी० एड पजाब १८७८, पृ० ५१८-१९
२. 'अल्मोड़ा अखबार' ६ अक्टूबर, १८८४, वही १८८४, पृ० ६०२
३ 'प्रयाग समाचार', २१ जनवरी, १८८५, वही १८८५, पृ० ६
४. 'आर्य दर्पण' अप्रैल १८९२, वही १८९२, पृ० १५८
५. दा रिपोर्ट आफ दा ६वीं नेशनल सोशियल कांफ्रेंस इलाहाबाद, १८९२
६. एम० के० गांधी : दा स्टोरी आफ माई एक्सपीरियंस विद-ट्रूथ, १९५९, पृ० ६

१९वीं शती में उत्पन्न सामाजिक सुधार आन्दोलनों ने विवाह में अधिक व्यय को कम करने के प्रश्न को लेकर अपना पुरजोर अभियान आरम्भ किया। इन संगठनों ने जो अधिकतर जातीय आधार पर बने थे पत्रकारिता का सहारा लिया। हिन्दी पत्रकारिता ने इसमें मुख्य रूप से भाग लिया। चूंकि विवाह मे अधिक व्यय से न केवल गरीबी, बल्कि अनैतिकता भी समाज मे फैल रही थी।

हिन्दी-पत्रकारिता ने समाज और सरकार का ध्यान इस अव्याहारिक प्रथा की ओर खींचा। 'कवि वचन सुधा' ने सरकार का ध्यान आकर्षित करते हुए कान्य-कुब्ज ब्राह्मणों मे व्याप्त इस कुप्रथा के विषय मे कहा, "ब्राह्मणो के इस वर्ग में लड़की का विवाह तब तक नहीं होता जब तक लड़की का बाप वर के बाप को दान के रूप मे अच्छी धन-राशि न देता। इस प्रकार जिन लड़कियों के मां-बाप निर्धन थे बुढ़ापे तक अविवाहित बैठी रहती है। उनका जीवन वास्तव में कष्टमय और दयनीय है।"[1] अधिक व्यय वाला विवाह निर्धनता का कारण बन गया था। भारत बन्धु (अलीगढ़) ने दुःख प्रकट करते हुए लिखा, "भारतीय विवाह मे अधिक व्यय करने के कारण निर्धन होते जा रहे हैं और वे इस व्यय को रोकने मे असफल हैं। अतः यह अच्छा होगा कि सरकार इसमें हस्तक्षेप करे, ताकि उनको नष्ट होने से बचाया जा सके।"[2]

दहेज के कारण कभी-कभी हत्या भी होती थी। 'आर्य दर्पण' के अनुसार ललिता प्रसाद कान्य-कुब्ज ब्राह्मण ने अपनी पुत्री की हत्या इस कारण कर दी क्योंकि वह दहेज में ५०० या ६०० रुपये नहीं दे पा रहा था।[3] न केवल ब्राह्मण बल्कि क्षत्रिय और वैश्य भी अधिक दहेज दे कर निर्धनता को निमंत्रित कर रहे थे। अतः इस प्रथा के बुरे परिणाम देखकर स्थानीय और जातीय सगठनो ने कदम उठाने आरम्भ किए। 'मयूर गजट' (मेरठ) ने उस सभा की कार्यवाही को प्रकाशित किया, जो अंजुमन-ए-हिन्द सोसाइटी के प्रधान मुंशी प्यारेलाल द्वारा हापुड मे बुलाई गई थी। इस सभा में बहुत से हिन्दू समीप के गाँवों और कस्बों से एकत्रित हुए थे। इस सभा में विवाह मे अधिक व्यय करने की भर्त्संसना की गई और भविष्य में दहेज न देने का प्रण लिया।[4] इस प्रकार की एक सभा आगरे में गवर्नमेंट कालेज के प्रांगण मे भी आयोजित की गई, जिसमें सभी जातियों के प्रतिनिधियों ने भाग लेकर दहेज-प्रथा रोकने की प्रतिज्ञा की।[5] ऐसी सभा 'अंजुमन-ए-हिन्द सोसाइटी' के प्रधान मुंशी प्यारेलाल ने इटावा जिले मे विभिन्न स्थानो पर की, जिनमें दहेज न देने के प्रस्ताव पास किए।[6] मुंशी प्यारेलाल

---

१. 'कवि वचन सुधा' २१ मार्च, १८७७, रिपोर्ट मान नेटिव न्यूजपेपर्स : एन० डब्लू० पी० एड पंजाब १८७७, पृ० ३६६
२. भारत बधु, १३ जून, १८७८, वही १८७८, पृ० ५३७
३. 'आर्य दर्पण' फरवरी, १८८५, वही एन० डब्लू० पी० १८८५, पृ० १२७
४. मयूर गजट, १० मई, १८७० वही एन० डब्लू० पी० एड पंजाब १८७०, पृ० २११
५. आगरा अखबार, ३० जून, १८७० वही
६. 'नूर-उल-अखबार' ५ मई १८७२, वही १८७२, पृ० २२७

जिसमें विवाह और मृत्यु आदि अवसरों पर अधिक व्यय न करने का प्रस्ताव सर्व-सम्मति से पारित किया गया।[1]

जातीय संगठनों के अतिरिक्त स्थानीय सरकारों ने भी इस कुप्रथा को रोकने में सक्रिय योग दिया। 'कोहेनूर अखबार' ने बरेली म्यूनिसिपल कमेटी की निम्नलिखित कार्यवाही को प्रकाशित किया। "कमेटी ने 'नेटिव मैरीज एक्सपेंसीज' नामक निबन्ध प्रतियोगिता रखी और इसमें प्रथम स्थान पर आने वाले को २०० रुपये इनाम के रूप में रखे। इस इनाम को फतेहपुर के ईश्वरदास ने जीता।[2] 'लारेंस गजट' के अनुसार मो० फैज अजीज सरधना (जिला मेरठ) के तहसीलदार ने ऐसे विवाहों पर कर लगाने का सुझाव दिया।[3] 'नागरी नीराद' (मिर्जापुर) के अनुसार जौनपुर के मजिस्ट्रेट ने राजा शंकरदत्त दुबे के घर पर दिनांक २७ मार्च, १८९३ को एक मीटिंग की, जिसमे विवाह में कम व्यय करने का प्रस्ताव पास किया गया।[4]

वेश्यावृत्ति— हिन्दी-पत्रकारिता समाज-सुधारकों के लिए एक प्रभावशाली एवं सशक्त माध्यम बन गई थी। ताकि वे वेश्यावृति सरीखी सामाजिक बुराई को समाज मे से समूल नष्ट करें। "वेश्यावृत्ति एक व्यावहारिक एव स्वाभाविक अथवा समय-समय पर स्त्री-पुरुष के मध्य लिंग सम्बन्ध, न्यूनाधिक मिश्रित, धन प्रलोभन के कारण होती है।"[5] यह लिंग सम्बन्ध प्रेमी-प्रेमिका के मध्य नही होता, बल्कि यह तो धन-प्रलोभन के कारण होता है। यह विश्व की प्राचीनतम बुराई समाज मे किसी-न-किसी रूप मे रही है।"

इसकी उत्पत्ति के दो ही कारण होते हैं— शारीरिक एवं आर्थिक। इनमे प्रथम प्राकृतिक एवं स्वाभाविक है और दूसरा समाज के द्वारा उत्पन्न किया जाता है। आर्थिक कारणों में महिला की निर्धनता उसे ऐसा करने के लिए विवश करती है। आधुनिक औद्योगिक उपनिवेश, शहरीपन, निर्बल सामाजिक नियंत्रण और नैतिक शिक्षा की कमी, स्त्री-पुरुष में अधिक मिलन, आधुनिक मनोरंजन के तरीके, विलम्ब से विवाह आदि कारण भी इसमें न्यूनाधिक सहयोग देते है।

यद्यपि इसे रोकने के लिए समय-समय पर संवैधानिक और अवैधानिक कदम उठाए गए, परन्तु यह कुप्रथा किसी-न-किसी रूप में निरन्तर रही। अतः हिन्दी-पत्रकारिता ने इसके रोकने मे अपना सक्रिय योग दिया। वैश्याएँ प्रायः उन्हें अपनी ओर आकर्षित करने का प्रयास करती हैं जो उनके मकानों के पास से होकर जाते हैं। इस

---

१. 'हिन्दोस्तान' २७ जन० १९०१, वही १९०१, पृ० ८०
२. वही, पृ० २३२
३. लारेंस गजट, २२ जुलाई, १८७० वही १८७०
४. 'नागरी निराद', ६ अप्रैल, १८९३, रिपोर्ट आन : · ·
५ जीमोफरी, मई : प्रोस्टीचूशन इन एनसाइक्लोपीडिया आफ दा सोशियल साइंसिज, वोल्यूम XII (१९३५) पृ० ५५३

ने स्थानीय सरकारी अधिकारियों से भी सहयोग लिया ताकि हिन्दूओं में से इस कलंक को समूल नष्ट किया जा सके।[1] सोशियल नेशनल कांफ्रेंस के अनुसार कायस्थों ने बहुत-सी स्थानीय एसोसिएशन स्थापित की, जिन्होंने सामाजिक सुधार में सराहनीय कार्य किया। बरेली कायस्थ सभा ने समाज में व्याप्त बुराइयों को समाप्त करने हेतु निम्न प्रस्ताव पास किए (१) बाल विवाह पर रोक, (२) दहेज प्रथा की समाप्ति, (३) मादक पदार्थों का प्रयोग न करना, (४) ५० वर्ष से ऊपर के व्यक्ति से विवाह न करना, (५) वेश्यावृत्ति की समाप्ति, (६) जुआ न खेलना, (७) बहुविवाह आदि पर रोक।[2]

सभी जातियाँ जैसे कायस्थ, भार्गव, चतुर्वेदी, ब्राह्मण वैश्य, जैन और अन्य ने विवाह व्यय मे कटौती करने का निश्चय किया। नाच पार्टी, आतिशबाजी और दूसरी अनावश्यक वस्तुओं को विवाह में ले जाना और मंगाना समाप्त कर दिया। द्वितीय कायस्थ कांफ्रेंस इलाहाबाद मे दिनांक १६ और १७ सितम्बर, १८८८ मे आयोजित हुई। इसमे लगभग ४ या ५ सौ कायस्थ विभिन्न राज्यों एन० डब्ल्यू० पी०, अवध, पंजाब, सी० पी० राजपूताना, बिहार और बम्बई से आये। राय हरसुखराय 'कोहेनूर' अखबार लाहौर के स्वामी ने इस कांफ्रेंस की अध्यक्षता की। इसमें प्रस्ताव पास किए गए कि प्रत्येक राज्य में इसकी शाखाएँ खोलनी चाहिएँ, बाल-विवाह प्रथा को समाप्त किया जाये, विवाह मे फिजूल खर्ची को रोका जाये और दहेज प्रथा का परहेज किया जाए।[3] 'आर्य दर्पण' ने मेरठ अग्रवाल सभा की वार्षिक सभा की कार्यवाही को प्रकाशित किया। इस सभा का मुख्य उद्देश्य था कि किसी-न-किसी प्रकार विवाह-व्यय को समाप्त किया जाए।[4] इसी प्रकार द्वितीय जाट कांफ्रेंस का वार्षिक सम्मेलन २७ दिसम्बर १८९१ मे मथुरा मे आयोजित हुआ। इसमें भी शिक्षा के प्रसार और विवाह में व्यय की कटौती आदि अन्य प्रस्ताव सर्व-सम्मति से पारित हुए।[5]

इस क्षेत्र मे वैश्य कांफ्रेंस भी किसी से पीछे नहीं रही। इसकी सभा २७ तथा २८ दिसम्बर, १८९४ मे सहारनपुर मे सम्पन्न हुई। इसने सर्व-सम्मति से प्रस्ताव पास किए कि जाति के लड़के-लडकियों में शिक्षा का प्रचार किया जाए, विवाह व्यय मे कटौती की जाए, बाल-विवाह को रोका जाए और सभा ने ब्राह्मणों और क्षत्रियों से भी प्रार्थना की कि वे उन कुप्रथाओं को समाप्त करने में सहयोग दें।[6] समाज-सुधार के संबंध मे भूमिहर ब्राह्मणों की सोशियल कांफ्रेंस इलाहाबाद में हुई,

---

१. 'आगरा अखबार' १८ अप्रैल, १८८८, वही १८८८, पृ० २६०

२. रिपोर्ट ११वी नेशनल सोशियल कांफ्रेंस, पृ० १२

३. कायस्थ अखबार २४ सितम्बर, १८८८, रिपोर्ट आन नेटिव न्यूज पेपर्स : एन० डब्लू पी० एंड पंजाब १८८८, पृ० ६४६

४ आर्य दर्पण, जनवरी १८९२ रिपोर्ट आन नेटिव न्यूज पेपर्स, एन० डब्लू० पी० १८९२ पृ० ३७

५. जाट समाचार, जन० १८९२, वही १८९२ पृ० ३५

६. हिन्दोस्तान, ५ जन० १८९५, वही १८९५ पृ० २१

जिसमे विवाह और मृत्यु आदि अवसरों पर अधिक व्यय न करने का प्रस्ताव सर्व-सम्मति से पारित किया गया।[1]

जातीय संगठनो के अतिरिक्त स्थानीय सरकारों ने भी इस कुप्रथा को रोकने मे सक्रिय योग दिया। 'कोहेनूर अखबार' ने बरेली म्यूनिसिपल कमेटी की निम्नलिखित कार्यवाही को प्रकाशित किया। "कमेटी ने 'नेटिव मैरीज एक्सपेंसीज' नामक निबन्ध प्रतियोगिता रखी और इसमें प्रथम स्थान पर आने वाले को २०० रुपये इनाम के रूप में रखे। इस इनाम को फतेहपुर के ईश्वरदास ने जीता।[2] 'लारेंस गजट' के अनुसार मौ० फैज अजीज सरधना (जिला मेरठ) के तहसीलदार ने ऐसे विवाहों पर कर लगाने का सुझाव दिया।[3] 'नागरी नीराद' (मिर्जापुर) के अनुसार जोनपुर के मजिस्ट्रेट ने राजा शकरदत्त दुबे के घर पर दिनांक २७ मार्च, १८६३ को एक मीटिंग की, जिसमें विवाह में कम व्यय करने का प्रस्ताव पास किया गया।[4]

वैश्यावृत्ति -- हिन्दी-पत्रकारिता समाज-सुधारको के लिए एक प्रभावशाली एवं सशक्त माध्यम बन गई थी। ताकि वे वैश्यावृति सरीखी सामाजिक बुराई को समाज मे से समूल नष्ट करें। "वेश्यावृत्ति एक व्यावहारिक एव स्वाभाविक अथवा समय-समय पर स्त्री-पुरुष के मध्य लिंग सम्बन्ध, न्यूनाधिक मिश्रित, धन प्रलोभन के कारण होती है।"[5] यह लिंग सम्बन्ध प्रेमी-प्रेमिका के मध्य नही होता, बल्कि यह तो धन-प्रलोभन के कारण होता है। यह विश्व की प्राचीनतम बुराई समाज मे किसी-न-किसी रूप मे रही है।"

इसकी उत्पत्ति के दो ही कारण होते हैं -- शारीरिक एवं आर्थिक। इनमे प्रथम प्राकृतिक एवं स्वाभाविक है और दूसरा समाज के द्वारा उत्पन्न किया जाता है। आर्थिक कारणों में महिला की निर्धनता उसे ऐसा करने के लिए विवश करती है। आधुनिक औद्योगिक उपनिवेश, शहरीपन, निर्बल सामाजिक नियंत्रण और नैतिक शिक्षा की कमी, स्त्री-पुरुष मे अधिक मिलन, आधुनिक मनोरंजन के तरीके, विलम्ब से विवाह आदि कारण भी इसमे न्यूनाधिक सहयोग देते है।

यद्यपि इसे रोकने के लिए समय-समय पर संवैधानिक और अवैधानिक कदम उठाए गए, परन्तु यह कुप्रथा किसी-न-किसी रूप में निरन्तर रही। अतः हिन्दी-पत्रकारिता ने इसके रोकने में अपना सक्रिय योग दिया। वैश्याएँ प्रायः उन्हें अपनी ओर आकर्षित करने का प्रयास करती है जो उनके मकानों के पास से होकर जाते हैं। इस

---

१. 'हिन्दोस्तान' २७ जन० १६०१, वही १६०१, पृ० ८०
२ वही, पृ० २३२
३. लारेंस गजट, २२ जुलाई, १८७० वही १८७०
४. 'नागरी निराद', ६ अप्रैल, १८९३, रिपोर्ट मान : ··
५ जीमोफरी, मई : प्रोस्टीचूशन इन एनसाइक्लोपीडिया आफ दा सोशियल साइंसिज, वोल्यूम XII (१६३५) पृ० ५५३

प्रकार एक कष्ट का विषय बन जाता है । 'लारेंस गजट' (मेरठ) ने सरकार और समाज का ध्यान उन महिलाओं की ओर आकर्षित किया जो मेरठ शहर में भले आदमियों को तंग करती थीं । पत्र ने माग की कि उनकी इस प्रकार की स्वतन्त्रता समाप्त होनी चाहिए ।[1]

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि हिन्दी-पत्रकारिता ने समाज के परिवेश में व्याप्त बुराइयों को नष्ट करने मे कोई कसर नही रखी ।

अस्पृश्यता—अस्पृश्यता अथवा अछूत प्रथा भारतीय समाज का एक पुरातन कोढ़ है । शताब्दियों से अछूत उच्च जातियों के अत्याचारों के शिकार रहे हैं । भारत के अतिरिक्त विश्व के किसी भी देश मे ऐसा उदाहरण प्राप्त नही होता है । महात्मा गांधी ने ठीक ही कहा, "अस्पृश्यता को मैं धर्म का सबसे बड़ा कलंक मानता हूँ ।" अछूत सामाजिक अधिकारों से वंचित रहते और उन्हे नीच समझा जाता । लोग न केवल इनके स्पर्श मात्र से अपवित्र हो जाते वरन इनके समीप आने और देखने मात्र से अपवित्र हो जाते थे । इस वर्ग के लोग अपने को हिन्दू कहते और हिन्दुओं के देवी-देवताओ की पूजा भी करते, परन्तु उच्च वर्ग उनको छूना पसन्द नही करते । इन्हें मन्दिरों आदि में प्रवेश का अधिकार नहीं था । ये समाज में मैला आदि ढोने जैसे छोटे कार्य करते थे । इस प्रकार कहा जा सकता है कि एक प्रकार से उनकी सामाजिक हत्या कर दी गई है तथा वे जीवित रहते हुए भी एक मृतक के समान जीवन व्यतीत करते हैं ।

वे हिन्दू होते हुए भी हिन्दू धार्मिक स्थानो में प्रवेश नही कर सकते, उन्हें स्पर्श करना पाप माना जाता, वे मनचाहा व्यवसाय नही कर सकते तथा नगरों से दूर रहते । इस प्रकार भारतीय समाज का बहुत बड़ा भाग सदैव से पिछड़ा रहा । परन्तु अंग्रेजी राज्य की स्थापना होने पर देश में यातायात आदि की सुविधा ने इन्हें एक साथ बैठने का अवसर प्रदान किया और समाज सुधारकों—राजा राममोहन राय, स्वामी दयानन्द, स्वामी रामकृष्ण परमहस और विवेकानन्द आदि ने इस ओर ध्यान देकर अस्पृश्यता को समाप्त करने का प्रयास किया ।

हिन्दी-पत्रकारिता ने भी इस क्षेत्र मे उल्लेखनीय कार्य किया । 'हिन्दी-प्रदीप' के अनुसार यह प्रथा पूर्ण रूप से अनुचित और अन्यायपूर्ण थी, क्योंकि यह धार्मिक भावनाओं में बाधक थी ।[2] आर्य-समाज ने हरिजनोद्धार आन्दोलन में अपना सक्रिय सहयोग दिया । लाला लाजपतराय के अनुसार, "आर्य समाज के सामाजिक विचार

---

१. लारेंस गजट, २१ मार्च, १८६६, रिपोर्ट आन नेटिव न्यूजपेपर्स : एन० डब्लू० पी० एंड पंजाब १८६६, पृ० २१-२२
२. 'हिन्दी-प्रदीप' १७ जुलाई, १८७४, रिपोर्ट आन नेटिव न्यूज पेपर्स, एन० डब्लू० पी० एंड पंजाब, १८७४, पृ० २६१

जैसे ईश्वर सर्वशक्तिमान है, सब मनुष्य भाई-भाई हैं, स्त्री-पुरुष समान है, न्याय सब के लिए है, कर्म तथा योग्यता के आधार पर सभी को कार्य करने का अवसर मिलना चाहिए, प्रेम और श्रद्धा सभी को समान रूप से मिलनी चाहिए।"[1] आगे उन्होंने घोषणा की, "तब तक देश की वास्तविक उन्नति नही हो सकती जब तक देश की जनसंख्या का बड़ा वर्ग अपने सामाजिक अधिकारों से वंचित रहेगा। जहाँ तक दलित वर्ग का सम्बन्ध है जब तक उनकी उन्नति नहीं होगी, तब तक देश की उन्नति संभव नही है।"[2]

अतः उपरोक्त तथ्यों के आधार पर कहा जा सकता है कि सामाजिक सुधार संगठनों और अग्रणीय समाज सुधारकों ने पाश्चात्य उदारवादी, लोकतंत्रीय, सुधारवादी विचारो को ग्रहण करके पत्रकारिता का सहारा लिया, ताकि तत्कालीन समाज में व्याप्त बुराइयों के विरुद्ध अभियान चलाकर उन्हे समाप्त किया जा सके।

---

१ लाला लाजपत राय : आर्य समाज, पृ० १३६-३७
२. वही, पृ० २२३

५ | हिन्दी पत्रकारिता : राजनैतिक चेतना

आधुनिक भारतीय बुद्धिजीवी वर्ग, जिसे व्यापारियों तथा उद्योगपतियों का समर्थन प्राप्त था, ने सामाजिक सुधार आन्दोलनों में उल्लेखनीय कार्य किया। इसी वर्ग ने राजनैतिक चेतना की बागडोर सम्भाली और राष्ट्रीयता का बीजारोपण करना आरंभ किया। यद्यपि यह वर्ग छोटा था परन्तु इसने पत्रकारिता का आश्रय लेकर साधारण जनता को उसके राजनैतिक अधिकारों के प्रति सचेत किया। हिन्दी पत्रकारिता जो अपने प्रारम्भिक काल से समाज-सुधार कार्यों में लगी हुई थी, शनैः-शनैः राजनीति की ओर बढ़कर अपने दायित्वों को निभाने हेतु राजनैतिक मैदान में आई और एक प्रभावशाली माध्यम बनकर राजनैतिक अधिकारों के लिए अभियान छेड़ा।

जातीय व रंग-भेद

अंग्रेजों का शत्रुतापूर्ण व्यवहार : अंग्रेज अपनी जाति पर घमंड करते थे। रंग-भेद नीति उनके मस्तिष्क में गहरी जड़ें गाढ़ चुकी थी। वे भारतीयों को काले, गन्दे और असभ्य मानते थे। इनसे मिलना अथवा इनके पास बैठना पाप समझते थे। जब कभी कोई भारतीय किसी अंग्रेज को नमस्ते या सलाम नहीं करता तो उसको पीटा जाता था।[1] यद्यपि अंग्रेज अपने आपको सभ्य, शालीन और दयालु दिखाता परंतु भारतीयों के साथ उसका दुर्व्यवहार इतना बुरा था जिसका वर्णन शब्दों में कर सकना सम्भव नहीं। रंग-भेद नीति का एक स्पष्ट उदाहरण मिलता है कि दिल्ली कालेज के प्रिंसिपल ने इसलिए अपने पद से त्याग-पत्र दे दिया था चूँकि भारतीय छात्र पेंट व कोट नहीं पहनते थे।[2]

यदि अंग्रेज बड़े-से-बड़ा अपराध करता तो वह अपराध नहीं माना जाता और

---

१. होम डिपार्टमेंट, पब्लिक प्रोसीडिंग्स, ८ सितम्बर १८६४, नं० २९-३० (ए)

२. 'लारेंस गजट' फरवरी, १८६४, रिपोर्ट ऑन नेटिव न्यूज पेपर्स, एन० डब्लू० पी० एंड पंजाब १८६४-६५, पृ० ५७

यदि कोई भारतीय कोई छोटे से छोटा अपराध किसी कारण-वश कर देता तो उसे कठोर कारावास की हवा खानी होती थी। अंग्रेज भारतीयों को घृणा की दृष्टि से देखते और उन्हें निग्रों, काले आदमी और असभ्य आदि शब्दों से सम्बोधित करते।[1] अतः लार्ड मार्ले के अनुसार, "अंग्रेजी अधिकारी भारतीयों से अलग रहते है चूँकि वे उनसे घृणा करते हैं और सामान्य जनता की आवाज को अनसुनी करते हैं।"

अंग्रेजों ने एक ऐसी प्रथा को जन्म दिया जो दुर्भाग्यपूर्ण थी, वह थी जूता उतारने की। जब किसी भारतीय को किसी अंग्रेज अधिकारी के समक्ष जाना होता तो उसे जूता उतारना होता था। यद्यपि सन् १८६७ में एक सरकारी आदेशानुसार भारतीयों के लिए अंग्रेज अधिकारी के सामने या दरबार में जूता उतारना आवश्यक नही रहा था।[2] परन्तु यह आदेश केवल कागज पर ही कमर तोड रहा था। उदाहरणार्थ आगरे के शाही दरबार में छोटे-से-छोटा अंग्रेज भी जूता पहने घूम रहा था और भारत का बड़े-से-बड़ा रईस नंगे पैर घूमकर अपने आपको घृणित मान रहा था।[3] मेरठ गजट ने अवध के चीफ कमिश्नर के एक आदेश को प्रकाशित किया कि यदि कोई भारतीय सज्जन उनसे मिलना चाहे तो वह जीने मे ही जूता उतारकर आये।[4] इसी प्रकार के आदेश की घोषणा एन० डब्लू० पी० के लैफ्टीनेंट-गवर्नर सर ए० लायल ने भी की थी।

न्याय और रंग-भेद नीति : भारत में ब्रिटिश प्रशासन का सबसे अधिक घृणित पहलू यह था कि अंग्रेज के बडे-से-बड़े अपराध पर भी न्यायालय कम-से-कम दंड देता था। जबकि सन् १८५७ में लार्ड कैंनिंग के शासन काल में एक सरकारी आदेशानुसार भेद-भाव की नीति को समाप्त कर दिया गया था, परन्तु यह दुर्भाग्य था कि कोई भी भारतीय न्यायाधीश के रूप में नियुक्त नहीं किया जाता था। चूंकि विलियम मयूर के अनुसार कोई भारतीय न्यायाधीश के पद के योग्य नही था।

रंग-भेद की नीति के साथ-ही-साथ यह बताना भी आवश्यक है कि अंग्रेज अधिकारी भारतीय कन्याओं और महिलाओं के साथ बलात्कार करने मे भी नही चूकते थे। चूंकि न्यायालयों में अंग्रेज न्यायाधीश होने के कारण उन्हे किसी प्रकार का खतरा नही था। वहाँ पर न्यायाधीश उन्हें बचाने के लिए कोई-न-कोई नया तरीका खोज लेता था। उदाहरणार्थ "इलाहाबाद कोर्ट मे न्यायाधीश ने एक बलात्कार के मामले मे फैसला दिया कि भारतीय लड़की अपने आप तैयार होती है और यदि उनके घर वाले

---

१. होम डिपार्टमेंट, जूडीशियल प्रोसीडिंग्स, जून १८७८, न० ८१ (बी)

२. होम डिपार्टमेंट पब्लिक, ४ अप्रैल, १८६७, न० २३

३. 'नया राजस्थान' १६ जुलाई, १८६७, रिपोर्ट आन नेटिव न्यूज पेपर्स, एन० डब्लू० पी० एण्ड पंजाब, १८६७, पृ० ३६७

४. 'मेरठ गजट' २५ मार्च, १८७१, वही १८७१, पृ० १४२

देख लें तो शोर मचाने लगती है कि उनके साथ बलात्कार किया गया।"[1]

इल्बर्ट बिल वाद-विवाद : अंग्रेजों का जातीय गर्व सभी क्षेत्रों में विद्यमान था। जैसा ऊपर कहा गया है कि कोई भी भारतीय न्यायाधीश के पद पर नियुक्त नहीं होता और यदि हो भी जाता तो उसे यह अधिकार नहीं था कि वह किसी अंग्रेज अपराधी पर लगे अभियोगों की सुनवाई कर सके। चूंकि सन् १८७३ की फौजदारी दंड संहिता के अनुसार किसी यूरोपीय या ब्रिटिश प्रजाजन के विरुद्ध मुकदमे की सुनवाई तब तक नहीं कर सकता जब तक न्यायाधीश स्वयं जन्म से यूरोपीय न हो। बिहारीलाल गुप्ता (१८४८-१९१६) जो उन चार भारतीयों में से एक थे, जिन्होंने सन् १८६९ में कनवन्टिड सिविल सर्विस परीक्षा उत्तीर्ण की थी, के अनुरोध पर लार्ड रिपन ने अपनी कांसिल के विधि सदस्य इलबर्ट से कहा कि वह इस अनियमितता को दूर करने का प्रस्ताव सुप्रीम लेजिस्लेटिव कासिल मे प्रस्तुत करें जिसके द्वारा भारतीय न्यायाधीशों को वह अधिकार मिल जाये जो यूरोपीय न्यायाधीशों को हों।[2] इस प्रकार लार्ड रिपन की सरकार ने जातीय भेद-भाव के कारण कानून सम्बन्धी अयोग्यताओं को दूर करने का विधेयक मि० इलबर्ट द्वारा तैयार कराया।

मसविदे के रूप में बिल को सामान्य रूप से लार्ड रिपन की अन्तरंग कांसिल तथा प्रायः सभी प्रांतीय सरकारों ने भी अपनी स्वीकृति प्रदान कर दी, तत्पश्चात् उसे देश की विधान सभा में फरवरी १८८२ में प्रस्तुत किया गया। परन्तु, "कुछ सप्ताहों में सम्पूर्ण ब्रिटिश जाति ने बिल का विरोध करना आरम्भ कर दिया और लार्ड रिपन पर आरोप लगाया कि वह भारतीयों को गद्दी पर बैठाना चाहते हैं।"[3] मद्रास कासिल के एक सदस्य कारमीचल (१८३०—१९०३) ने इस विधेयक का असभ्य शब्दों में विरोध किया और कहा कि यह ब्रिटिश जाति के हितों के विरुद्ध है।[4] वायसराय की अपनी कासिल के सदस्य जेम्स गिब्बस (१८२५-८६) ने भी इसी प्रकार का विरोध किया।[5]

इसी बीच में सेक्रेटरी ऑफ स्टेट फॉर इंडिया ने इस विधेयक को स्वीकृति प्रदान कर दी, जिसमें स्थानीय सरकारों को अधिकार दिया गया कि वे भारतीय न्यायाधीशों को अधिकार दें कि वे प्रेसीडेंसीज के बाहर भी किसी यूरोपियन अपराधी पर हुए मुकदमे की सुनवाई कर सकते है।[6]

परन्तु यूरोपियन जाति पूर्णरूप से आन्दोलित हो चुकी थी और उसने लार्ड रिपन

---

१. 'कायस्थ समाचार' दिसम्बर १९०१, एन० डब्लू० पी० १९०१, ४ जनवरी १९०२
२. होम डिपार्टमेंट, एस्टेब्लिशमेंट, प्रोसीडिंग्स, अगस्त १८८०, न० ४४ (ए)
३. होम डिपार्टमेंट, जूडीशियल प्रोसीडिंग्स, सितम्बर १८८२ नं० २२१-३६ (ए)
४. कारमीचल की मिनट, १५ मई १८७२, होम डिपार्टमेंट जुडीशियल, सितम्बर १८८२, न० २२४
५. हब्हस्टोन द्वारा मिनट १६ मई, १८८२, वहीं
६. गवर्नमेंट आफ इंडिया टू दा सेक्रेटरी आफ स्टेट, ६ सितम्बर १८८२, होम डिपार्टमेंट जुडीशियल प्रोसीडिंग्स नं० २३६, सेक्रेटरी आफ स्टेट टू दा गवर्नमेंट आफ इण्डिया, ७ दिसम्बर, १८८२; वही जन० १८८३, नं० २७

का सड़कों और गलियों में खुले रूप से अपमान करना आरम्भ कर दिया। विरोध हेतु एंग्लो-इंडियन तथा यूरोपियनों ने डिफेंस एसोसिएशन और महिलाओं की कमेटी स्थापित की।[1] विरोध प्रदर्शित करने के लिए कलकत्ता टाउन हाल में २८ फरवरी, १८८३ को एक सभा की, जिसमें समस्त ईसाई जाति के प्रतिनिधि उपस्थित हुए। इस सभा में सरकार से अपील की गई कि यूरोपियन बहू-बेटियों की इज्जत बचाई जाये।[2] इसी सभा में भारतीय महिलाओं के चरित्र की आलोचना गन्दे शब्दों में की गई।

यूरोपियनों के इस प्रकार के आन्दोलन को देखकर भारतीयों ने भी इस विधेयक के पक्ष में देश के कोने-कोने से आन्दोलन आरम्भ किये। भारत की समस्त संस्थाओं की ओर से वायसराय को स्मरण-पत्र भेजा गया जिसका एक अंश निम्न प्रकार से है[3]—

"...स्मरण-पत्र भेजने वाले यह विश्वास अनुभव करते हैं कि आप किसी व्यंग्य या धमकी, जो रंग-भेद के कारण है, की अनुमति नहीं देंगे।"

'प्रयाग-समाचार' के अनुसार १ अक्टूबर, १८८३ को कायस्थ पाठशाला इलाहाबाद में एक सभा इल्बर्ट बिल के समर्थन में हुई। इसमें कई हजार व्यक्ति उपस्थित थे।[4]

यद्यपि लार्ड रिपन और उसकी कार्यकारिणी के कुछ सदस्य तथा इंगलैंड की सरकार दृढ़ थी, तथापि अन्त में बिल में संशोधन करके पास किया। यूरोपियन अपराधियों को यह अधिकार दिया गया कि यदि वे चाहें तो जूरी उनके मामले की सुनवाई कर सकती है। इस जूरी मे कम-से-कम आधे सदस्य यूरोपियन या अमेरिकन होंगे।

इस प्रकार के भेद-भाव पूर्ण फैसले से भारतीय मानस-पटल को एक धक्का लगा, चूंकि यह भारतीयों को एक राजनैतिक हार थी। इससे यह भी स्पष्ट था कि भारतीय-न्यायाधीशों पर विश्वास नहीं था। परन्तु इस धक्के से भारतीय शिक्षित वर्ग हताश नहीं हुआ। उसका आन्दोलन निरन्तर चलता रहा जिसने भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस को जन्म दिया।

हिन्दी-पत्रकारिता द्वारा मांग

राजकीय सेवाओं का भारतीयकरण—राजकीय सेवाओं में विशेषतः उच्च पदों पर, जो 'शर्तबन्द' के नाम से प्रसिद्ध हैं, भारतीयों की नियुक्ति के प्रश्न को हिन्दी

---

१. इंगलिश मैन ३० मार्च १८८३
२. सप्लीमेंट टू इण्डियन डेली न्यूज, १ मार्च, १८८३
३ इस मिश्रित स्मरण-पत्र में, ८ मार्च १८८३ (१) दा ब्रिटिश इंडियन एसोसिएशन (२) दा इंडियन एसोसिएशन, (३) मोहम्मडन लिटरेरी सोसाइटी (४) सेन्ट्रल मोहम्मडन एसोसियेशन, (५) ईस्ट बंगाल एसोसियेशन, (६) वकील एसोसिएशन कलकत्ता आदि थीं।
४. प्रयाग समाचार, अक्टूबर, १८८३ एन० डब्लू० पी० एंड पंजाब १८८३, पृ० ८३०

पत्रकारिता ने सदा महत्त्व दिया। यह प्रश्न पत्रकारिता के द्वारा आर्थिक आवश्यकता और रंग-भेद के कारण उठाया गया। यह स्मरणीय है कि १८३३ के चार्टर कानून द्वारा भारतीयों को सब पदों पर नियुक्त करने की बात स्वीकार की गई थी परन्तु सन् १८५३ में जब प्रतिस्पर्द्धी परीक्षाओं का आरम्भ हुआ तो कहा गया था कि उसमें भारतीयों के लिए बड़ी बाधा है। सन् १८५८ में महारानी विक्टोरिया के घोषणा-पत्र में रंग व जाति भेद को प्रशासन में से निकालने का वचन दिया गया, परन्तु ये सब घोषणाएँ केवल कागज पर थी, इन्हें व्यवहार में नहीं लाया गया। विशेषतः १८५७ के पश्चात तो रंग व जाति भेद की नीति अंग्रेजों ने खुले रूप में अपनाई। इस पक्ष-पात पूर्ण नीति को न केवल हिन्दी-पत्रकारिता ने, बल्कि निष्पक्ष एवं ईमानदार अंग्रेज मुनरो ने दुर्भाग्यपूर्ण बताया। उन्होंने कहा, "सम्भवतयः किसी भी जाति मे ऐसा उदाहरण नहीं, जिसमें समस्त देशवासियों को सरकार के प्रशासन में से निकाल दिया गया हो, जैसा ब्रिटिश भारत में हुआ।"[1] अतः उच्च-पदों पर पूर्ण रूप से यूरोपियनों का एकाधिकार था। भारतीयों को इन सेवाओं की प्राप्ति इस कारण से भी नहीं हो रही थी, क्योंकि इन पदों की परीक्षा इंगलैंड में होती थी; जहाँ पर उनका जाना कुछ आर्थिक एवं धार्मिक कारणों से असम्भव था। इन परीक्षाओं मे बैठने के लिए भारतीयों की आयु कम कर दी गई थी। जैसा कि निम्न तालिका से स्पष्ट है :[2]

वर्ष			आयु
१८५८	...	...	१८ से २३
१८६०	...	...	१८ से २२
१८६६	...	...	१७ से २१
१८७७	...	...	१७ से १९
१८८३	...	...	१७½ से १९½
१८९१	...	...	२१ से २३

उपरोक्त तालिका से स्पष्ट हो जाता है कि भारतीयों को जान-बूझकर सरकारी सेवाओं से वंचित रखा गया। १८९१ में एन० डब्ल्यू० पी० मे सरकारी सेवा मे कुल ६४६ भारतीय थे।[3]

पत्रकारिता और अन्य नेताओं के आन्दोलन के कारण अंग्रेजों ने कुछ देने का वचन तो दिया, लेकिन वह केवल मौखिक था। सन् १८६७ मे वायसराय ने घोषणा की, "वायसराय भारतीयों की योग्यता को मानने के लिए तैयार है और उन्हें योग्यता

---

१. एच० एच० डोडविल : दा कम्ब्रैज हिस्ट्री आफ इण्डिया, वोलूम पांच, पृ० ६६७
२. होम डिपार्टमेंट, पब्लिक प्रोसीडिंग्स, मई १८९६ (ए)
३. वही, २६ दिस० न० ६५-६६ (ए)

के आधार पर सहायक आयुक्त और छोटी कचहरियों में जज के रूप में नियुक्त करेगा।"[1]

किन्तु ये घोषणाएँ केवल कागजी छल-कपट थीं, अधिकतर पद यूरोपियनों को दिये जाते और यदि किसी भारतीय की नियुक्ति भी की जाती तो उसे वेतन यूरोपियन की तुलना में कम दिया जाता।

यदि अंग्रेजों से पूर्व के इतिहास पर दृष्टिपात करें तो देखा जाता है कि मुसलमानों के शासन काल में हिन्दू और मुसलमानों को सरकारी सेवा में समान अधिकार थे, परन्तु ब्रिटिश राज्य में भारतीयों के लिए इन सेवाओं के सभी द्वार बन्द कर दिए गए। अतः इस अन्याय पूर्ण नीति के विरुद्ध हिन्दी-पत्रकारिता ने अपना अभियान चलाया और कहा कि शिक्षित भारतीय सभी राजकीय सेवाओं के लिए योग्य हैं। इस आन्दोलन के फलस्वरूप सेक्रेटरी ऑफ स्टेट फॉर इंडिया ने एक योजना सिविल परीक्षा हेतु गवर्नर-जनरल के पास १३ जुलाई, १८७६ को प्रेषित की, जिसमें कहा गया, "दो परीक्षाएँ होंगी—एक मार्च में पुरानी योजना के अन्तर्गत, जिसमें वे सभी छात्र जिनकी आयु १ मार्च को २१ वर्ष हो, बैठ सकते हैं और द्वितीय परीक्षा जुलाई में होगी, जिसमें वे छात्र बैठ सकते है जिनकी आयु १९ वर्ष हो।"[2]

इस अन्याय पूर्ण सरकारी नीति के विरुद्ध हिन्दी-पत्रों ने डटकर प्रचार किया तथा भारतीय जनता को जगाया। 'काशी-पत्रिका' ने कुछ प्रश्न किए : "क्या सिविल सेवा के लिए परीक्षा उत्तीर्ण करने के अतिरिक्त भी कोई गुण है? क्या हजारों भारतीय जो बुद्धि, न्याय, साहस और चरित्र आदि गुणों से परिपूर्ण होने पर भी इसके लिए कुंठित हो गए हैं, जैसे सूर्य के समक्ष मोमबत्ती धुंधली पड जाती है?"[3] जब समाचार-पत्रों ने उपरोक्त ढंग से उद्बोधन किया तो सरकारी सेवाओं के सम्बन्ध में स्थान-स्थान पर सभाएँ आयोजित की गईं। वायसराय एवं ब्रिटिश संसद को स्मृति पत्र प्रस्तुत किए गए।[4]

लार्ड लिटन ने ऊँट के मुंह में जीरा वाली कहावत को चरितार्थ किया। उसने आदेश जारी किया कि भारतीयों को सरकारी सेवा में बिना कानवेंट की परीक्षा उत्तीर्ण किए ही नियुक्त किया जाएगा। यह एक और छः के अनुपात में होगा (अर्थात्

---

१. होम डिपार्टमेंट पब्लिक, प्रोसीडिंग्स, अक्टूबर, १८९७ न० १०५ (ए)
२ वही अगस्त १८७६, न० १९६ (ए)
३. होम डिपार्टमेंट जुडिशियल प्रोसीडिंग्स, जून १८७६, न० ८१३ (ए)
४. प्रोसीडिंग्स आफ दा पब्लिक मीटिंग, आन दा सिविल सर्विस क्वेश्चन' कलकत्ता १८७९ दा फर्स्ट एनुवल रिपोर्ट आफ दा इंडियन एसोसियेशन, १८७६-७७, कलकत्ता, एस०एन० बनर्जी : ए नेशन इन मेकिंग, लदन, १९२५, पृ० ४९-५०, नेटिव ओपीनियन, २ दिसम्बर १८७७; डा० श्रीपाल शर्मा ब्रिटिश शासन के प्रति हिन्दी पत्रो की नीति (लेख) हिन्दी-पत्रकारिता : विविध आयाम पृ० ९२

एक भारतीय और छः यूरोपीयन होंगे) । इस पेशकश का मजाक में धन्यवाद देते हुए 'अवध पंच' ने लिखा, "न केवल मनुष्य बल्कि गधे भी सरकार को इस दया के लिए धन्यवाद दे रहे हैं।"[1] हिन्दी-पत्रों ने भारतीयों को सलाह दी कि वे अपने आन्दोलन को तीव्र करें। अतः 'हिन्दुस्तान' के अनुसार, मायो हाल इलाहाबाद में दिनांक १० मई, १८८४ को एक सभा आयोजित की गई, जिसमें एक स्मृति-पत्र तैयार किया गया गया, इसमे प्रार्थना की गई कि सरकार प्रतियोगिता वाली परीक्षा में बैठने के लिए आयु १६ से २१ वर्ष बढ़ाए। इस सभा में, 'नेशनल-फंड' को बढ़ाने के लिए भी विचार किया गया। इसकी अध्यक्षता मुंशी हनुमान प्रसाद ने की और मुख्य वक्ता सुरेन्द्रनाथ बनर्जी और पंडित अयोध्यानाथ थे।[2] इस प्रकार की सभा लखनऊ में भी आयोजित की गई और एक स्मृति-पत्र तैयार कर, ब्रिटिश भारतीय सरकार के माध्यम से सेक्रेटरी ऑफ स्टेट फॉर इंडिया को प्रेषित किया गया।[3]

परन्तु अधिकारी इस विषय में कुछ करना नहीं चाहते थे। जैसा कि कार्य-वाहक सेक्रेटरी भारत सरकार के पत्र जो सेक्रेटरी एन० डब्ल्यू० पी० तथा अवध को लिखा गया, "अलीगढ़, कानपुर और लखनऊ के निवासियों द्वारा प्रेषित स्मृति-पत्रों को जिनमें सिविल-सर्विस परीक्षा हेतु आयु बढ़ाने का अनुरोध किया गया है, को सरकार तब तक नहीं विचार सकती, जब तक सेक्रेटरी ऑफ स्टेट स्वीकार न कर लें।[4]

दिन-प्रतिदिन यह आन्दोलन तीव्र गति से बढ़ रहा था। इस कार्य को प्रेस चला रही थी। फलतः सरकार ने विवश होकर सिविल-सर्विस कमीशन की नियुक्ति की। इस कमीशन में जनता और सरकारी अधिकारी रखे गये। सरकार के इस कदम को ठीक दिशा मे साहसिक बताया गया।[5]

परन्तु कमीशन भारतीयों के साथ न्याय करेगा या नहीं, इसमें संदेह था। क्योंकि यूरोपियन एवं यूरेशियन का प्रतिनिधित्व तो दस विदेशी कर रहे थे और सारे भारत देश का प्रतिनिधित्व केवल ६ आदमी कर रहे थे।[6] 'हिन्दुस्तान' के अनुसार यह संदेह सत्य सिद्ध हुआ। कमीशन में सिविल-सर्विस परीक्षा की आयु १६

---

१. अवध पंच २७ जन० १८८०, रिपोर्ट आन नेटिव न्यूज पेपर्स एन० डब्लू० एंड पंजाब १८८०, पृ० ७५-७६
२. हिन्दुस्तान, १४ मई, १८८४ वही १८८४, पृ० ३५३
३. वही, पृ० ४३४
४. होम डिपार्टमेंट पब्लिक, मार्च १८८५, नं० १६५-१७१ (ए)
५. कमीशन में सर चार्ल्स एचीसन (अध्यक्ष) सर चार्ल्स टर्नर, रायबहादुर के० एल० नलकर, क्रोस्थवाहाइट, स्टोक्स, डी० एस० व्हाइट, रैवलैंड, स्टेवर्ड, श्रीमान आर० सी० मित्रा, श्रीमान क्विंटन, मि० एफ० बी० पीकोक, राजा उदयप्रताप सिंह, सर सैयद अहमदखाँ, मि० डब्लू० बी० हडसन, काजी शाहाबुद्दीन, मि० रामास्वामी मुदलियार।
६. भारत-जीवन, १ नवम्बर १८८६, माइक्रोफिल्म, एन० एम० एम० तथा पुस्तकालय नई दिल्ली।

से बढ़ाकर २३ वर्ष की। इस छोटे से फल का श्रेय भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस को जाता है।[1]

हिन्दी पत्र-पत्रिकाओ ने यह मांग भी रखी कि यह परीक्षा भारत और इंगलैंड दोनों में एक साथ होनी चाहिए। इस सम्बन्ध में ब्रिटिश संसद में हर्बर्टपाल और दादाभाई नौरोजी ने भी प्रस्ताव रखे। पत्रकारिता ने भारतीयो से उनके हाथ मजबूत करने के लिए अपील की। अत: देश के कोने-कोने मे सभाओं का आयोजन किया गया। उदाहरणार्थ १४ जुलाई, १८६३ को बनारस मे एक सभा हुई, जिसमें स्मृति-पत्र तैयार किया गया कि ये परीक्षाएँ दोनों देशों मे एक साथ होनी चाहिए।[2] इसी प्रकार का स्मृति-पत्र लखनऊ से भी भेजा गया।[3] अत: इंगलैंड की संसद ने विवश होकर इस परीक्षा को दोनों देशों में कराने का विधेयक पारित किया।[4]

परन्तु सर सैयद अहमद खाँ के समर्थक 'आजाद', 'अलीगढ़ इंस्टीट्यूट गजट' और 'दोस्त-ए-हिन्द' आदि समाचार पत्रों और एंग्लो-इंडियन पत्र 'पायनियर' ने इस कदम का घोर विरोध किया। 'अलीगढ़ इंस्टीट्यूट' गजट ने परीक्षा प्रश्न पर प्रकाश डालते हुए लिखा, "हमारे विचार से सिविल-सर्विस परीक्षा दोनों देशों मे कराना सरकार के प्रशासन में सबसे बड़ी बाधा है, जो सरकार के हित में नहीं है।"[5] एंग्लो-इंडियन पत्र 'पायनियर' ने मुसलमानों को इस के विरुद्ध भड़काने में कोई कसर नही रखी।[6] एन० डब्ल्यू० पी० तथा अवध के चीफ सेक्रेटरी के अनुसार भी पीरक्षाएँ ईमानदारी से नहीं हो सकती और मौखिक परीक्षा लेने मे कठिनाई का सामना करना पड़ेगा।[7] अत: भारत सरकार ने प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया और इस पर 'आजाद' पत्र ने सन्तोष प्रकट किया।[8] प्रस्ताव को सेक्रेटरी फॉर स्टेट ने भी अस्वीकार कर दिया।

यद्यपि अस्वीकृति से राष्ट्रीय भावनाओं को ठेस पहुँची, तथापि सिविल-सर्विस परीक्षा आन्दोलन अपनी निरन्तर गति से अग्रसर होता रहा। इस विषय में कालाकांकर मे दिनाक ३० जून, १८६४ में 'देशोपकार सभा' हुई, जिसमें सेक्रेटरी फॉर

---

१. 'हिन्दोस्तान' १५ मार्च १८८८ रिपोर्ट आन नेटिव न्यूज पेपर्स: एन० डब्लू० पी० एंड पंजाब १८८८, पृ० २००
२. होम डिपार्टमेंट पब्लिक प्रोसीडिंग्स, अक्टूबर १८६३, नं० २११-२२२ (बी)
३. वही
४. वही अगस्त, १८६३, न० ३२५-२६ (ए)
५. अलीगढ़ इस्टीट्यूट गजट १३ जून १८६३ माइक्रोफिल्म नेहरू मेमोरियल एंड लायब्रेरी, नई दिल्ली।
६. रिपोर्ट आन नेटिव न्यूज पेपर्स : पंजाब, १८६३, पृ० ४२६
७ होम डिपार्टमेंट पब्लिक प्रोसीडिंग्स, नवम्बर १८६३, न० ५६-७० (ए)
८. आजाद १ जून १८६४ रिपोर्ट आन नेटिव न्यूजपेपर्स : एन० डब्लू० पी० १८६४, पृ० २३५

एक भारतीय और छः यूरोपीयन होंगे) । इस पेशकश का मजाक में धन्यवाद देते हुए 'अवध पंच' ने लिखा, "न केवल मनुष्य बल्कि गधे भी सरकार को इस दया के लिए धन्यवाद दे रहे हैं।"[१] हिन्दी-पत्रों ने भारतीयों को सलाह दी कि वे अपने आन्दोलन को तीव्र करें। अतः 'हिन्दुस्तान' के अनुसार, माओ हाल इलाहाबाद में दिनांक १० मई, १८८४ को एक सभा आयोजित की गई, जिसमें एक स्मृति-पत्र तैयार किया गया गया, इसमें प्रार्थना की गई कि सरकार प्रतियोगिता वाली परीक्षा में बैठने के लिए आयु १९ से २१ वर्ष बढाए। इस सभा में, 'नेशनल-फंड' को बढ़ाने के लिए भी विचार किया गया। इसकी अध्यक्षता मुंशी हनुमान प्रसाद ने की और मुख्य वक्ता सुरेन्द्रनाथ बनर्जी और पंडित अयोध्यानाथ थे।[२] इस प्रकार की सभा लखनऊ में भी आयोजित की गई और एक स्मृति-पत्र तैयार कर, ब्रिटिश भारतीय सरकार के माध्यम से सेक्रेटरी ऑफ स्टेट फॉर इंडिया को प्रेषित किया गया।[३]

परन्तु अधिकारी इस विषय में कुछ करना नहीं चाहते थे। जैसा कि कार्य-वाहक सेक्रेटरी भारत सरकार के पत्र जो सेक्रेटरी एन० डब्ल्यू० पी० तथा अवध को लिखा गया, "अलीगढ़, कानपुर और लखनऊ के निवासियों द्वारा प्रेषित स्मृति-पत्रों को जिनमें सिविल-सर्विस परीक्षा हेतु आयु बढाने का अनुरोध किया गया है, को सरकार तब तक नहीं विचार सकती, जब तक सेक्रेटरी ऑफ स्टेट स्वीकार न कर लें।[४]

दिन-प्रतिदिन यह आन्दोलन तीव्र गति से बढ रहा था। इस कार्य को प्रेस चला रही थी। फलतः सरकार ने विवश होकर सिविल-सर्विस कमीशन की नियुक्ति की। इस कमीशन में जनता और सरकारी अधिकारी रखे गये। सरकार के इस कदम को ठीक दिशा में साहसिक बताया गया।[५]

परन्तु कमीशन भारतीयों के साथ न्याय करेगा या नहीं, इसमें संदेह था। क्योंकि यूरोपियन एवं यूरेशियन का प्रतिनिधित्व तो दस विदेशी कर रहे थे और सारे भारत देश का प्रतिनिधित्व केवल ६ आदमी कर रहे थे।[६] 'हिन्दुस्तान' के अनुसार यह संदेह सत्य सिद्ध हुआ। कमीशन में सिविल-सर्विस परीक्षा की आयु १९

---

१. अवध पंच २७ जन० १८८०, रिपोर्ट आन नेटिव न्यूज पेपर्स एन० डब्लू० एंड पंजाब १८८०, पृ० ७५-७६

२. हिन्दुस्तान, १४ मई, १८८४ वही १८८४, पृ० ३२२

३. वही, पृ० ४३४

४. होम डिपार्टमेंट पब्लिक, मार्च १८८५, न० १६५-१७१ (ए)

५. कमीशन में सर चार्ल्स एचीसन (अध्यक्ष) सर चार्ल्स टर्नर, रायबहादुर के० एल० नलकर, कोस्यवाहाइट, स्टोकस. डी० एस० वाहाइट, रैंवसैंड, स्टेवर्ड, श्रीमान आर० सी० मित्रा, श्रीमान फुरंटन, मि० एफ० बी० पीकोक, राजा उदयप्रताप सिंह, सर सैयद अहमदखाँ, मि० डब्लू० बी० हडसन, काजी शाहाबुद्दीन, मि० रामास्वामी मुदलियार।

६. भारत-जीवन, १ नवम्बर १८८६, माइक्रोफिल्म, एन० एम० एम० तथा पुस्तकालय नई दिल्ली।

से बढ़ाकर २३ वर्ष की। इस छोटे से फल का श्रेय भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस को जाता है।[१]

हिन्दी पत्र-पत्रिकाओं ने यह मांग भी रखी कि यह परीक्षा भारत और इंगलैंड दोनों में एक साथ होनी चाहिए। इस सम्बन्ध में ब्रिटिश संसद में हर्बर्टपाल और दादाभाई नौरोजी ने भी प्रस्ताव रखे। पत्रकारिता ने भारतीयों से उनके हाथ मजबूत करने के लिए अपील की। अतः देश के कोने-कोने में सभाओं का आयोजन किया गया। उदाहरणार्थ १४ जुलाई, १८९३ को बनारस में एक सभा हुई, जिसमें स्मृति-पत्र तैयार किया गया कि ये परीक्षाएँ दोनों देशों में एक साथ होनी चाहिए।[२] इसी प्रकार का स्मृति-पत्र लखनऊ से भी भेजा गया।[३] अतः इंगलैंड की संसद ने विवश होकर इस परीक्षा को दोनों देशों में कराने का विधेयक पारित किया।[४]

परन्तु सर सैयद अहमद खाँ के समर्थक 'आजाद', 'अलीगढ़ इंस्टीट्यूट गजट' और 'दोस्त-ए-हिन्द' आदि समाचार पत्रों और एंग्लो-इंडियन पत्र 'पायनियर' ने इस कदम का घोर विरोध किया। 'अलीगढ़ इंस्टीट्यूट' गजट ने परीक्षा प्रश्न पर प्रकाश डालते हुए लिखा, "हमारे विचार से सिविल-सर्विस परीक्षा दोनों देशों मे कराना सरकार के प्रशासन में सबसे बड़ी बाधा है, जो सरकार के हित में नहीं है।"[५] एंग्लो-इंडियन पत्र 'पायनियर' ने मुसलमानों को इस के विरुद्ध भड़काने में कोई कसर नहीं रखी।[६] एन० डब्ल्यू० पी० तथा अवध के चीफ सेक्रेटरी के अनुसार भी पीरक्षाएँ ईमानदारी से नहीं हो सकतीं और मौखिक परीक्षा लेने में कठिनाई का सामना करना पड़ेगा।[७] अतः भारत सरकार ने प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया और इस पर 'आजाद' पत्र ने सन्तोप प्रकट किया।[८] प्रस्ताव को सेक्रेटरी फॉर स्टेट ने भी अस्वीकार कर दिया।

यद्यपि अस्वीकृति से राष्ट्रीय भावनाओं को ठेस पहुँची, तथापि सिविल-सर्विस परीक्षा आन्दोलन अपनी निरन्तर गति से अग्रसर होता रहा। इस विषय मे कालाकाकर में दिनाक ३० जून, १८९४ में 'देशोपकार सभा' हुई, जिसमे सेक्रेटरी फॉर

---

१. 'हिन्दोस्तान' १५ मार्च १८८८ रिपोर्ट ग्रान नेटिव न्यूज पेपर्स: एन० डब्लू० पी० एड पजाब १८८८, पृ० २००
२. होम डिपार्टमेंट पब्लिक प्रोसीडिंग्स, अक्टूबर १८९३, नं० २११-२२२ (बी)
३. वही
४. वही अगस्त, १८९३, न० ३२५-२६ (ए)
५. अलीगढ़ इस्टीट्यूट गजट १३ जून १८९३ माइक्रोफिल्म नेहरू मैमोरियल एंड लायब्रेरी, नई दिल्ली।
६. रिपोर्ट आन नेटिव न्यूज पेपर्स : पंजाब, १८९३, पृ० ४२९
७ होम डिपार्टमेंट पब्लिक प्रोसीडिंग्स, नवम्बर १८९३, न० ५९-७० (ए)
८. आजाद १ जून १८९४ रिपोर्ट आन नेटिव न्यूजपेपर्स : एन० डब्लू० पी० १८९४, पृ० २३५

स्टेट के निर्णय की कटु आलोचना की गई और एक स्मृति-पत्र तैयार किया गया। अन्य संगठनों से प्रार्थना की गई कि वे 'पूना सार्वजनिक सभा' जिसने इस विषय मे पहल की है, का अनुकरण करें।[1] 'भारत-जीवन' ने प्रस्ताव की अस्वीकृति का कड़े शब्दो में विरोध करते हुए कहा, "शासक और शासित मे समानता नही हो सकती। इसका प्रमाण सेक्रेटरी फॉर स्टेट की अस्वीकृति से स्पष्ट हो जाता है।"[2] एक विरोध सभा दिनांक २७ सितम्बर, १८६४ में वकील राधाकृष्ण की अध्यक्षता में आयोजित की गई। इसमें मुख्य वक्ता-पंडित मदन मोहन मालवीय और राजा रामपाल सिंह थे। सभा मे सिविल-सर्विस परीक्षा के समर्थन मे प्रस्ताव सर्व-सम्मति से पारित किया गया।[3] इस प्रकार की विरोध सभा प्रदेश के अन्य शहरों – मेरठ और मथुरा आदि में भी आयोजित की गई और मुख्य प्रवक्ता मालवीय जी और राजा रामपाल सिंह ही थे, जिन्होंने खुले रूप से अस्वीकृति का विरोध किया।[4]

लेजिस्लेटिव कांसिल में भारतीय प्रतिनिधित्व की मांग—सरकारी सेवा के अतिरिक्त हिन्दी पत्रिकारिता ने लेजिस्लेटिव कांसिल मे भारतीय प्रतिनिधित्व की मांग भी सरकार के सामने रखी और इसके लिए जनता में जागरण उत्पन्न किया। क्योंकि १८५८ के पश्चात् बनने वाले संवैधानिक ढांचे मे भारतीय अपना उचित स्थान नही पा रहे थे। अतः समाचार-पत्रों ने भारतीय प्रतिनिधित्व की माग रखी ताकि भारतीय अपने कष्टो से ब्रिटिश सरकार और उसके अधिकारियो को अवगत करा सकें। इस आन्दोलन के फलस्वरूप वायसराय ने सर सैयद अहमद खां और राजा शिवप्रसाद 'सितारे हिन्द' को लेजिस्लेटिव कांसिल मे मनोनीत किया। लेकिन ये दोनों व्यक्ति सरकारी नीतियो के समर्थक थे और भारतीयों के हित मे कुछ कर पाने मे वे असमर्थ सिद्ध हुए। 'कवि वचन सुधा' एवं 'काशी पत्रिका' ने राजा शिवप्रसाद और सर सैयद अहमद खां की डके की चोट पर आलोचना की, चूंकि उन दोनों ने सन् १८७८ के प्रेस कानून का समर्थन किया, जो कि भारतीय प्रेस का गला घोंट था।[5] पत्र-पत्रिकाओं के आदोलनों के कारण उत्तर प्रदेश के विभिन्न स्थानो पर सभाएँ की गईं।[6] हिन्दोस्तान ने लिखा, "सम्पूर्ण भारत प्रतिनिधित्व की मांग करता है तथा आशा करता

---

१. हिन्दुस्तान, ४ जुलाई, १८६४, रिपोर्ट आन नेटिव न्यूज पेपर्स : एन० डब्लू० पी १८६४, पृ० २८६
२. भारत-जीवन, ११ जून, १८६४, माइक्रोफिल्म, नेहरू मेमोरियल म्यूजियम एण्ड लाइब्रेरी नई दिल्ली।
३. होम डिपार्टमेंट पब्लिक प्रोसीडिंग्स, जन० १८८५, न० ३१२-२१ (ए)
४. हिन्दुस्तान, ५ अक्टूबर, १८६४ रि० आन० ने० न्यू० एन० डब्लू० पी० १८६४, पृ० ४३४
५. कविवचन सुधा व काशी पत्रिका, दिसम्बर १८८२, रिपोर्ट आन नेटिव न्यूजपेपर्स : एन० डब्लू० पी० एंड पंजाब १८८२, पृ० ७४४
६. हिन्दोस्तान २४ मई, एव प्रयाग समाचार २८ मई १८८७ वही १८८७, पृ० ३२७

है कि ब्रिटिश सरकार अवश्य ही इस मांग को मानकर भारतीयों को आभारी करेगी।"[1] अतः लैंसडाउन ने आंदोलन के प्रभाव को परख कर सेक्रेटरी ऑफ स्टेट फॉर इंडिया को सुझाव दिया कि लेजिस्लेटिव कांसिल के ढाचे मे सुधार किया जाए।[2] आन्दोलन के फलस्वरूप, इंडियन एक्ट १८९२ पास किया, जिसमे भारतीयों की संख्या ६ से बढा कर १० कर दी गई और उन्हे बजट पर बोलने का अधिकार दिया गया।[3] अतः कांग्रेस समर्थक 'हिन्दोस्तान' ने कहा "कांग्रेस के अथक प्रयासों के लिए वह धन्यवाद की पात्र है।"[4]

प्रांतीय लेजिस्लेटिव कांसिल की मांग : साथ-ही-साथ हिन्दी पत्र-पत्रिकाओ ने उत्तर प्रदेश में प्रांतीय लेजिस्लेटिव कांसिल की स्थापना के लिए मांग करनी आरम्भ की ताकि इस प्रान्त की समस्याओ को सरकार के कानों में डाला जाए। 'आर्यमित्र' ने कहा कि यदि बम्बई, कलकत्ता और मद्रास सरीखी लेजिस्लेटिव कांसिल इस प्रांत में स्थापित की जाएं तो लैफ्टीनेंट गवर्नर को प्रशासन कुशलतापूर्वक चलाने में सहयोग मिलेगा।[5] इस मांग को न केवल भारतीय पत्रों ने उठाया बल्कि उदारवादी ब्रिटिश संसद सदस्य विलियम हरकोर्ट ने भी उठाया।[6] प्रेस ने यह मांग भी की कि यदि उत्तर प्रदेश में लेजिस्लेटिव कांसिल की स्थापना हो गई तो इसके सदस्यों को मनोनीत नही किया जाय, बल्कि चुनाव द्वारा लाया जाये। यदि राजा-महाराजाओं को मनोनीत किया गया, तो कासिल निष्क्रिय हो जाएगी।[7] 'प्रयाग समाचार' ने प्रार्थना की कि कांसिल के सदस्यों का चुनाव सामान्य जनता की इच्छानुसार होना चाहिए।[8] अतः हिन्दी पत्रकारिता और तत्कालीन नेताओं के प्रयास से उत्तर प्रदेश में प्रांतीय लेजिस्लेटिव कासिल की स्थापना हो गई। 'हिन्दी-प्रदीप' के अनुसार एसोशिएशन ने कांसिल की स्थापना के लिए वायसराय का धन्यवाद देते हुए सुझाव दिया कि इसमें भारतीयों का प्रतिनिधित्व होना चाहिए, क्योंकि यूरोपीय लोग इस प्रान्त के सामान्य मनुष्यो के विचार, भावना, प्रथा एवं आर्थिक दशा से अवगत नही।

ब्रिटिश संसद में भारतीय प्रतिनिधित्व की मांग : हिन्दी-पत्रकारिता की मांग का क्षेत्र यहीं सीमित नही रहा, बल्कि उसने ब्रिटिश संसद में भारतीय प्रतिनिधि

---

१. हिन्दोस्तान, ३१ मई १८८७ वही १८८७, पृ० ३३६
२. लैंसडाउन टू नार्थब्रुक, ११ जन० १८८९ लैंसडाउन कोरसपोंडेंस माइक्रोफिल्म नेहरू मैमोरियल म्यूजियम एण्ड लाइब्रेरी, नई दिल्ली।
३. होम डिपार्टमेंट पब्लिक प्रोसीडिंग्स १८९६ न० १८२
४. हिन्दोस्तान २७ अप्रैल १८९२ रि० आर० ने न्यू० एन० डब्लू० पी० १८९२, पृ० १५३
५. आर्यमित्र, २४ जन० १८७९; वही, १८७९, पृ० ७१
६. हंसार्ड्स् पार्लियामेंट डिबेट, मई से जून १८७९ पृ० ८५
७. भारत-बंधु २३ जुलाई १८८६, रिपोर्ट आन नेटिव न्यूजपेपर्स एन० डब्लू० पी० एंड पंजाब १८८६, पृ० ५४६
८. प्रयाग समाचार अगस्त १८८६, वही, पृ० ६४६

की मांग भी की और उसके लिए संघर्ष किया ताकि ब्रिटिश संसद और इंगलैंड की जनता को यह ज्ञात हो जाए कि भारत किन-किन समस्याओं से जूझ रहा है। यह दुखद बात थी कि लार्ड डिजरैली, जिसने वचन दिया था कि महारानी विक्टोरिया को भारत की महारानी की उपाधि मिलने के पश्चात् भारत को उचित प्रतिनिधित्व प्रदान किया जाएगा, परन्तु वह अपना वचन पूरा करने में असफल रहा। 'हिन्दोस्तान' ने भारतीयों को आंदोलित किया और कहा कि अंग्रेज जो लंदन में बैठे भारत में राज कर रहे हैं, भारत की आर्थिक दुर्दशा को नही समझ सकते। अत. आप स्वयं आंदोलन करो और ब्रिटिश संसद मे प्रवेश लो।[1] समाचार-पत्रों के निरन्तर भयंकर संघर्ष के पश्चात् दादा भाई नौरोजी को सन १८८६ में ब्रिटिश संसद मे सदस्यता प्राप्त हुई। पत्रकारिता के क्षेत्र में इस शुभ समाचार को सुनकर प्रसन्नता की लहर दौड़ गई।[2] लेकिन यह माग निरन्तर चलती रही ताकि और अधिक लोगों को प्रतिनिधित्व मिले।

सन् १८५७ के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम के असफल होने के पश्चात् भारतीय पत्रकारिता, विशेषतः हिन्दी पत्रकारिता ने धीरे-धीरे भारतीय मानस-पटल पर यह छाप डालनी आरम्भ की कि राष्ट्रीय स्तर पर कोई राजनैतिक संगठन बनाया जाये। अत: प्रेस के आन्दोलन एव बुद्धिजीवियो के प्रयत्नो से दिसम्बर सन् १८८५ मे भारतीय राष्ट्रीय काग्रेस की स्थापना की गई। शायद सन् १८५७ के पश्चात् यह राजनैतिक विकास की प्रथम आधार शिला थी।[3] इसकी स्थापना ने विविध राजर्नतिक गति-विधियों को जन्म दिया। उनमें कुछ इसके समर्थन में और कुछ विरोध में खडी हुईं। इन दोनो गतिविधियों को हिन्दी पत्र-पत्रिकाओ ने प्रकाशित किया। अत: भारतीय प्रेस भी पक्ष-विपक्ष के भंवर मे पड़कर विभाजित हो गया। यह विभाजन काग्रेस समर्थक प्रेस, सरकार-समर्थक प्रेस और एंग्लो-इण्डियन प्रेस आदि वर्गों मे बँट गया।

कांग्रेस-समर्थक प्रेस ने काग्रेस और उसके राष्ट्रीय नेताओं की नीतियो को प्रकाशित करके जनता तक पहुँचाया और आह्वान किया कि अधिक-से-अधिक लोग कांग्रेस के सदस्य बनें और उसको स्वेच्छा से धन देकर मजबूत बनायें। काग्रेस के कट्टर विरोधी सर सैयद अहमद खाँ और उसके साथियो को काग्रेस के उद्देश्य समझाते हुए इसमें सम्मिलित होने के लिए निमंत्रित किया।[4] 'हिन्दी-प्रदीप' ने अपने एक लेख में लिखा, "कुछ लोग काग्रेस का विरोध इसलिए कर रहे हैं ताकि उन्हें सरकार उपाधियों से विभूषित करें।"[5] 'कायस्थ-शुभचिंतक' ने इलाहाबाद काग्रेस की उपस्थिति पाँच

---

१. हिंदोस्तान, २० जुन, १८८४, वही, १८८४, पृ० ४३८
२. हिंदोस्तान, १३ जुलाई व धर्म जीवन, १७ जुलाई १८६२, वही, १८६२, पृ० २५६
३. एस० आर० मेहरोत्रा, दा इमरजेंस आफ दा इण्डियन नेशनल कांग्रेस (दिल्ली १६७१) तथा डा० सुधीरचन्द्र, डिपेन्डेन्स एण्ड डिलूजमेंट, इमरजेंस आफ नेशनल कानशियसनेस इन लेटर नाइटींथ सेंचुरी इन इण्डिया, (नई दिल्ली १६७५).
४. भारत जीवन, ३० अप्रैल १८८६ माइक्रोफिल्म, नेहरू लाइब्रेरी, नई दिल्ली।
५. 'हिन्दी प्रदीप' जून १८८८, रि० आ० ने० न्यू० : एन० डब्लू०पी०, एण्ड पंजाब १८८८, पृ० ३८१

हजार बताते हुए अपील की कि कांग्रेस को धन देकर मजबूत बनाएँ।[1] फलत: धीरे-धीरे इसकी सदस्य संख्या बढ़ती गई। पाँचवी राष्ट्रीय कांग्रेस का खुला अधिवेशन बम्बई में सन् १८८९ को हुआ, जिसमे २००० प्रतिनिधियो ने भाग लिया। इसमे ३०० मुसलमान भी उपस्थित हुए।[2] इस प्रकार कांग्रेस का प्रभाव-क्षेत्र देश-विदेश में दिन-प्रतिदिन और वर्ष-प्रति वर्ष बढ़ता चला गया और सन् १८९६ के वार्षिक अधिवेशन मे उपस्थिति ७००० तक पहुँच गई।[3] इस अधिवेशन में कांग्रेस ने भारत मे ब्रिटिश सरकार की नीतियों का घोर विरोध किया।[4] परन्तु कांग्रेस के नेताओ में सैद्धातिक मतभेद आरम्भ हो गये और कांग्रेस उदार व उग्रवादी दो गुटो मे विभाजित हो गई। उग्रवादी उदारवादियों की प्रार्थना और भीख माँगने वाली नीति के समर्थक नही थे। अत: सन् १९०० के लगभग, कांग्रेस के विभाजन के फलस्वरूप हिन्दी-पत्रकारिता भी विभाजित हो गई।

आर्थिक शोषण

अंग्रेज यहाँ पर व्यापार करने हेतु आया और उसने धीरे-धीरे भारतीय आर्थिक ढाँचे को तोड़-मरोड़कर रख दिया, ताकि उसके माल की खपत भारत मे सरलता से हो सके। उसने खुले व्यापार की नीति को अपनाया, ताकि भारतीय उद्योग-धन्धे सदैव के लिए काल के गाल में जाकर वापिस न आयें।

इंग्लैंड की महारानी ने १८५८ की घोषणा में अन्य बातों के अतिरिक्त भारत के आर्थिक विकास और भारतीय जनता के कल्याण पर विशेष जोर दिया था। इस दिशा मे ब्रिटिश प्रशासकों ने कुछ कदम उठाये, किन्तु उन से घोषणा के लक्ष्य प्राप्त नही हो सकें। सरकार की कार्यवाहियो का उद्देश्य इग्लैंड के औद्योगिक और व्यावसायिक हितों को पूरा करना था। उन्नीसवी शताब्दी के उत्तरार्द्ध में रेलवे, सड़कें, टेलीग्राफ के निर्माण तथा कारखानों की स्थापना आदि पर अंग्रेजी कम्पनियो का स्वामित्व था। अत: उन्होंने एक के बाद एक उद्योग का गला-घोंटना आरम्भ कर दिया। कांग्रेस के नवें अधिवेशन में (१८९३) पं० मदनमोहन मालवीय ने अपने भाषण मे कहा—[5]

"आपके जुलाहे कहाँ? वे लोग कहाँ हैं, जिनका निर्वाह भिन्न-भिन्न उद्योग-धन्धों एवं कारीगरियों से होता था? और जो माल साल-दर-साल बड़ी-बड़ी तादाद मे इंग्लैंड तथा यूरोपीय देशो को भेजे जाते थे; वे कहाँ चले गये? यह सब भूतकाल की बातें हो गईं। आज तो यहाँ बैठा हुआ प्रत्येक व्यक्ति ब्रिटेन के बने कपड़ों

१. 'कायस्थ शुभचिन्तक' ३० सितम्बर, १८८९, वही, १८८९, पृ० ६१८
२. हिन्दोस्तान (कालाकाकर) २५ जन० १८८९, वही, १८८९, पृ० १५
३. हिन्दुस्तान (लखनऊ), १ जन० १८९६, वही, १८९६, पृ० ७
४. होम डिपार्टमेंट पब्लिक प्रोसीडिंग्स, जून, १९०४, नं० ७
५. डा० बी० पट्टाभिसीतारमय्या, कांग्रेस का इतिहास (दिल्ली १९१५), पृ० ३६

से ढँका हुआ है और जहाँ भी कहीं आप जाएँ, सब जगह विलायती-ही-विलायती माल आपको दिखाई देगा। लोगों के पास सिवाय इसके कोई चारा नहीं रहा है कि खेती-बाड़ी के द्वारा वे अपना गुजारा करें, या जो नाम-मात्र का व्यापार बाकी रहा है, उससे टका-धेला पैदा कर लें। सरकारी नौकरियों और व्यापार में पचास साल पहले हमें जो-कुछ मिलता था, अब उसका सौवा हिस्सा भी हमारे देशवासियों को नसीब नहीं होता। ऐसी हालत में भला देश कैसे सुखी हो सकता है ?"

व्यापार के अतिरिक्त ब्रिटिश प्रशासक भारतीय गरीब जनता पर नये-नये कर; आयकर, लाइसेंस कर, नमक कर और स्थानीय कर लगाकर शोषण कर रहे थे। अतः भारतीय प्रेस विशेषतः हिन्दी पत्र-पत्रिकाओं ने ब्रिटिश सरकार की शोषणात्मक नीति को प्रकाशित करते हुए विरोध किया और जनता के आर्थिक असन्तोष को तर्कपूर्ण ढंग से प्रकाशित किया, चूँकि भारतीय गरीब होते जा रहे थे। हिन्दी पत्रकारों की निर्भीक लेखन-शैली और भी चमक उठी। उनमें पर्याप्त साहस था और उस साहस का उपयोग वे बे-पैर की बातें करने में नष्ट न करते थे वरन् वे दिन-प्रतिदिन की देश-विदेश सम्बन्धी समस्याओं के विवेचन में उसका उपयोग करते थे "अकाल, महामारी, टैक्स, किसानों की निर्धनता, स्वदेशी आदि पर उन्होंने सीधे सरल ढंग से निबन्ध और कवितायें लिखी।"[1] वे शोषण को समाप्त करने के लिए प्रार्थना करते तो उन पर प्रशासक ध्यान नहीं देते। शिकायतें निरन्तर की जा रही थीं, चूँकि भारतीय गरीबी की चरम सीमा को पार कर चुके थे।[2]

भारत में ब्रिटिश अधिकारियों ने सेक्रेटरी ऑफ स्टेट फॉर इण्डिया के सामने आयकर को बढ़ाने का प्रस्ताव रखा और साथ-ही-साथ लेजिस्लेटिव कांसिल में इस विषय पर एक विधेयक भी लाया गया, जिस पर बोलते हुए सर आक्लैंड कालविन ने बर्मा-युद्ध होने के कारण आयकर को लगाना आवश्यक बताया।[3] जबकि भारतीय पहले से ही गरीबी के बोझ से कराह रहे थे। 'अवध पंच' ने एक तस्वीर छापी जिसमें भारत को एक चिड़िया के रूप में दिखाया गया, जिसे आयकर रूपी तीर से वायसराय की कांसिल में कत्ल किया गया।[4] अतः यह खेदनीय विषय था कि इंग्लैंड में सरकार बिना संसद की स्वीकृति के कोई कर नहीं लगा सकती थी, परन्तु ब्रिटिश भारतीय सरकार निरन्तर आर्थिक बोझा भारतीय गरीब जनता पर थोपती जा रही थी। जबकि घाटे की व्यवस्था को उच्च प्रशासनिक अधिकारियों, जो अधिक वेतन ले रहे थे, उनका वेतन कम करके पूरी की जा सकती थी। एक डिवीजनल कमिश्नर का वेतन तत्कालीन जर्मनी

---

१. डा० रामविलास शर्मा : भारतेन्दु युग, पृ० ४१
२. हरिश्चन्द्र मैगजीन : मई, १८७४—रि० मा० नै० न्यू०, एन० डब्लू० पी० एण्ड पंजाब १८७४, पृ० २०२
३. हिन्दुस्तान, ८ जन०, १८८१, वही, १८८६, पृ० २५
४. अवध पंच, २५ मार्च, १८८६, वही, १८८६ पृ० १५५

के प्रधानमंत्री से अधिक होता था। लेकिन भारतीयों की दर्द भरी आवाज को कौन सुनने वाला था ? एंग्लो-इण्डियन अधिकारी कान बन्द करे बैठे थे।[1]

सन् १८५७ के पश्चात आर्थिक शोषण निरन्तर तीव्र-गति से बढ़ रहा था। लायसेंस कर शोषण का एक दूसरा ढंग था। अतः प्रदेश की हिन्दी पत्र-पत्रिकाओं ने इसके विरुद्ध भी अभियान आरम्भ किया। चूंकि निर्धन छोटे व्यापारी जो परिश्रम करते थे और अपने परिवार का पालन-पोषण करते, वे इस कर को चुकाने में असमर्थ थे। 'कवि-वचन-सुधा' ने इसे आयकर के दादा से सम्बोधित किया।[2]

कष्ट का एक अन्य स्रोत, जिसकी भारतीयों ने निंदा की, वह था नमक कर। लेजिस्लेटिव कांसिल ने इस सम्बन्ध मे एक विधेयक ३१ दिसम्बर, १८५९ को पास किया। जिसके अन्तर्गत, "गवर्नर जनरल को अधिकार दिया गया कि वह नार्थ वैस्टर्न प्रोविंसिज में नमक कर लगा सकता है और उसकी शुल्क दर को बढ़ा भी सकता है।"[3] 'हिन्दोस्तान' में नमक शुल्क की बढ़ोतरी के विषय में कहा, "नमक शुल्क रुपये से बढ़ाकर दो रुपये आठ आने करना अन्याय है और ब्रिटिश शासन से पूर्व के समय को स्मरण कराया जब, नमक बहुत सस्ता था और जीवन की इस आवश्यक वस्तु पर कोई शुल्क न था।"[4] इस प्रकार हिन्दी-पत्रों द्वारा नमक शुल्क की कटु-आलोचना की गयी।

कीमती प्रशासन भी एक अन्य कारण था, जिस के द्वारा भारतीय धन इंग्लैंड जा रहा था। भारतीय प्रशासन में एंग्लो-भारतीय अधिकारी ऊंचा वेतन प्राप्त करके धनवान बन रहे थे। 'अलमोड़ा अखबार' के अनुसार, जो यूरोपियन अधिकारी अपने देश में ५००० से ६००० रुपये प्रतिवर्ष कमाते थे, वे भारत में ३००० से ४००० रुपये प्रति मास प्राप्त करते थे। अतः इस प्रकार के बहुमूल्य प्रशासन में भारत की उन्नति सम्भव नहीं थी।[5] इस प्रकार से भारत को आर्थिक दृष्टिकोण से खुले रूप में तथा कानून की आड़ लेकर लूटा जा रहा था। इंग्लैंड जो छोटा-सा देश है, वह धनी बनता जा रहा था और विशाल भारत दिन-प्रतिदिन निर्धन होता जा रहा था।

स्वदेशी आन्दोलन—इस आर्थिक शोषण के विरुद्ध हिन्दी पत्रकारिता ने भारतीय जन-जागरण में अपना सक्रिय सहयोग देकर राष्ट्रीय राजनैतिक धारा को

---

१. हिन्दुस्तान, २ अप्रैल, १९०२, रिपोर्ट आन नेटिव न्यूज पेपर्स, एन० डब्लू० पी० १९०२, पृ० २९७
२. कविवचन सुधा : जुलाई, १८७७ रिपोर्ट आन नेटिव न्यूज पेपर्स, एन० डब्लू० पी० एण्ड पंजाब १८७७, पृ० ५१७
३. होम डिपार्टमेंट, पब्लिक प्रोसीडिंग्स, ११ जन० १८६०, न० ११-१२ (ए)
४. हिन्दुस्तान, ३ फरवरी, १८८८, रिपोर्ट आन नेटिव न्यूज पेपर्स, एन० डब्लू० पी० एण्ड पंजाब १८८८, पृ० ८८
५. 'अलमोड़ा अखबार' १० अक्टूबर, १८८२, वही, १८८२, पृ० ७२६

एक नया मोड़ दिया, वह मोड़ था स्वदेशी आन्दोलन। यह भी कहा जा सकता है कि स्वदेशी आन्दोलन आर्थिक शोषण का ही परिणाम था। यह कोरी राजनैतिक प्रतिक्रिया नही, बल्कि विकसित राष्ट्रीयता की सहज परणिति थी और राष्ट्रीय आन्दोलन का एक नया चरण था।

आर्थिक शोषण ने स्वदेशी आन्दोलन को जन्म दिया और स्वतन्त्रता आन्दोलन में स्वदेशी शब्द विशेषतः सन् १८५८ के पश्चात जुडा। प्रत्येक समझदार भारतीय ने अनुभव किया कि भारत का उद्धार तब तक सम्भव नही, जब तक प्रत्येक भारतीय भारत मे निर्मित सामान का प्रयोग नही करता। हिन्दी-पत्रकारिता ने इस आन्दोलन के प्रचार हेतु अपना उल्लेखनीय कार्य किया।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने २३ मार्च, १८७४ मे 'कवि-वचन-सुधा' मे एक प्रतिज्ञा-पत्र प्रकाशित किया, जिसमे कहा गया, "हम लोग सर्वान्त दासी सब स्थल मे वर्तमान सर्वद्रष्टा और नित्य सत्य परमेश्वर को साक्षी देकर यह नियम मानते हैं और लिखते हैं कि हम लोग आज के दिन से कोई विलायती कपडा नही पहनेंगे और जो कपड़ा पहिले से मोल ले चुके है और आज की तिथि तक हमारे पास है, उनको तो उनके जीर्ण हो जाने तक काम मे लावेंगे पर नवीन कपड़ा मोल लेकर किसी भाँति का भी विलायती कपडा न पहिनेंगे, हिन्दुस्तान का ही बना कपडा पहिनेंगे, हम आशा रखते हैं कि उसको बहुत ही क्या प्रायः सब लोग स्वीकार करेंगे और अपना नाम इस श्रेणी मे होने के लिए श्रीयुत बाबू हरिश्चन्द्र को अपनी मनीषा मे प्रकाशित करने के लिए भेजेंगे और सब देश हितैषी इस उपाय की वृद्धि मे अवश्य उद्योग करेंगे।"[१]

स्वदेशी आन्दोलन हेतु स्थान-स्थान पर समितियो का गठन किया गया। बहुत से गणमान्य व्यक्तियो ने इन समितियो मे भाग लिया और शपथ ली कि वे स्वदेशी माल का ही प्रयोग करेंगे। इस क्षेत्र में अखिल भारतीय कांग्रेस ने भी सराहनीय कार्य किया। इसने अपने मद्रास अधिवेशन (१८८७) मे निम्नलिखित प्रस्ताव पास किया, "भारतीयो की गरीबी को अनुभव करते हुए, कांग्रेस मांग करती है कि भारत मे तकनीकी शिक्षा को लागू किया जाए। यह उचित होगा कि भारत में बने माल को प्रोत्साहित किया जाए और भारतीय निर्माण गुण एवं कला का समुचित उपयोग किया जाए।"[२]

परन्तु यह दुर्भाग्यपूर्ण बात थी कि अंग्रेजी भाषा के माध्यम से शिक्षित भारतीय विदेशी वस्तुओं का प्रयोग कर रहे थे। 'भारत जीवन' को ऐसे भारतीयों पर रोना आता था जो विदेशी वस्तुओं का प्रयोग करते थे। इस पत्र के सम्पादक ने कहा कि शिक्षित वर्ग यदि वास्तव मे देश की उन्नति चाहता है तो उसे स्वदेशी वस्तुओं के प्रयोग

१. डा० रामविलास शर्मा : भारतेन्दु युग
२. होम डिपार्टमेंट, पब्लिक प्रोसीडिंग्स, अप्रैल, १८८८ न० १७१-७६ (ए)

पर अधिक बल देना चाहिए और विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार करना चाहिए। इस सम्बन्ध में राजनैतिक नारे कुछ नही कर सकते।[1]

इस प्रकार हिन्दी-पत्रकारिता अपने उद्देश्य प्राप्ति की ओर अग्रसर हो रही थी। 'भारत जीवन' के अनुसार ही बम्बई राज्य में एक जोरदार आन्दोलन मानचेस्टर में बनी चीजो का बहिष्कार करने हेतु आरम्भ हुआ। चूंकि सरकार ने आयात कर में कटौती कर दी थी, परन्तु नार्थ वैस्टर्न प्रोविन्सिज में यह आन्दोलन पहले से ही चल रहा था।[2]

'आर्य मित्र' ने एक सशक्त हिन्दी कविता छापी, जिसमें कवि ने बताया कि इंग्लैंड, अमेरिका, जर्मनी, आस्ट्रेलिया और जापान शक्तिशाली और धनी हो गये, चूंकि उन्होंने अपने उद्योग-धन्धो को संरक्षण प्रदान किया। अन्त मे कवि ने भारतीयों से अपील की कि विदेशी माल का बहिष्कार करिये और स्वदेशी माल का प्रयोग करने की प्रतिज्ञा कीजिए।[3]

अतः यह कहा जा सकता है कि हिन्दी पत्रकारिता ने राजनैतिक चेतना में उल्लेखनीय और सराहनीय कार्य किया और वह भी ऐसे समय जब अंग्रेज यहाँ पर पूर्ण रूप से छाये हुए थे।

---

१. भारत जीवन, २१ दिसम्बर, १८९२, माइक्रोफिल्म, नेहरू संग्राहालय व पुस्तकालय नई दिल्ली
२. वही, २३ मार्च १८२६, नई दिल्ली
३. आर्य मित्र, २४ फरवरी १९०६

६ हिन्दी पत्रकारिता : हिन्दी गद्य का विकास

१९वीं शताब्दी में अनेक साहसी व्यक्ति अखाड़े में उतरे और हिन्दी भाषा में अपने-अपने समाचार-पत्र प्रकाशित कर हिन्दी गद्य के विकास में सराहनीय योगदान प्रदान किया। उत्तर प्रदेश से प्रकाशित पत्रों में 'बनारस अखबार' पहला हिन्दी पत्र (साप्ताहिक) था, जो जनवरी १८४५ में काशी से प्रकाशित हुआ। इस पत्र को राजा शिवप्रसाद 'सितारे हिन्द' ने प्रकाशित किया था। इसके सम्पादक श्री गोविन्द रघुनाथ थत्ते थे। राजा शिवप्रसाद उर्दू समर्थक थे, इस कारण हिन्दी का पत्र होने पर भी इस पत्र की भाषा हिन्दी न होकर उर्दू थी।

यह पत्र लीथो या शिलापट्ट पर मुद्रित होता था। इसमें अरबी-फारसी शब्दों की भरमार रहती थी, जिसे समझना सामान्य जनता के लिए कठिन था। इसकी भाषा का एक उदाहरण इस प्रकार है—"यहाँ जो पाठशाला कई साल से जनाब कप्तान किट साहब बहादुर के इहतिमाम और धर्मात्माओं के मदद से बनती है, उसका हाल कई दफा जाहिर हो चुका है। अब वह मकान एक आलीशान बन्ने का निशान तैय्यार हर चेहार तरफ से हो गया है बल्कि इसके नक्शे का बयान पहिले मुंदर्ज है, सो परमेश्वर की दया से साहब बहादुर ने बडी तंदेही मुस्तेदी से बहुत बेहतर और माकूल बनवाया है। देखकर लोग उस पाठशाला के कितने मकानों की खूबियां अक्सर बयान करते हैं और उसके बनने से खर्च का तजवीज करते हैं कि जमा से ज्यादा लगा होगा और हर तरह से लायक तारीफ के हैं सो यह सब दानाई साहब ममदूह की है। खर्च से दूना लगावट में वह मालूम है।"[१]

उपरोक्त उदाहरण से स्पष्ट हो जाता है कि राजा शिवप्रसाद ने उर्दू मिश्रित हिन्दी का प्रचलन किया, जिसमें हिन्दी की अपेक्षा उर्दू के शब्द अधिक होते थे।

'बनारस अखबार' के प्रकाशन के पश्चात् बनारस से सन् १८५० में 'सुधाकर'

---

१. डा० वेदप्रताप वैदिक : हिंदी पत्रकारिता : विविध आयाम, पृ० ११७

नामक पत्र श्री तारामोहन मैत्रेय नामक बंगाली ब्राह्मण ने प्रकाशित किया। भाषा की दृष्टि से 'सुधाकर' को ही हिन्दी प्रदेश का पहला पत्र कहना चाहिए।[1] यह बंगला और हिन्दी दोनों में प्रकाशित होता था। परन्तु सन् १८५३ से यह पत्र केवल हिन्दी में ही प्रकाशित होने लगा। इस प्रकार कहा जा सकता है कि हिन्दी गद्य के उद्भव में 'सुधाकर' समाचार पत्र ने सराहनीय योगदान दिया।

सन् १८५२ में आगरे से 'बुद्धिप्रकाश' का प्रकाशन आरम्भ हुआ है। यह पत्र भाषा एवं शैली के विचार से विशेष महत्त्व रखता है। इसकी भाषा की प्रशंसा आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने भी की है।[2] इसकी भाषा का उदाहरण पं० अम्बिका प्रसाद वाजपेयी ने इस प्रकार प्रस्तुत किया, "इस पश्चिमी देश में बहुतों को प्रगट है कि बंगाले की रीत अनुसार उस देश के लोग आसन्न-मृत्यु रोगी को गंगा तट पर ले जाते हैं और यह तो नही करते कि उस रोगी के अच्छे होने के लिए उपाय करने में काम करें और उसे यत्न से रक्षा मे रक्खें वरन् उसके विपरीत रोगी को जल के तट पर पानी में गोते देते हैं और 'हरी बोल' कह कर उसका जीव लेते हैं।"[3]

हिन्दी गद्य के विकास में 'सर्व हितकारक' नामक पत्र, जिसे शिवनारायण ने आगरे से, सन् १८५५ में प्रकाशित किया था, अपना सक्रिय योग दिया। राजा लक्ष्मण सिंह ने 'प्रजा हितैषी' नामक पत्र के माध्यम से 'अभिज्ञान शाकुन्तलं' और 'मेघदूत' आदि का अनुवाद हिन्दी में करके हिन्दी गद्य को एक नई दिशा प्रदान की।

१९वी शताब्दी में अनेक हिन्दी-प्रेमी हिन्दी के उत्थान हेतु अखाड़े में उतरे, परन्तु उन सब में अधिक प्रतिभाशाली व्यक्ति भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र (१८५० से १८८५) का था। उन्होने 'हरिश्चन्द्र मैगजीन' नामक पत्र का प्रकाशन कर के हिन्दी पत्रकारिता को ही नही, अपितु हिन्दी भाषा-शैली को भी नई दिशा दिखाई। रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार, "हिन्दी गद्य का परिष्कृत रूप प्रारम्भ में इसी पत्रिका में प्रकट हुआ।"[4] भारतेन्दु जी ने हिन्दी गद्य को परम्परागत ब्रजभाषा, संस्कृत तथा उर्दू-फारसी के शब्द बाहुल्य से मुक्ति दिला कर ऐसे व्यवस्थित एवं परिनिष्ठित रूप मे प्रस्तुत किया, जो जन-सामान्य से लेकर विद्वानों तथा कलकत्ते से लेकर कश्मीर तक, सभी को मान्य हो। आचार्य शुक्ल ने कहा, "जिस प्यारी हिन्दी को देश ने अपनी विभूति समझा, जिसको जनता ने उत्कंठा पूर्वक दौड़ कर अपनाया, उसका दर्शन इस पत्रिका (हरिश्चन्द चन्द्रिका) में हुआ।"[5]

भारतेन्दु जी ने नाटकों को एक नई दिशा दी परन्तु साथ-ही-साथ हिन्दी गद्य

---

१. अम्बिका प्रसाद वाजपेयी : पूर्व उद्धृत, पृ० ११०
२. रामचन्द्र शुक्ल : पूर्व उद्धृत, पृ० ४१४-१५
३. अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी : पूर्व उद्धृत, पृ० १११-११२
४. हिंदी साहित्य कोष (वाराणसी) भाग २, पृ० ६४१
५. रामचन्द्र शुक्ल : पूर्व उद्धृत, पृ० ४३५

के विकास में उनका अविस्मरणीय योगदान भी रहा। हिन्दी निबन्ध को व्यवस्थित रूप देने का सर्व प्रथम श्रेय भारतेन्दु जी की पत्रकारिता को जाता है। उन्होंने अपनी पत्रिकाओं में उच्चकोटि के निबन्ध लिखे जो सर्व-स्वीकृत हुए। उन्होंने सामाजिक, राजनैतिक, ऐतिहासिक, धार्मिक, पौराणिक, भौगोलिक तथा साहित्यिक अनेक प्रकार के निबन्ध लिखे, जिनकी भाषा शैली भी भिन्न-भिन्न थी। उनकी प्रसिद्ध व्यंग्यात्मक शैली का उदाहरण प्रस्तुत है, जो पंडे-पुजारियो, धर्माधिकारियों तथा विलासी मठाधीशों पर है।

"इस वर्ग से भिन्न दूसरा वर्ग उन संस्कृत पंडितों का था जो पौरोहित्य इत्यादि मे तो निरत नही थे किन्तु अपने स्वार्थ के लिए अंग्रेजों के तलवे चाटने और जी-हुजूरी करने में रात-दिन एक कर रहे थे। ऐसे लोग कोरे पोंगा-पडित न होकर अंग्रेजी फारसी इत्यादि भाषाओं का भी पूरा ज्ञान रखते थे और जी-हुजूरी में उसका उपयोग करके बड़े-बड़े सरकारी पद, आदर तथा पुरस्कार प्राप्त करते थे। सरकार चाहे चुंगी-टैक्स की ज्यादतियाँ करें, चाहे उद्योग-धन्धों को चौपट कर डालें, उन्हें अपनी गोटी बिठाने से काम था। अपनी मेम्बरी, कुर्सी, मुलाकात तथा प्रतिष्ठा के सामने उन्हें देश-भक्ति या राष्ट्रोत्थान की कोई चिन्ता न थी।"[1]

भाषा की सजीवता हेतु उन्होंने अपनी व्यंग्यात्मक शैली में लोकोक्तियाँ तथा मुहावरों का प्रयोग पर्याप्त रूप से किया है। नक्कारखाने मे तूती की आवाज, हाथ मलना, कुएँ में मेंढक, काठ के उल्लू, नैन नचाना, कान पकना इत्यादि के प्रयोग इस शैली में प्राप्त होते हैं। उदाहरणार्थ, "चुगी और टैक्स की निष्ठुरता को भी आपकी क्रूरता मात करती है। हम ऐसे कंगालों पर तुम इतना जोर जुल्म प्रकट करते हो पर अमीरो और साहेब लोगों के थरम्पन्टीडोट और खस की टट्टियों से तुम्हारा वश नहीं चलता।"[2]

भारतेन्दु जी के निबंधों की दूसरी प्रमुख शैली गवेषणात्मक मानी जाती है। इस शैली में उनके गम्भीर निबन्ध लिखे गये। 'ईसुखृष्ट और ईशकृष्ण', 'वैष्णवता और भारतवर्ष', 'संगीत सार' तथा 'जातीय संगीत' इत्यादि उनके लेख इसी शैली के वाहक हैं। पत्रिकाओं मे छपते ही इन लेखों ने तहलका मचा दिया था। भारतेन्दु जी सम्भवतः पहले लेखक थे, जिन्होने 'नैशनेलिटी' का प्रयोग किया था। उन्होंने भाषा और साहित्य के माध्यम से तत्कालीन समाज को सामाजिक, धार्मिक तथा राजनैतिक सुधारों के लिए जागृत किया। उन्होंने एक लेख मे कहा, "हे देशवासियो! इस निद्रा से चौंको! इनके (अंग्रेजों के) न्याय के भरोसे मत फूले रहो, ये विद्या (अंग्रेजी शिक्षा) कुछ काम न आवेगी। यदि तुम हाथ व्यापार सीखोगे तो तुम्हे कभी दैन्य न

१. हरिश्चन्द्र मैगजीन, ७-८ अप्रैल-मई, १८७४
२. कवि वचन सुधा, ८ जून १८७४

होगा, नहीं तो अन्त में यहाँ का सब धन विलायत चला जायेगा और तुम मुँह बाये रह जाओगे।"[1]

उन्होंने धार्मिक महत्ता का आख्यान करते हुए लिखा, "समाज की उन्नति का मूल, धर्म है। जहाँ का धर्म परिष्कृत नहीं, वहाँ कभी समाज उन्नत नहीं। धर्म पर सब लोगों का ऐसा आग्रह रहता है कि उसको साक्षात परमेश्वर से उत्पन्न मानते हैं।... और (हम) मुक्त कण्ठ होकर कहते हैं कि संसार के सब धर्माचार्यों ने भारतवर्ष की छाया से अपने-अपने ईश्वर, देवता, धर्म-पुस्तक, धर्म-नीति और चरित्र का निर्माण किया।"[2]

भारतेन्दु जी की तीसरी शैली को भावात्मक संज्ञा दी जाती है। इस शैली में उनके यात्रा-विवरण, ऋतु सम्बन्धी लेख पत्रिकाओं में प्रकाशित हुए। उनका एक यात्रा सम्बन्धी लेख 'हरिश्चन्द्र चंद्रिका' में प्रकाशित हुआ जो उदाहरणार्थ प्रस्तुत है, "झपकी का आना था कि बौछार ने छेड़-छाड़ करनी शुरू की, पटना पहुँचते पहुँचते घेर-घार कर चारों ओर से पानी बरसने ही लगा।"[3]

हिन्दी गद्य के विकास में 'कवि-वचन-सुधा' नामक पत्रिका, जिसे भारतेन्दु जी ने १५ अगस्त, १८६७ मे प्रकाशित की, ने उल्लेखनीय सहयोग दिया। प्रारम्भ में इसमे प्रसिद्ध कवियो की कविताएँ ही प्रकाशित होती थीं, परन्तु धीरे-धीरे गद्यात्मक देश-भक्ति के लेख भी छपने आरम्भ हुए। भारतेन्दु जी ने 'बाल-बोधिनी' पत्रिका को १ जनवरी, १८७४ में प्रकाशित कर, नारी-जागरण में महत्त्वपूर्ण कार्य किया। यह पत्रिका हिन्दी की भाषा-शैली और अभिव्यक्ति की दृष्टि से माननीय है।

निष्कर्ष यह है कि हिन्दी पत्रकारिता के क्षेत्र में भारतेन्दु जी का प्रवेश हिन्दी गद्य के विकास हेतु एक क्रांतिकारी घटना है। उन्होंने अपनी पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से हिन्दी गद्य के विकास में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई।

'भारतेन्दु मण्डल' के वरिष्ठ सदस्य पंडित बालकृष्ण भट्ट ने सितम्बर १८७७ मे प्रयाग से 'हिन्दी प्रदीप' मासिक पत्रिका निकाली। इस पत्रिका का जन्म भी हिन्दी साहित्य के इतिहास में चमत्कारी घटना है। इसका सिद्धान्त पक्ष भी गद्य में लिखा था जो इसकी नीति का संकेत करने वाला है—

शुभ सरस देश सनेह पूरित, प्रकट ह्वै आनन्द भरे।
बचि दुसह दुर्जन वायु सौं, मणि दीप समथिर नहिं टरे॥
सूझे विवेक विचार उन्नति कुमति सब यामें जरे।
'हिंदी-प्रदीप' प्रकाशि मूरखतादि भारत तम हरे॥

१. 'कवि वचन सुधा', १६ फरवरी, १८७४
२. हरिश्चन्द्र चन्द्रिका', जनवरी १८७६
३. वही, आसाढ़ शुक्ला १

हिन्दी के विषय में 'हिन्दी-प्रदीप' ने आरम्भ से ही निर्भीकता की नीति अपनायी थी। इस के प्रथम अंक के प्रथम पृष्ठ का अंश इस प्रकार से है, "१८ जुलाई के छपे हुए हुक्म गवर्नमेंट नं० १४६४ के देखने से जाना गया कि वे ही हिन्दुस्तानी सरकारी नौकरी पावेंगे जो अंग्रेजी के साथ फारसी या उर्दू की परीक्षा में पूरे उतरेंगे। हम सब प्रजा इसका यही मतलब समझते हैं कि अंग्रेजी के साथ जो लोग हिन्दी या संस्कृत पढ़ते हैं, उनको सरकारी नौकरी नही मिलेगी, जो हम 'काशी पत्रिका' के-समान उर्दू-हिन्दी को एक ही समझें तो हो नहीं सकता...।[1] उपरोक्त उदाहरण से स्पष्ट हो जाता है कि 'हिन्दी-प्रदीप' किस प्रकार हिन्दी गद्य के विकास के प्रति सावधान थो।

वास्तविक अर्थ मे हिन्दी का प्रथम हिन्दी दैनिक 'हिन्दोस्तान' १८८५ में काला कांकर के राजा रामपाल सिंह ने प्रकाशित किया। हिन्दी के उद्‌भट विद्वान पंडित मदनमोहन मालवीय इसके प्रधान सम्पादक थे और इनके सहयोग के लिए विद्वानों का मूर्धन्य-मण्डल था, जिसमें सर्वश्री अमृतलाल चक्रवर्ती, शशिभूषण चटर्जी, प्रताप नारायण मिश्र, बालमुकुन्द गुप्त, गोपालराम गहमरी, लाल बहादुर, गुलाब चन्द्र चौबे, शीतल प्रसाद उपाध्याय, रामप्रसादसिंह तथा शिवनारायणसिंह थे। ये मालवीय जी के सम्पादकीय विभाग के 'नवरत्न' माने जाते थे।[2] मालवीय जी सरल तथा सुबोध भाषा के प्रयोग पर बल देते थे। हिन्दी भाषा तथा देवनागरी का सबल समर्थन इस पत्र द्वारा निरन्तर होता रहा।

उत्तर प्रदेश की हिन्दी पत्रकारिता में सन् १८७१ में निकलने वाले 'अल्मोड़ा अखबार' का हिन्दी गद्य के विकास में विशिष्ट स्थान है। जिस प्रकार भारतेन्दु जी के पत्रों में काशी और उसके आस-पास के क्षेत्रों की भाषा और साहित्य का विकास हो रहा था, उसी प्रकार पर्वतीय अंचल मे अनेक साहित्यिक प्रतिभाओं को प्रोत्साहित करने का काम 'अल्मोड़ा अखबार' ने किया।

हिन्दी पत्रकारिता एवं निबन्ध-लेखन के क्षेत्र मे बाबू बालमुकुन्द गुप्त निर्भीकता के मूर्तिमान आदर्श थे। उनकी पत्रकारिता मे शुद्ध भाषा के दर्शन होते हैं। उन्होंने प्रसिद्ध उर्दू-पत्रों का सम्पादन कार्य छोडकर हिन्दी पत्रकारिता मे आकर त्याग का परिचय दिया। वे हिन्दी के प्रबल समर्थक थे। उन्ही के शब्दों मे—

"हमारे लिए इस समय वही हिन्दी उपकारी है, जिसे हिन्दी बोलने वाले तो समझें ही, उनके सिवाय उन प्रांतों के लोग भी कुछ-न-कुछ समझ सकें, जिनमें वह नही बोली जाती। हिन्दी में संस्कृत के सरल तत्सम शब्द अवश्य होने चाहिए। इससे हमारी मूल भाषा संस्कृत का उपकार होगा और गुजराती, बंगाली, मराठे आदि भी

---

१. हिंदी प्रदीप, १८ जुलाई, १८७७

२ लक्ष्मीशंकर व्यास : महामना मालवीय और पत्रकारिता, पृ०, २३

हमारी भाषा को समझने में योग्य होंगे।"[1] साथ ही वे उर्दू-फारसी के सरल शब्दों की उपयोगिता को भी स्वीकारते थे। इस प्रकार उन्होंने एक ऐसी शैली का विकास किया, जिसे सार्वजनिक शैली का नाम दिया जा सकता है। उनकी शैली सरल और व्यंग्यात्मक थी। वे पत्रकारिता के क्षेत्र में छोटे और चुभते हुए वाक्य लिखते थे। उनकी व्यंग्यात्मक शैली का एक उदाहरण प्रस्तुत है : "श्रीमान की यह घबराहट उस देहातन की घबराहट से कम नहीं है जो एक दिन शहर में सूत बदलने चली गई थी। वहाँ जाकर उसने देखा कि पचासों गाड़ियाँ रूई से भरी सामने से आ रही है। देखकर बेचारी को ज्वर आ गया। कांपकर गिर गई और कहने लगी --हाय-हाय!! इतनी रूई को कौन कातेगा?"[2]

लार्ड कर्जन पर व्यंग्य करते हुए उन्होंने लिखा, "आपके हुक्म की तेजी तिब्बती पहाड़ों के बर्फ को पिघला देती है, फारस की खाड़ी का जल सुखाती है, काबुल के पहाड़ो को नर्म कर देती है, जल-स्थल-वायु और आकाश मंडल में सर्वत्र आपकी विजय है।--समुद्र अंग्रेजी राज्य के मल्लाह हैं, पहाड़ों की उपत्यका बैठने की कुर्सी-मूढ़ बिजली कल चलाने वाली दासी और हजारों मील खबर लेकर उड़ने वाली परी है।"[3]

हिन्दी पत्रकारिता के क्षेत्र में 'ब्राह्मण' पत्र का विशिष्ट स्थान है जिसे पं० प्रतापनारायण मिश्र ने १५ मार्च १८७३ को कानपुर से प्रकाशित किया। मिश्र जी मस्त, हँसोड़े, निर्भय तथा अनेक भाषाओं के पंडित थे। वे हिन्दी के अनन्य भक्त थे। आचार्य नन्ददुलारे बाजपेयी के अनुसार, "प्रताप नारायण मिश्र अपने युग के सर्वश्रेष्ठ लेखकों में रहे हैं।"[4] निबन्ध लेखन मे उनका विशेष स्थान है जो 'ब्राह्मण' पत्र में प्रकाशित होते थे। मिश्र जी की सम्पादन कला के कारण 'ब्राह्मण' अपने समय में प्रसिद्धि के शिखर पर था जो हिन्दी पत्रकारिता की अमूल्य निधि है। इस पत्र ने हिन्दी गद्य के विकास में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। उनकी सरल भाषा का परिचय निम्न उदाहरण से स्पष्ट हो जाता है--

"अब तो आप समझ गये न कि आप क्या हैं ?--आप कौन हैं ? कहाँ के है ? यदि यह भी न हो सके तो लेख पढ़ के आपे से बाहर हो जायें तो हमारा क्या अपराध है ? हम केवल जी में कह लेंगे शाब ! आप न समझो तो अमां हमें के पड़ी है। एँ ! अब भी नहीं समझे ? वाह रे आप।"[5] उपरोक्त वाक्यो को देखने से पता चलता है कि उनकी भाषा के छोटे-छोटे वाक्य घरेलू वातावरण बना देते हैं जो 'ब्राह्मण' पत्र की प्रसिद्धि का कारण बनता है।

---

१. 'बालमुकुन्द निबन्धावली', प्रथम भाग, पृ०, ३०
२. वही, पृ० ४३१
३ वही, पृ० १६१
४. डा० सुरेशचन्द्र शुक्ल : पं० प्रतापनारायण मिश्र : जीवन और साहित्य (कानपुर १९६४, भूमिका)।
५ 'ब्राह्मण' ख० ६ स० ८, में 'आप' शीर्षक लेख

एक बार 'भारत-जीवन' और 'उचितवक्ता' के सम्पादकों के मध्य झगड़ा हो गया। बात आगे बढ़ती देख मिश्र जी ने दोनों को समझाते हुए लिखा, "उचितवक्ता' भाई ! वाह ! 'भारत जीवन !' धन्य ! सबको ज्ञान दें, आप कुत्तों से चिथलावें — तुम्हें क्या हुआ। जो बातें आपुस में निबट लेने की हैं उनको गोहरोत फिरना। छिः ! छिः ! बच्चे हो ? — सोचो तो ! खैर बहुत हो चुका, कब तक कर्कशा सराफ रहेगी ? इसी से कहते हैं होश में आओ।"[1] उपरोक्त उदाहरण से ऐसा लगता है जैसे कोई बुजुर्ग चौपाल में बैठा समझा रहा है।

मिश्र जी की भाषा में हास्य, सत्य कथन, साहस तथा देश-प्रेम कूट-कूटकर भरा था। 'ब्राह्मण' पत्र में उनका अधिकांश साहित्य प्रकाशित होता था। इस पत्र में उन्होंने राजनैतिक, धार्मिक, सामाजिक, भाषा विषयक तथा अन्यान्य निबन्ध लिखे। उनके निबन्ध अनेक शैलियों में निकलते थे। उनकी अधिकांश रचनाओं में उपदेश दिखता है। 'पतिव्रता' निबन्ध का अन्तिम अंश लीजिए, "कन्नौजियों की तरह डंडेबाजी से नारियाँ केवल डर सकती हैं, प्रीति न करेंगी। अग्रवालों, खत्रियों की भाँति निरी स्वतन्त्रता सौंप देने से भी वे सिर चढ़ेंगी। अतः भय और प्रीति दोनों दिखाना, स्वतन्त्र-परतन्त्र दोनों बनाये रखना। मौके-मौके से उन्हें अनुमति और शिक्षा भी देते रहना, और कभी-कभी उनकी सलाह भी लेते रहना। बस इन उपायों से सम्भव है कि भारत कन्याएँ पुनः 'पतिव्रता' की ओर झुकने लगेंगी।"[2]

उपरोक्त उदाहरणों से स्पष्ट हो जाता है कि उनके उपदेश का प्रत्येक वाक्य नया है और हर नये वाक्य में नया विचार है। कहीं-कहीं एक वाक्य में कई उपवाक्य हैं— किन्तु सभी में भिन्न-भिन्न सलाह हैं। इस प्रकार की शैली को शास्त्रीय परिभाषा मे समास शैली पुकारा जाता है। भारतेन्दु जी की मृत्यु पर उनकी भाषा में शोक की अभिव्यक्ति, जो 'ब्राह्मण' पत्र में इस प्रकार प्रकाशित होती है—

"हाय, हृदय विदीर्ण हुआ जाता है। आँसू रुकते नहीं हैं। हाय-हाय सुनने से पहले ही हमारा निर्लज्ज शरीर क्यों न छूट गया ? हाय पापी प्राण तुम क्यों न निकल गये।—अरे अब तेरा कौन है ? स्वामी दयानन्द चल बसे। छाती पर पत्थर धर लिया। केशव बाबू सिधारे गये, रो-धोकर कलेजा थाम लिया।—हाय देश हितैषिता अब विधवा हो गई। हाय हम क्या करेंगे।"[3]

नवाब वाजिद अली की मृत्यु पर भी उन्होने ऐसी ही शैली मे 'वाजिद अली शाह' शीर्षक लेख 'ब्राह्मण' पत्र मे प्रकाशित किया था।[4] उन्होंने 'ब्राह्मण' पत्र के माध्यम से हिन्दी गद्य के विकास हेतु भावात्मक तथा काव्यात्मक शैलियों का भी प्रयोग

---

१. 'हिंदी प्रदीप', अक्टूबर-दिसम्बर १८८७, पृ० १५
२. 'ब्राह्मण' खंड ४, सख्या १२
३. 'ब्राह्मण', खड, सख्या ११, 'रक्ताश्रु' शीर्षक लेख
४. वही, खड ४, 'वाजिद अली शाह' शीर्षक लेख

किया। काव्यात्मक लेखों में उनकी लेखनी ने अलंकृत शैली को जन्म दिया। अलंकरण विधान में उन्होंने वक्रोक्ति, उपमा, रूपक, उदाहरण, उत्प्रेक्षा और सब से अधिक श्लेष अलंकार का प्रयोग किया है। उन्होने नारी सम्बन्धित श्लेष गर्भित शैली का प्रयोग निम्न प्रकार किया है, "अच्छे वैद्यों के द्वारा, पथ्यापथ्य विचार द्वारा, म्यूनिसिपिल्टी द्वारा, सदुपदेश द्वारा, नारी पात्र को अनुकूल रखना ही श्रेयस्कर है। तनिक भी व्यतिक्रम पाओ तो वैद्यराज से कहो—महाराज नारी देखिए, मोहल्ले के मेहतर से कहो कि चिलम पीने को यह पैसा लो और नारी अभी साफ करो, घर की लक्ष्मी से कहो नारी। ऐसा उचित नहीं। कोई अफीम खा गया तो उसके सम्बन्धी से कहना चाहिए कि नारी का साग खिलाना चाहिये। इस प्रकार सदैव नारी का विचार और भगवान मदनारी (कामदेव नाशक शिव) का ध्यान रखा करो, नहीं तो महा अनारी हो जाओगे।"[1]

मिश्र जी ने अंग्रेजों के शोषण, अफसरों की खुशामद, जनता की स्वार्थपरता तथा ब्राह्मणों की निरक्षरता पर सारगर्भित व्यंग्य किए हैं। एक उदाहरण देखिए—

"···सरस्वती तो हमारे पेट में बसती है। लाख कहो एक न मानेंगे। अपना सर्वस्व हमारे धाऊधप्प पेट में ठांस-ठांस न भरें वही नास्तिक, जो हमारी बेसुरी तान पर वाह-वाह न किए जाए वही कृष्टान, हमसे चूं भी करें सो दयानन्द जी। जो हम कहें, वही सत्य है। ले भला हम तो हम, दूसरा कौन ?"[2] आगे उन्होने मूढ़ों पर व्यंग्य करते हुए लिखा, "सच है - सबसे भले हैं मूढ़, जिन्हें न व्यापै गति, भजे से पराई जथा गचक बैठना। रंडिया देवी की चरण सेवा मे तन-मन-धन से लिप्त रहना, खुशामदियों से गप्प मारना, जो कोई तिथ-तौहार आ पड़ा तो गंगा में चूतड़ धो आना, वहाँ भी राह पर पराई बहू-बेटियाँ ताकना—संसार परमार्थ दोनो तो बन गये, अब काहे की है-है काहे की खें-खें।"[3]

मिश्र जी मुहावरेदार भाषा के धनी थे। उनकी लेखनी से मुहावरे फूल की भाँति झड़ते थे। 'ब्राह्मण' पत्र की प्रतियाँ ऐसे शीर्षकों से भरी पड़ी हैं। 'घूरे के लत्ता बीनै,' 'कनातन के डौल बांधे,' 'मुनिनां च मति भ्रमः,' 'मरे को मारै साह मदार', 'इस सादगी पै कौन न मर जाए ए खुदा', आदि शीर्षक तो बहुत बड़ी चर्चा का विषय बन गये थे।[4] उनकी कहावतों के विषय में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने कहा, "ये पूर्वी की परवाह न करके लेखों में अपने बैसवारे की ग्राम्य कहावतें बेधड़क रख दिया करते थे।"[5]

---

१. 'ब्राह्मण, खंड ४ —'हो मो मो ली है', शीर्षक लेख
२. वही, खंड ४, संख्या ४,— 'हो मो मो ली है' शीर्षक लेख
३. वही, खंड ५, संख्या २, 'समझदार की मौत है' शीर्षक लेख
४. वही, खंड २ संख्या ४
५. रामचन्द्र शुक्ल : पूर्व उद्धृत, पृ० ४२६

'ब्राह्मण' पत्र का अध्ययन करके ज्ञात होता है कि मिश्र जी तत्कालीन कमियों से दूर नहीं थे। उस युग में विराम चिह्नों का ठीक प्रचलन न होने के कारण, उनकी भाषा में विराम चिह्नों की भयंकर अशुद्धियाँ पायी जाती थी। उन्होंने ग्रामीण शब्दों, मुहावरों तथा कहावतों का खुल कर प्रयोग किया। इस कारण उनकी आलोचना भी बहुत हुई, परन्तु उनकी सशक्त लेखनी ने उर्दू-फारसी से जन-मानस का ध्यान हटाकर हिन्दी की ओर आकृष्ट किया। चूंकि वे सामान्य जनता की भाषा में, सामान्य जनता के लिए, सामान्य जन-कल्याण की भावना से लिखते थे। इसलिए उनका 'ब्राह्मण' पत्र राज्य प्रासादों से लेकर चौपाल तक प्रसिद्ध हो गया था।

उपरोक्त अध्ययन से निष्कर्ष निकल जाता है कि हिन्दी-साहित्य के उद्भट विद्वानों ने हिन्दी पत्रकारिता का सहारा लेकर हिन्दी गद्य के विकास के इतिहास में सराहनीय और उल्लेखनीय कार्य किया और विभिन्न पत्रों के माध्यम से जन-सामान्य का ध्यान उर्दू-फारसी की ओर से हटाकर हिन्दी की ओर आकर्षित किया।

७ आर्यसमाज की हिन्दी-पत्रकारिता

जिन दिनों स्वामी दयानन्द ने आर्य समाज की स्थापना की, उन दिनों देश में उर्दू का प्रमुत्व था और अधिकतर पत्र-पत्रिकाएँ उर्दू में प्रकाशित हो रही थी। आर्य समाज की स्थापना ने हिन्दी पत्रकारिता को एक नई दिशा प्रदान की। आर्य समाज की पत्र-पत्रिकाओं ने भारतीय नव-जागरण की सभी धाराओं के विकास में अपना सक्रिय योगदान दिया।

डॉ० रामरत्न भटनागर के अनुसार—"उर्दू के मध्य में हिन्दी की नींव दृढ़ करने वाली और एक महत्वपूर्ण शक्ति थी और वह थी—आर्य समाज। अपने पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से उसने हिन्दी के प्रभावशाली पिष्टपेषण का कार्य किया। समाज का मुख्य उद्देश्य भारतीय राष्ट्रीयता और वैदिक संस्कृति को उठाना था। इस प्रकार वह हिन्दी के उत्थान हेतु भी कार्य कर रही थी।"[1] सर्वप्रथम सन् १८७० में शाहजहाँपुर से मुंशी बख्तावर सिंह ने 'आर्य-दर्पण' नामक साप्ताहिक पत्र प्रारम्भ किया।[2] उसके पश्चात् समाज ने अनेक पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन किया। इस प्रकार स्पष्ट हो जाता है कि आर्य समाज की स्थापना से पूर्व ही महर्षि दयानन्द के विचारों से प्रभावित होकर मुंशी बख्तावर सिंह ने अपने पत्र का प्रकाशन आरम्भ किया और उनकी देखा-देखी सन् १८७३ में 'आर्य पत्रिका' मिर्जापुर से प्रकाशित हुई।[3] जिसका सर्वाधिक प्रकाशन सन् १८८०-८१ मे ११७३ प्रतियाँ था।

मुंशी बख्तावरसिंह एक उत्साही आर्यसमाजी थे। उन्होंने सन् १८७६ में 'आर्य भूषण' साप्ताहिक भी निकाला।[4] परन्तु यह पत्र अधिक समय तक नहीं चल सका। मुंशी जी ने तीसरा साप्ताहिक 'अजाब' पत्र भी शाहजहांपुर से ही निकाला।

---

१. डा० रामरत्न भटनागर : पूर्व उद्धृत, पृ० १२९
२. रिपोर्ट आन नेटिव न्यूज पेपर्स, १८७० . .
३. वही, १८७३
४. वही, १८७६

तत्पश्चात् एन० के भट्टाचार्य ने 'आर्य मित्र' को काशी से आरम्भ किया। इस पत्र मे प्रायः सर्व-साधारण के लिए लेख प्रकाशित होते थे।

आर्य समाज के आरम्भिक वर्षों मे उत्तर प्रदेश के पश्चिमी भाग मे मेरठ का वही महत्त्व था, जो पंजाब मे लाहौर का था। अतः यहाँ से सन् १८७८ में कल्याण-राय के सम्पादकत्व मे 'आर्य समाचार' प्रकाशित हुआ। इसी वर्ष २६ सितम्बर, १८७८ को महर्षि दयानन्द ने मेरठ पधार कर आर्य समाज की शाखा की स्थापना की थी। स्वामी जी मेरठ बहुत आते-जाते थे। यही कारण है कि मेरठ जिले की जनता उनके सिद्धान्तों और शिक्षाओं से अत्यन्त प्रभावित हुई। इसी वर्ष फर्रुखाबाद से 'भारत सुदशा प्रवर्तक' का प्रकाशन हुआ। इसका नाम पहले 'भारत कुदशा प्रवर्त्तक' था।[1]

३० अक्टूबर, १८८३ को स्वामी दयानन्द का देहान्त हो गया और आर्य समाजियों ने उनके सिद्धान्तो और शिक्षाओ को जन-सामान्य तक पहुँचाने हेतु पत्र-पत्रिकाएँ निकालनी आरम्भ की। सन् १८८४ मे कानपुर से 'वेद प्रकाश' निकाला जो बाद में सन् १८९७ मे मेरठ की स्वामी प्रेस से मासिक के रूप में प्रकाशित होता रहा। सन् १८७६ से १८८० तक आर्य समाजियो ने 'आर्य दर्पण', 'आर्य भूषण', शाहजहाँपुर से 'धर्म प्रकाश' कपूरथला से 'आर्य समाचार' मेरठ से और 'बलदेव प्रकाश' आगरे से निकालने आरम्भ किये।[2] आर्य समाजी पत्र इसलिए भी अधिक निकाल रहे थे चूँकि आर्य समाज और ईसाई मिशनरी के विचारों में टकराव हो रहा था।

स्वामी दयानन्द के अनन्य शिष्य श्री समर्थदान ने सन् १८८६ मे अजमेर से 'राजस्थान समाचार' नामक पत्र का प्रकाशन आरम्भ किया। समर्थदान हिन्दी के समर्थक थे। उन्होने हिन्दी का समर्थन करते हुए एक सज्जन को लिखा—"भाई, मेरी आँखें तो उस दिन को देखने के लिए तरस रही हैं, जब काश्मीर से कन्याकुमारी तक सब भारतीय एक भाषा को समझने और बोलने लगेंगे, जिन्हे सचमुच मेरे भावों को जानने की इच्छा होगी वे इस आर्य भाषा को सीखना अपना कर्तव्य समझेंगे। अनुवाद तो विदेशियो के लिए हुआ करते हैं।"

इसी वर्ष बम्बई आर्य प्रतिनिधि सभा ने 'आर्य प्रकाश' नाम से एक मासिक पत्रिका का शुभारम्भ किया। उन ही दिनों लाहौर से 'वैदिक मैगजीन' (१८८१) और 'धर्मोपदेश' (१८८२) भी निकले। सन् १८८८ में रामरोशन लाल की पत्नी श्रीमती हरदेवी ने 'भारत भगिनी' नामक पत्रिका को निकालना आरम्भ किया। आर्य प्रतिनिधि सभा ने इस वर्ष 'आर्य मित्र' को मुरादाबाद से आरम्भ किया, जो बाद मे आगरे से निकलता रहा।[3]

---

१. रिपोर्ट ग्रान नेटिव न्यूज पेपर्स, एन० डब्लू० पी० एण्ड पंजाब, १८७८

२. डा० रामरतन भटनागर : पूर्व उद्धृत, पृ० १३०

३ रिपोर्ट आन नेटिव न्यूज पेपर्स, एन० डब्लू० पी० एण्ड पंजाब के आधार पर

सन् १८८९ में पं० गजाजनराव हाण द्वारा प्रयाग से 'आर्य जीवन' मासिक पत्रिका निकाली गयी। १८ फरवरी १८८९ को कन्या महाविद्यालय के संस्थापक लाला देवराज ने 'संदर्भ प्रचारक' साप्ताहिक उर्दू मे निकाला। परन्तु बाद मे यह हिंदी में निकलना आरम्भ हुआ।

आर्य समाज की परोपकारिणी सभा ने मन् १८९० मे आगरे से 'परोपकारी' मासिक पत्रिका को जन्म दिया। इसके सम्पादक सम्भवतः पद्मसिंह शर्मा हुआ करते थे। इसी वर्ष इटावे से महर्षि दयानन्द के एक भक्त पं० भीमसेन शर्मा ने 'आर्य सिद्धांत' का शुभारम्भ किया।[1]

इन्हीं दिनों १८९५ में बरेली से 'आर्य मित्र' मासिक पत्रिका और सन् १८९६ में खीरी के आर्य भास्कर प्रेस से 'आर्य भास्कर' नामक पत्र प्रकाश मे आये।[2] सन् १८९७ में तुलसीराम स्वामी ने 'वेद प्रकाश' नामक मासिक पत्रिका को जन्म दिया, जिसमे अधिकतर सामवेद का भाष्य प्रकाशित होता था। बाद मे तुलसीराम ने 'दया-नन्द पत्रिका' नामक एक और मासिक पत्रिका को भी प्रकाशित किया।

उपरोक्त आर्य समाज के पत्र-पत्रिकाओ ने आधुनिक भारत के नव-जागरण मे सक्रिय भाग लिया जो हिन्दी पत्रकारिता के इतिहास में स्वर्णाक्षरों मे लिखा जाना चाहिए।

---

१. रिपोर्ट आन नेटिव न्यूज पेपर्स : एन० डब्लू० पी० १८९०
२. वही, १८९५-९६

८ हिन्दी पत्रकारिता और धर्म

भारत एक धर्म प्रधान देश है। यहाँ के प्रत्येक कार्य मे धर्म की झलक परिलक्षित होती है। पत्रकारिता के क्षेत्र में ऐसा अपवाद कैसे हो सकता है ? हिन्दी भाषा की पत्रकारिता में इसका पुट विशेष रूप से प्राप्त होता है। चाहे पत्र-पत्रिका कितनी छोटी हो या बड़ी, उसमे धार्मिक एवं आध्यात्मिक सामग्री अवश्य प्रकाशित होती रही है।

राष्ट्रीय पुस्तकालय कलकत्ते में हिन्दी के प्रथम पत्र 'उदंत मार्त्तण्ड' को देखने से पता चलता है कि उसमे धर्म सम्बन्धी लेख प्रकाशित होते थे। एक लेख का शीर्षक…'संसार पर वैदिक धर्म का प्रभाव' इस पत्र मे छपा था।

श्यामसुन्दर सेन के सम्पादकत्व मे सन् १८५४ में 'समाचार सुधावर्षण' कलकत्ता से आरम्भ हुआ। उन दिनों ईश्वर चन्द्र विद्यासागर ने विधवा विवाह सम्बन्धी अभियान चला रखा था, परन्तु कट्टरपंथी सनातनियों के नेता राधाकांत देव ने विधवा विवाह का विरोध किया। 'समाचार सुधावर्षण' कट्टरपंथी सनातनियो का समर्थक था। अत: उसमे एक लेख प्रकाशित हुआ —"विधवा के विवाह के लिए कालेज के पंडितवर श्रीयुत ईश्वरचन्द्र विद्यासागर ने नाना प्रकार के छोटे-छोटे ग्रन्थ और प्रमाण रच कर बंगालियो के समक्ष प्रकट किए। यह क्या आश्चर्य की बात है कि बंगदेशीय मनुष्यों मे विद्या का बडा प्रचार है, परन्तु धर्माधर्म का कुछ भी विचार नही करते। कुमारी का विवाह सर्वशास्त्र मे लिखा है, लेकिन विधवा का विवाह किसी शास्त्र-वेद में नही लिखा, न ही सुनने में ही आया। केवल इसी देश के पंडितो के मुख से सुनने मे आता है।"[1]

सन् १८६५ में बरेली से 'तत्वबोधिनी पत्रिका' गुलाबशंकर के सम्पादन मे प्रकाशित हुई। यह पत्रिका ब्रह्म समाज के सिद्धांतों को प्रकाशित करती थी। इसी

१. अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी : पूर्व उद्धृत, पृ० ११६

प्रकार सन् १८६६ में लाहौर से बाबू नवीनचन्द्र राय ने ब्रह्म समाज के प्रचार हेतु 'ज्ञान प्रदायिनी पत्रिका' का शुभारम्भ किया।[1] 'ब्रह्म ज्ञानप्रकाश' ब्रह्मसमाजियों ने ब्रह्म समाज के विचारों को प्रकाशित करने के लिए बरेली से निकाली थी।

सन् १८६५ में आर्य समाज की स्थापना हुई। इसके संस्थापक स्वामी दयानंद के सिद्धांतों और शिक्षाओं को जन-सामान्य तक पहुँचाने के लिए उनके अनुयायियों ने अनेक पत्र –'आर्य भूषण', 'अजाव', 'आर्य समाचार', 'भारत सुदशा प्रवर्त्तक', 'वेद प्रकाश', 'धर्म प्रकाश', 'राजस्थान समाचार', 'बलदेव प्रकाश', 'आर्यप्रकाश', 'वैदिक मैगजीन', 'धर्मोपदेश' और 'परोपकारी' आदि प्रकाशित किए।[2]

ईसाइयों ने भी अपने धर्म प्रचार के लिए 'मयूर गजट' मेरठ से और 'सांडर्स गटज' सहारनपुर से निकाले।

सन् १८७८ मे कलकत्ते से प्रकाशित 'भारत मित्र' में धर्म सम्बन्धी लेख प्रायः छपा करते थे। इसी प्रकार सनातनी विद्वान श्री आम्बिकादत्त व्यास ने सन् १८८२ मे काशी से—'वैष्णव पत्रिका' का प्रकाशन आरम्भ किया। इस पत्रिका मे सनातन धर्म सम्बन्धी सामग्री होती थी।

'सार सुधानिधि' कलकत्ता से सन् १८७९ में सदानन्द मिश्र के संपादकत्व में निकलता था। इस पत्र में जहाँ अंग्रेजो के विरुद्ध राजनैतिक लेख निकलते थे, वहाँ धार्मिक लेख भी खूब प्रकाशित होते थे। चूँकि यह पत्र धार्मिक क्षेत्र में कट्टरपंथी विचारों का समर्थक था। इसमें अधिकतर स्वामी दयानन्द की शिक्षाओ के विरोध में लेख प्रकाशित होते थे। यह पत्र गौ-रक्षा का समर्थक था। गौ-रक्षा हेतु इसमें वेद-शास्त्रों के उद्धरण प्रस्तुत होते थे।

सन् १८८१ में कलकत्ता से प्रकाशित प्रमुख हिन्दी साप्ताहिक 'उचित वक्ता' राष्ट्रीय विचारधारा के साथ-साथ धार्मिकता से ओत-प्रोत पत्र था। उसके मुख पृष्ठ पर 'श्री गणेशाय नमः' शब्द के नीचे गणेश जी का चित्र होता था। धर्म की प्रधानता का पता उसके निम्न उदाहरण से स्पष्ट हो जाता है –जो १२ मई १८८३ के अंक में प्रकाशित हुआ था —"देशीय सम्पादको ! सावधान। कही जेल का नाम सुनकर कर्त्तव्य विमूढ न हो जाना। यदि धर्म की रक्षा करते हुए, गवर्नमेंट को सद्-परामर्श देते हुए जेल जाना पड़े तो क्या चिन्ता है। इससे मान हानि नही होती।"[3] इस पत्र में धार्मिक भावना का प्रभाव इसलिए पाया जाता है चूँकि इसके संपादक पं० दुर्गाप्रसाद मिश्र सनातन धर्म के सिद्धान्तों में अटूट विश्वास रखते थे।

अंग्रेज, हिन्दू-मुसलमानो को लड़ाने के लिए गौ-हत्या को प्रोत्साहन दिया करते थे। इस विषय में 'उचित वक्ता' ने २१ मई, १८८१ के अंक में संपादकीय टिप्पणी में

---

१. रिपोर्ट आन नेटिव न्यूज पेपर्स, एन० डब्लू० पी० एण्ड पंजाब के आधार पर
२. वही
३. डा० कृष्णबिहारी मिश्र : हिन्दी पत्रकारिता जातीय चेतना और खड़ी बोली साहित्य की निर्माण-भूमि, पृ० ३०१

लिखा—"हिन्दुओं की धार्मिक भावनाओं का जरा भी ख्याल न कर हिन्दुओं के मोहल्ले में गौ-मांस की बिक्री की जाती है। कोई भी अपने धर्म पर आघात सहन कैसे कर सकता है ? यदि कोई हिन्दू अंग्रेजों के गिरजे के बगल में देव-मूर्ति-स्थापित करके उसकी पूजा के हेतु शंख, घंटा, घड़ियाल, नगाड़ा आदि वाद्योद्यम करें तो क्या खृष्ट धर्मोपासक गण कभी भी यह सह सकते हैं ? कदापि नहीं। और क्या मुसलमान लोग उसी प्रकार से हमारी देव-मूर्ति नव प्रतिष्ठित देख अथवा उनके धर्म विरुद्ध शूकरमास का विक्रय होते देख कर भी चुपचाप रह सकते हैं ? अतएव हिन्दू लोग यदि इस प्रकार के धर्म-विरोधी कार्य को रोकने की चेष्टा करते है तो इसमें अन्याय क्या है ?"

श्री राधाकृष्ण दास के संपादकत्व में सन् १८८४ में काशी से 'धर्म प्रचारक' का प्रकाशन हुआ। यह पत्र सनातन धर्म का पोषक था।

सन् १८८७ में लखनऊ से पं० हरिशंकर 'धर्म सभा अखबार' नामक साप्ताहिक निकालते थे। इसमें सनातन धर्म के सिद्धान्तों का मंडन तो रहता ही था, आर्य समाज की बातों का खंडन भी रहता था। सन् १८८९ में फर्रुखाबाद से पं० गौरीशंकर वैद्य 'धर्म सभा' नामक पत्र को निकाला करते थे, जो सनातन धर्म का पत्र माना जाता था।

राजस्थान की बूंदी रियासत से २० फरवरी १८९० में 'सर्वहित' नामक हिन्दी पत्र का शुभारम्भ हुआ। इसके संपादक रामप्रताप शर्मा होते थे। शर्मा जी हिन्दू धर्म विरोधियों की बातों का अच्छा खंडन करते थे। उनका उन दिनों मुख्य उद्देश्य यह होता था—

'ईशः सुखयतु लोकान् विहाय कपटानि ते भजन्त्वीशम्।
श्रयतु खलोऽपि सुजनतां सर्वोपि स्वीकरतु सर्वहितम्॥

सन् १८९२ मे 'गौ-सेवक' प्रयाग से और 'जैन-हितैषी' मुरादाबाद से दोनो धार्मिक पत्र हुआ करते थे। भारतीय दिगम्बर जैन सभा के द्वारा अजमेर से सन् १८९५ में 'जैन गजट' साप्ताहिक निकालना आरम्भ हुआ। सन् १८९६ मे बंबई के धार्मिक प्रकाशन संस्थान ने श्री 'वेंकटेश्वर समाचार' साप्ताहिक शुरू किया। यह पत्र सनातन धर्म का प्रबल समर्थक था। सन् १८९८ मे कई धार्मिक पत्र प्रकाश मे आये। 'सनातन धर्म' और 'जैन हितोपदेशक' दोनों सहारनपुर के खैरखाहे प्रेस से निकलते थे। इसी वर्ष 'जैन मित्र' साप्ताहिक का प्रकाशन सूरत से हुआ। इसमें जैन धर्म सम्बन्धी सामग्री रहती थी। यह पत्र आज भी श्री मूलचंद किशनदास कापडिया के सम्पादकत्व में चल रहा है।

उपरोक्त धार्मिक पत्र-पत्रिकाओं से स्पष्ट हो जाता है कि भारत में धर्म और संस्कृति की जड़ें बहुत गहरी हैं। परन्तु इस बात को नकारा नहीं जा सकता कि उन दिनो धर्म के प्रति उदासीनता बढ रही थी और नैतिकता का ह्रास होता जा रहा था। विज्ञान के क्षेत्र में शोध चल रहा था और वैज्ञानिक चकाचौंध में धर्म और संस्कृति तथा नैतिकता को नये संदर्भ और नये आयाम चाहिए थे। ऐसी स्थिति में धार्मिक पत्रकारिता का विशेष महत्त्व था।

९ भारत के अन्य प्रदेशों में हिंदी-पत्रकारिता

हिंदी पत्रकारिता का उद्भव-विकास उत्तर प्रदेश के अतिरिक्त भारत के अन्य प्रदेशों मे भी हुआ, परन्तु यह उन प्रदेशों मे इतनी तीव्र गति से नही हुआ, जितनी कि उत्तर प्रदेश मे।

यह ऐतिहासिक सत्य है कि बंगाल मे पाश्चात्य ज्ञान का प्रवेश सर्वप्रथम हुआ और यही से आधुनिक भारतीय पत्रकारिता का शुभारम्भ हुआ। हिंदी पत्रकारिता का बीजारोपण भी बंगाला में ही हुआ। चूंकि पश्चिमोत्तर प्रदेश से बहुत से हिंदीभाषी नौकरी हेतु कलकत्ता मे पहुँचे और उन लोगों ने अपनी भाषा हिंदी के विकास करने के उद्देश्य से हिंदी पत्रकारिता का श्रीगणेश किया। इस दिशा में पहल पं० जुगल किशोर शुक्ल ने ३० मई १८२६ को अपने 'उदत मार्तण्ड' नामक पत्र का प्रकाशन करके की। यह हिंदी भाषा का प्रथम समाचार-पत्र था। परन्तु आर्थिक कठिनाइयों के कारण हिंदी के इस आदि पत्रकार को ४ सितम्बर, १८२७ को अपना पत्र बन्द करना पडा।

लेकिन इस दुर्घटना से शुक्ल जी का साहस नही टूटा और उन्होंने सन् १८५० में 'साम्यदंत मार्तण्ड' नामक पत्र का प्रकाशन आरम्भ किया। शुक्ल जी की प्रेरणा से प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम (१८५७) के पूर्व कलकत्ते से हिंदी के कई पत्र निकले। जिनमे 'बंगदूत' 'प्रजापति' और हिंदी के प्रथम दैनिक 'समाचार सुधा वर्षण' आदि उल्लेखनीय हैं। स्मरणीय है कि यह कार्य उस युग में हुआ था, जब कदम-कदम पर कठिनाइयाँ मुँह बायें खड़ी थी। पत्रकारों को एक ओर तो सरकार की दमन नीति से लड़ना था और दूसरी ओर हिंदी भाषियो की संकुचित भावना से जूझना था, परन्तु आदि पत्रकारो ने साहस का परिचय दिया और कलकत्ते से इतने पत्र निकले, जितने हिंदी भाषा के प्रदेश से नही निकले परन्तु सन् १८५७ के स्वतन्त्रता संग्राम के पश्चात् सरकारी दमन-नीति ने इसके विकास को अस्थाई रूप से अवरुद्ध कर दिया था।

भारतीय पत्रकारिता के महान पुरस्कर्ताओं ने अपनी साधना द्वारा भाष.

वादी दानवी शक्ति से टक्कर लेकर पत्रकारिता के गौरव को ऊँचा किया। उन्होंने कलकत्ते से 'भारतमित्र' (१८७८) 'सारसुधा निधि' पत्रकार और पत्रकारिता -- (१८७९) और 'उचितवक्ता' (१८८०) आदि को जन्म देकर न केवल हिंदी कला को उन्नत किया बल्कि खड़ी बोली के विकास में सक्रिय सहयोग प्रदान किया। पत्रकारिता के इन उन्नायकों मे पं० दुर्गाप्रसाद मिश्र, पं० हरमुकुंद शास्त्री, पं० रुद्रदत्त शर्मा, पं० अमृतलाल चक्रवर्ती, बाबू बालमुकुंद गुप्त, पं० बाबूराव विष्णु पराडकर, पं० अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी और पं० लक्ष्मणनारायण गर्दे जैसे शीर्षस्थ मनीषी पत्रकार आते हैं।

हिंदी का प्रसिद्ध पत्र 'बंगवासी' सन् १८९० में कलकत्ते से पं० अमृतलाल चक्रवर्ती के द्वारा प्रकाशित हुआ।

२०वीं शताब्दी के आरम्भिक वर्षों में लार्ड कर्जन की त्रुटिपूर्ण नीतियों के कारण और कुछ अन्य कारणों से उग्रवादी राष्ट्रीय धारणा का जन्म हुआ और इस धारणा ने स्वदेशी आंदोलन को जन्म दिया। इस विचारधारा को जन्म देने में विपिन चन्द्रपाल, अरविंद घोष, एवं रविन्द्रनाथ ठाकुर आदि का योगदान था। इन उग्रवादी राष्ट्र-नायकों ने 'युगान्तर', 'संध्या' और 'वन्देमातरम्' आदि को जन्म दिया ताकि वे अपनी विचारधाराओं को सामान्य जनता तक पहुँचा सकें।

पत्रकारिता के क्षेत्र में अन्य प्रदेश भी पीछे नही रहे। मध्य प्रदेश मे पत्रकारिता का श्रीगणेश सन् १८५९ से होता है। इसी वर्ष 'मालवा अखबार' निकलता था। यह पत्र इस प्रदेश का प्रथम हिंदी समाचार-पत्र था। परन्तु यह १९वी शती के अन्त में बंद हो गया। इस दिशा में ग्वालियर शासन द्वारा सन् १८४४ मे 'ग्वालियर अखबार' साप्ताहिक प्रकाशित हुआ लेकिन इसका अधिक महत्त्व नहीं था। सन् १८५२ में इंदौर से 'दिल्ली अखबार' भी प्रकाशित हुआ, जिसमें अधिकतर इन्दौर नगर के समाचार ही प्रकाशित होते थे।

परन्तु इस प्रदेश मे अधिकतर मराठी भाषा बोली जाती थी इसलिए मराठी पत्रकारिता का ही बोलबाला अधिक रहा, परन्तु मराठी भाषा का प्रभाव होने पर भी हिंदी पत्रकारिता धीरे-धीरे अग्रसर हो रही थी। सन् १८६१ मे 'ग्वालियर गजट' सिंधिया शासकों द्वारा प्रकाशित हुआ। सन् १८८२ में इन्दौर से 'रेलवे समाचार' का प्रकाशन भी आरम्भ हुआ। यह तीन भाषाओ मे-- हिंदी, उर्दू और मराठी में प्रति सप्ताह निकलता था। इससे पूर्व यह पत्र खंडवा से प्रक[illegible] था और [illegible] अजमेर से प्रकाशित होता रहा।

परन्तु २०वीं शती में मध्य प्रदेश से इतने [illegible] असम्भव है। हिंदी पत्रकारिता की इस बढती हुई [illegible] जैसे बाढ आई हुई हो।

पत्रकारिता के क्षेत्र में [illegible] भी पीछे प्रारम्भिक पत्रों का इतिहास [illegible]

ने 'मजहरल-सरू' हिंदी और उर्दू में सन् १८३६ में प्रकाशित करना आरम्भ किया। उसी प्रकार जोधपुर से 'मुहिबे मालवा' उर्दू मे और 'मरुधर मित्र' हिंदी में प्रकाशित हुऐ। इसी वर्ष जोधपुर से 'मारवाड गजट' हिंदी और उर्दू में रियासत की आज्ञा से प्रकाशित हुए। इन दिनों स्वामी दयानन्द अजमेर मे बहुत आते-जाते रहते थे। उनकी प्रेरणा से 'परोपकारी' व 'अनाथरक्षक' पत्र निकले।

सन् १८६६ में उदयपुर से 'उदय गजट' का जन्म हुआ। यह पत्र १८७६ मे महाराजा सज्जनसिंह के नाम से 'सज्जन कृति सुधाकर' के रूप में सामने आया। यह पूर्णरूप से हिंदी का पत्र था। सन् १८७८ मे जयपुर से 'जयपुर गजट' निकला, जिसके सम्पादक बाबू महेन्द्रनाथ सेन हुआ करते थे।

इनके अतिरिक्त गैर-सरकारी प्रयत्नों से 'राजस्थान आफिशियल गजट' का जन्म हुआ। सन् १८८२ में अजमेर से 'देश हितैषी' नाथद्वारा से 'सद्धर्म प्रचारक' आदि प्रकाशित हुए। परन्तु इसमे पहले सन् १८८१ में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की प्रेरणा से नाथद्वारा के पं० मोहनलाल ने 'विद्यार्थी सम्मिलित हरिश्चन्द्रिका' और 'मोहन चन्द्रिका' प्रकाशित किये। सन् १८७३ में बालचन्द्र शर्मा ने जयपुर से 'समाचार मार्तण्ड' मासिक पत्रिका को निकाला और १८८४ में फतहपुर से 'कायस्थ व्यवहार' भी सामने आया।

पत्रकारिता के उन्नायक समर्थदीन ने सन् १८८६ में 'राजस्थान समाचार' साप्ताहिक का प्रकाशन करके नये युग का शुभारम्भ किया। इस पत्र में अधिकतर आर्य-समाज के विचार प्रकाशित होते थे। सन् १८९० में 'सर्वहित' पाक्षिक बूंदी से प्रकाशित हुआ। इसके सम्पादक रामप्रताप शर्मा व लज्जाराम शर्मा जैसे विद्वान हुआ करते थे। अजमेर से 'राजस्थान पत्रिका' (१८९४) भी सामने आई।

दिल्ली एक ऐतिहासिक नगर है। यहाँ से कई पत्र-पत्रिकाएं प्रकाशित हुईं। परन्तु हिंदी पत्रकारिता का श्रीगणेश सन् १८५७ के पश्चात् ही होता है। सन् १८५७ में अजीमुल्ला खा द्वारा प्रकाशित उर्दू का 'पयामे-आजादी' पत्र हिन्दी में परिवर्तित हो गया था। इस पत्र मे देश-भक्ति की सामग्री प्रकाशित हुआ करती थी। यह पत्र शीघ्र ही ब्रिटिश सरकार द्वारा बंद कर दिया गया। इसके पश्चात् सन् १८७४ में लाला श्रीनिवासदास ने यहा से 'सदादर्श' नामक एक साप्ताहिक पत्र निकाला। इसमें अधिकतर लेख और समाचार प्रकाशित होते थे। यह पत्र सन् १८७६ में 'कविवचन सुधा' मे विलय हो गया। सन् १८२३ मे यहाँ से 'इन्द्रप्रस्थ प्रकाश' साप्ताहिक पत्रिका के प्रकाशित होने के प्रमाण मिलते हैं, परन्तु १९वीं शती में यहाँ से कोई दैनिक पत्र निकलने का प्रमाण नही मिलता। जबकि २०वी शती में यह नगर पत्रकारिता का गढ बना हुआ है।

हरियाणा प्रदेश सन् १९६६ मे पंजाब से पृथक होकर स्वतंत्र राज्य बना है। पृथक होने से पहले यह प्रदेश पंजाब का एक भाग था और इसमें से अनेक पत्र निकले। यहा से सर्वप्रथम १४ नवम्बर १८८४ को 'जैन प्रकाश' नामक पत्र फरुख-

नगर (गुड़गांव) से उर्दू तथा हिंदी में प्रकाशित हुआ। इसके सम्पादक जियालाल थे। श्री जियालाल ने ही इसी वर्ष 'जैन साप्ताहिक' भी निकाला था। इन्होंने ही सन् १८८७ में 'जियालाल प्रकाश' निकाला, जो सन् १८९०-९१ में दिल्ली से प्रकाशित होने लगा। सन् १८८९ में गुड़गांव से श्री कन्हैयालाल सिंह के सम्पादकत्व में 'जाट समाचार' मासिक पत्रिका आरम्भ हुई। उपरोक्त विवरण से स्पष्ट हो जाता है कि हरियाणा में पत्रकारिता का आरम्भ धार्मिक, सामाजिक एवं जातीय प्रवृत्ति से हुआ।

१५ अगस्त १९४७ से पहले दिल्ली से लेकर अटक तक का सारा क्षेत्र पंजाब कहलाता था। जब १९४७ में भारत का विभाजन हुआ, तो बाघापार का क्षेत्र पाकिस्तान में चला गया और पंजाब केवल दिल्ली से बाघा तक रह गया। नवंबर १९६६ में पंजाब का फिर विभाजन हुआ और इस बार यह बहुत छोटा-सा राज्य रह गया। अब पंजाब राजपुरा से चलकर बाघा की सरहद पर समाप्त हो जाता है। यहाँ पर हमारा उद्देश्य पुराने पंजाब की हिंदी पत्रकारिता ही दिखाना है।

पंजाब में हिंदी पत्रकारिता का आरम्भ सन् १८७५ में होता है, जब सरदार संतोषसिंह ने साहित्यिक पाक्षिक पत्रिका 'सवन्त सम्बोधिनी पत्रिका' हिंदी में प्रकाशित की। इसके पश्चात् १८७७ में लाहौर से पं० मुकंदराम के सम्पादकत्व में शुद्ध हिंदी साप्ताहिक 'मित्र विलास' का उदय हुआ।

फ्रांसीसी इतिहासकार तासी के अनुसार १८६६ में लाहौर से 'ज्ञान प्रदायिनी पत्रिका' प्रकाशित हुई। इसके बाद 'श्री दरबार साहब' (अमृतसर, १८६८), 'सुकवि सम्बोधिनी' (१८७५) 'काव्य संग्रोदय' (१८७६), 'भारतमित्र' (लाहौर, १८७३), 'हिन्दू प्रकाश' (लाहौर, १८७५), 'जगत आशना' (लाहौर, १८७५), 'नीति प्रकाश' (लुधियाना, १८७५), 'हिंदू बंधु' (लाहौर, १८७५), 'हिन्दू बांधव' (लाहौर, १८७६) आदि उल्लेखनीय हैं।

जून १८८२ में लाहौर से 'भारत हितैषी' और दिसम्बर १८८२ में 'भारतेन्दु' हिंदी द्विमासिक पत्र का प्रादुर्भाव हुआ। सन् १८८३ में लाहौर 'देशोपकारक' और रावलपिंडी से 'सुखदायक-सभा' पत्रिकाएँ आरम्भ हुईं और 'जैन प्रकाश' १४ नवम्बर, १८८४ को निकला। लाहौर से सन् १८८७ में 'इन्दु' साप्ताहिक पत्र का जन्म हुआ। सन् १८८८ में लाहौर से नारी जाति सम्बन्धित 'भारत-भगिनी' और 'सुगृहणी' पत्रिकाएँ प्रकाशित हुईं। बीसवीं शताब्दी में यहाँ से अनेक पत्र-पत्रिकाएँ प्रकाशित हो रही हैं।

हिंदी भाषी प्रदेशों के बाद महाराष्ट्र हिंदी पत्रकारिता का बहुत बड़ा गढ़ था। यहाँ की हिंदी पत्रकारिता ने अनेक पत्रकार दिए। जबकि यहाँ पत्रकारिता अधिकतर अंग्रेजी, गुजराती और मराठी भाषाओं में थी। इस प्रदेश की हिंदी पत्रकारिता का जन्म १९वीं शताब्दी के अन्तिम दशकों में हुआ।

सन् १८६६ में बम्बई से 'सत्यदीपक' नामक पत्र का उदय हुआ। ऐसी सम्भावना है कि यह पत्र ईसाई मिशनरी का था। और हिंदी में प्रकाशित हो रहा था।

इस प्रदेश के नागपुर नगर से सन् १८७० मे 'नागपुर गजट' नाम का समाचार पत्र-प्रकाशित हुआ, जो हिंदी, उर्दू और मराठी मे छपता था। इसी वर्ष बम्बई से श्री कृष्णजी परशुराम ने 'मनोहर विहार' पत्र हिंदी, मराठी, गुजराती और संस्कृत मे आरम्भ किया। इसी वर्ष 'स्त्री ज्ञान दीप' नामक मासिक पत्रिका महिलाओं मे समाज-सुधार की शिक्षा देने हेतु प्रकाशित की गई। सतारा नामक स्थान से सन् १८७१ मे 'सत्यशोधक' और शुभसूचक' नाम के पत्र निकलने आरम्भ हुऐ। सन् १८७५ मे बंबई से 'सत्यमित्र' पत्र भी सामने आया। इसके विषय मे यह ठीक नही कहा जा सकता कि यह पत्र हिंदी का है या मराठी का।

इस प्रदेश से सन् १८८१ में 'कवितेन्दु' नामक पत्रिका भी सामने आई। अमरावती से 'कृषि कारक' नामक किसानों का मासिक पत्र आरम्भ हुआ। इस पत्र के संपादक श्री गणेश नारायण घोड़पडे और सखाराम चिमणाजी गोले थे और प्रकाशक 'सुधारक मंडल' था। यह पत्र सन् १८९४ तक निकलता रहा और इसका वार्षिक मूल्य तीन रुपये था। बम्बई नगर से सन् १८८३ मे श्री काशीप्रसाद अवस्थी द्वारा 'व्यापार बंधु' नामक पत्र निकला, इसमे अधिकतर व्यापार सम्बन्धित सूचनायें होती थी। सन् १८९० में नागपुर से नन्हेलाल ने 'सरस्वती विलास' नामक पत्रिका निकाली। इसी समय और इसी शहर से 'गौ-रक्षा' नामक मासिक पत्रिका भी सामने आई।

सन् १८९३ में बाबू गोपालराम गहमरी ने बम्बई से 'भारत-भूषण' नाम का मासिक हिंदी पत्र निकला, इस पत्र में अधिकतर जीवन-चरित्र सम्बन्धी विचार प्रकाशित होते थे। सन् १८९४ मे बम्बई शहर से 'प्रभाकर', 'मुंबई वैभव' और 'मुराखी' नामक तीन दैनिक पत्र निकले। सन् १८९६ मे प्रकाशित होने वाला साप्ताहिक पत्र 'श्री व्यंकटेश्वर समाचार' उस समय का प्रसिद्ध पत्र था। यह पत्र साहित्यिक था और इसका आकार भी बहुत बडा था। इसके पहले सम्पादक श्री रामदास वर्मा थे। वर्मा जी के बाद बूंदी के पं० लज्जाराम शर्मा, फिर प० अमृतलाल चक्रवर्ती सम्पादक हुए। 'न्यायरत्न' मासिक पत्र नागपुर से निकलता था। १८९७ में बम्बई से 'धर्मामृत' नामक मासिक पत्रिका निकली। १९०० मे नागपुर से 'आर्यसेवक' मासिक पत्र निकला। इसके सम्पादक जी० वी० अग्रवाल थे। यह पत्रिका आज भी प्रकाशित हो रही है। तत्कालीन विदर्भ के पेंड्रा से 'छत्तीसगढ़ मित्र' १९०० मे प्रकाशित हुआ। यह एक मासिक पत्रिका थी। इसके प्रकाशक पं० वामन कलीराम लाखे और सम्पादक पं० माधवराव सप्रे तथा पं० रामराव चिचोलकर थे। परन्तु २०वी शती मे हिंदी पत्रकारिता का यह मुख्य प्रदेश है।

१० | बीसवीं सदी में हिन्दी पत्रकारिता

बीसवी सदी का आरम्भ अनेक देशी एवं विदेशी घटनाओं से होता है। देशी घटनाओं में भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम की उन्नायक संस्था अखिल भारतीय कांग्रेस में उग्रवाद का जन्म, लार्ड कर्जन की त्रुटिपूर्ण नीतियाँ, स्वदेशी आन्दोलन का आरम्भ और मुस्लिम लीग का जन्म तथा विदेशी घटनाओं में प्रमुख रूप से सन् १९०५ मे जापान द्वारा रूसियों की पराजय आदि ने भारतीय नवबौद्धिकों को झकझोर दिया। इस नवबौद्धिक वर्ग ने स्वतन्त्रता प्राप्ति और समाज-सुधार हेतु पत्रकारिता का आश्रय लिया और अनेक पत्र-पत्रिकाएँ प्रकाशित कर देश को एक नई दिशा प्रदान की, जो वास्तव में व्यवहारिक थी। समस्त भारत में राष्ट्रीय, आत्म-विश्वास और बलिदान का सागर हिलारें लेने लगा। इस शताब्दी का आरम्भ हिन्दी के प्रकांड विद्वान् आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी के आगमन से होता है।

द्विवेदी युग

सन् १९०० मे 'सरस्वती' का प्रकाशन हिन्दी पत्रकारिता जगत् में नई धारा का प्रवर्त्तन था। १९०३ मे इसका सम्पादन-भार ग्रहण करने के बाद आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने 'सरस्वती' का कायाकल्प' करके नई भाषा-शैली चलाई। अपने संपादन कौशल से द्विवेदी जी ने साहित्य जगत् मे एक नई क्रान्ति पैदा कर दी। ध्रुव तारे की भाँति हिन्दी-पत्रकारिता के मार्ग-दर्शक द्विवेदी जी ने अपनी लगन, सच्चाई, परिश्रम और त्याग के बल पर हिन्दी भाषा और साहित्य को समृद्ध और परिष्कृत किया। 'सरस्वती' के माध्यम से द्विवेदी जी ने बीसियो लेखकों को हिन्दी साहित्य क्षेत्र में आगे बढ़ाया।

'सरस्वती' का यह सौभाग्य रहा है कि उसे आचार्य द्विवेदी के बाद भी सुयोग्य, हिन्दी-प्रेमी तथा उद्धत सम्पादक मिलते रहे। पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी, पं० देवीदत्त शुक्ल, देवीदयाल चतुर्वेदी और पं० श्रीनारायण चतुर्वेदी। बीच में कुछ महीनो के लिए बन्द होने के बाद 'सरस्वती' फिर निकलने लगी है।

सन् १९०१ में निकले, पत्रों मे 'समालोचक' का विशिष्ट स्थान है यह अनेक भाषाओं के प्रकाड विद्वान पं० चन्द्रधर शर्मा गुलेरी के सम्पादन में निकला 'समालोचक' बड़ा सारगर्भित पत्र था। गुलेरी जी की अनूठी शैली और प्रतिभा की छाप के कारण अल्पायु होते हुए भी यह पत्र स्मरणीय है।

सन् १९०३ में कलकत्ता से 'हितवार्ता' साप्ताहिक निकला जिसमे पं० गोविंद नारायण मिश्र के लेख 'विभक्ति विचार' और 'प्राकृत विचार' प्रकाशित हुए थे। उन्ही के कारण मिश्र जी हिन्दी जगत् में प्रसिद्ध हुए है। १९०४ मे ब्राह्मण-अब्राह्मण संघर्ष के परिणामस्वरूप पं० भीमसेन शर्मा ने आर्य समाज से अलग होकर 'ब्राह्मण सर्वस्व' तेजस्वी पत्र निकाला। १९०५ मे प्रकाशित पत्रो मे विष्णु दिगम्बर पलुस्कर का पत्र 'संगीतामृत प्रवाह' उल्लेखनीय है। लाहौर से निकले इस पत्र के संपादक पं० ठाकुर श्रीधर थे।

सन् १९०७ हिन्दी-पत्रकारिता के इतिहास मे महत्वपूर्ण वर्ष है। उस वर्ष उत्तर-प्रदेश की राजनीति में जाग्रति लाने वाला साप्ताहिक 'अभ्युदय' प्रयाग से निकला जिसके संपादक पं० मदनमोहन मालवीय थे। बाद मे बाबू पुरुषोत्तमदास टंडन और फिर पं० कृष्णकांत मालवीय भी इसके संपादक बने।

इसी वर्ष लोकमान्य तिलक ने 'केसरी' का हिन्दी सस्करण 'हिन्दी केसरी' नाम से प्रकाशित किया। आगे चलकर लोकमान्य तिलक पर राजद्रोह का मुकदमा चला और उन्हें सजा हो गई तो इस पत्र के संपादक ने सरकार से माफी मांग ली। इससे दुखी होकर लोकमान्य तिलक ने 'हिन्दी केसरी' को बंद कर दिया। सन् १९०७ मे ही संपादकाचार्य पं० अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी ने कलकत्ते से 'नृसिंह' मासिक निकाला। 'नृसिंह' उग्रराष्ट्रीयता का समर्थक शुद्ध राजनैतिक पत्र था जिसका जीवन अल्पकालीन ही रहा। 'एक लिपि विस्तार परिषद्' की स्थापना और 'देवनागर' पत्र का प्रकाशन भारतीय सांस्कृतिक इतिहास की महत्वपूर्ण घटना है। १९०७ में ही 'देवनागर' नामक भारतीय चित्र, विचित्र भाषाओ के लेखों से विभूषित एक अद्वितीय सचित्र मासिक श्री यशोदानन्दन अखोरी के संपादन मे निकला। 'देवनागर' का प्रकाशन भारतीय पत्रकारिता में एक सशक्त नवीन प्रयोग था। यह पत्रिका मूलतः सांस्कृतिक थी।

श्री अरविन्द घोष के 'कर्म योगिन' से प्रेरित होकर सन् १९०९ में प्रयाग से 'कर्मयोगी' साप्ताहिक का प्रकाशन हुआ। इस पत्र को पढने के कारण अनेक विद्यार्थी स्कूल-कालेजों से निकाल दिए गए और इसी पत्र को पढने से स्व० गणेशशंकर विद्यार्थी को भी नौकरी छोडनी पडी थी। अल्पकाल में ही 'कर्मयोगी' के तीन सम्पादकों को लम्बी सजाएँ देने पर भी जब पत्र चलता रहा तो सरकार ने लम्बी जमानत मांग कर इसका प्रकाशन बन्द कर दिया।

हिन्दी साहित्य की दो अन्य महत्वपूर्ण पत्रिकाओ 'इन्दु' और 'मर्यादा' का प्रकाशन भी सन् १९०९ में ही आरम्भ हुआ। 'इन्दु' का प्रकाशन काशी से जयशंकर प्रसाद ने किया, जिसके संपादक श्री अम्बिकाप्रसाद गुप्त थे। इसी के द्वारा प्रसाद जी

१० | बीसवीं सदी में हिन्दी पत्रकारिता

बीसवी सदी का आरम्भ अनेक देशी एवं विदेशी घटनाओं से होता है। देशी घटनाओं में भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम की उन्नायक संस्था अखिल भारतीय काग्रेस मे उग्रवाद का जन्म, लार्ड कर्जन की त्रुटिपूर्ण नीतियाँ, स्वदेशी आन्दोलन का आरम्भ और मुस्लिम लीग का जन्म तथा विदेशी घटनाओं मे प्रमुख रूप से सन् १९०५ मे जापान द्वारा रूसियो की पराजय आदि ने भारतीय नवबौद्धिको को झकझोर दिया। इस नवबौद्धिक वर्ग ने स्वतन्त्रता प्राप्ति और समाज-सुधार हेतु पत्रकारिता का आश्रय लिया और अनेक पत्र-पत्रिकाएँ प्रकाशित कर देश को एक नई दिशा प्रदान की, जो वास्तव मे व्यवहारिक थी। समस्त भारत में राष्ट्रीय, आत्म-विश्वास और बलिदान का सागर हिलारें लेने लगा। इस शताब्दी का आरम्भ हिन्दी के प्रकाड विद्वान् आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी के आगमन से होता है।

द्विवेदी युग

सन् १९०० मे 'सरस्वती' का प्रकाशन हिन्दी पत्रकारिता जगत् मे नई धारा का प्रवर्त्तन था। १९०३ मे इसका सम्पादन-भार ग्रहण करने के बाद आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने 'सरस्वती' का कायाकल्प' करके नई भाषा-शैली चलाई। अपने संपादन कौशल से द्विवेदी जी ने साहित्य जगत् मे एक नई क्रान्ति पैदा कर दी। ध्रुव तारे की भाँति हिन्दी-पत्रकारिता के मार्ग-दर्शक द्विवेदी जी ने अपनी लगन, सच्चाई, परिश्रम और त्याग के बल पर हिन्दी भाषा और साहित्य को समृद्ध और परिष्कृत किया। 'सरस्वती' के माध्यम से द्विवेदी जी ने बीसियो लेखको को हिन्दी साहित्य क्षेत्र मे आगे बढाया।

'सरस्वती' का यह सौभाग्य रहा है कि उसे आचार्य द्विवेदी के बाद भी सुयोग्य, हिन्दी-प्रेमी तथा उद्भत सम्पादक मिलते रहे। पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी, पं० देवीदत्त शुक्ल, देवीदयाल चतुर्वेदी और पं० श्रीनारायण चतुर्वेदी। बीच में कुछ महीनों के लिए बन्द होने के बाद 'सरस्वती' फिर निकलने लगी है।

सन् १६०१ में निकले, पत्रो मे 'समालोचक' का विशिष्ट स्थान है यह अनेक भाषाओ के प्रकाड विद्वान पं० चन्द्रधर शर्मा गुलेरी के सम्पादन मे निकला 'समालोचक' बड़ा सारगर्भित पत्र था। गुलेरी जी की अनूठी शैली और प्रतिभा की छाप के कारण अल्पायु होते हुए भी यह पत्र स्मरणीय है।

सन् १६०३ में कलकत्ता से 'हितवार्ता' साप्ताहिक निकला जिसमे पं० गोविंद नारायण मिश्र के लेख 'विभक्ति विचार' और 'प्राकृत विचार' प्रकाशित हुए थे। उन्ही के कारण मिश्र जी हिन्दी जगत् मे प्रसिद्ध हुए है। १६०४ मे ब्राह्मण-अब्राह्मण संघर्ष के परिणामस्वरूप पं० भीमसेन शर्मा ने आर्य समाज से अलग होकर 'ब्राह्मण सर्वस्व' तेजस्वी पत्र निकाला। १६०५ में प्रकाशित पत्रो मे विष्णु दिगम्बर पलुस्कर का पत्र 'संगीतामृत प्रवाह' उल्लेखनीय है। लाहौर से निकले इस पत्र के सपादक पं० ठाकुर श्रीधर थे।

सन् १६०७ हिन्दी-पत्रकारिता के इतिहास मे महत्त्वपूर्ण वर्ष है। उस वर्ष उत्तर-प्रदेश की राजनीति में जाग्रति लाने वाला साप्ताहिक 'अभ्युदय' प्रयाग से निकला जिसके संपादक पं० मदनमोहन मालवीय थे। बाद मे बाबू पुरुषोत्तमदास टडन और फिर पं० कृष्णकात मालवीय भी इसके संपादक बने।

इसी वर्ष लोकमान्य तिलक ने 'केसरी' का हिन्दी संस्करण 'हिन्दी केसरी' नाम से प्रकाशित किया। आगे चलकर लोकमान्य तिलक पर राजद्रोह का मुकदमा चला और उन्हे सजा हो गई तो इस पत्र के संपादक ने सरकार से माफी माँग ली। इससे दुखी होकर लोकमान्य तिलक ने 'हिन्दी केसरी' को बंद कर दिया। सन् १६०७ मे ही सपादकाचार्य पं० अम्बिकाप्रसाद बाजपेयी ने कलकत्ते से 'नृसिंह' मासिक निकाला। 'नृसिंह' उग्रराष्ट्रीयता का समर्थक शुद्ध राजनैतिक पत्र था जिसका जीवन अल्पकालीन ही रहा। 'एक लिपि विस्तार परिषद्' की स्थापना और 'देवनागर' पत्र का प्रकाशन भारतीय सास्कृतिक इतिहास की महत्त्वपूर्ण घटना है। १६०७ मे ही 'देवनागर' नामक भारतीय चित्र, विचित्र भाषाओं के लेखो से विभूषित एक अद्वितीय सचित्र मासिक श्री यशोदानन्दन अखोरी के संपादन मे निकला। 'देवनागर' का प्रकाशन भारतीय पत्रकारिता मे एक सशक्त नवीन प्रयोग था। यह पत्रिका मूलतः सांस्कृतिक थी।

श्री अरविन्द घोप के 'कर्म योगिन' से प्रेरित होकर सन् १६०६ में प्रयाग से 'कर्मयोगी' साप्ताहिक का प्रकाशन हुआ। इस पत्र को पढने के कारण अनेक विद्यार्थी स्कूल-कालेजो से निकाल दिए गए और इसी पत्र को पढने से स्व० गणेशशंकर विद्यार्थी को भी नौकरी छोडनी पड़ी थी। अल्पकाल में ही 'कर्मयोगी' के तीन सम्पादकों को लम्बी सजाएँ देने पर भी जब पत्र चलता रहा तो सरकार ने लम्बी जमानत माँग कर इसका प्रकाशन बन्द कर दिया।

हिन्दी साहित्य की दो अन्य महत्त्वपूर्ण पत्रिकाओ 'इन्दु' और 'मर्यादा' का प्रकाशन भी सन् १६०६ मे ही आरम्भ हुआ। 'इन्दु' का प्रकाशन काशी मे जयशंकर प्रसाद ने किया, जिसके संपादक श्री अम्बिकाप्रसाद गुप्त थे। इसी के द्वारा प्रसाद जी

१० | बीसवीं सदी में हिन्दी पत्रकारिता

बीसवी सदी का आरम्भ अनेक देशी एवं विदेशी घटनाओ से होता है। देशी घटनाओं मे भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम की उन्नायक संस्था अखिल भारतीय काग्रेस मे उग्रवाद का जन्म, लार्ड कर्जन की त्रुटिपूर्ण नीतियाँ, स्वदेशी आन्दोलन का आरम्भ और मुस्लिम लीग का जन्म तथा विदेशी घटनाओं में प्रमुख रूप से सन् १६०५ में जापान द्वारा रूसियों की पराजय आदि ने भारतीय नवबौद्धिकों को झकझोर दिया। इस नवबौद्धिक वर्ग ने स्वतन्त्रता प्राप्ति और समाज-सुधार हेतु पत्रकारिता का आश्रय लिया और अनेक पत्र-पत्रिकाएँ प्रकाशित कर देश को एक नई दिशा प्रदान की, जो वास्तव में व्यवहारिक थी। समस्त भारत मे राष्ट्रीय, आत्म-विश्वास और बलिदान का सागर हिलारें लेने लगा। इस शताब्दी का आरम्भ हिन्दी के प्रकांड विद्वान् आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी के आगमन से होता है।

द्विवेदी युग

सन् १६०० मे 'सरस्वती' का प्रकाशन हिन्दी पत्रकारिता जगत् में नई धारा का प्रवर्त्तन था। १६०३ मे इसका सम्पादन-भार ग्रहण करने के बाद आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने 'सरस्वती' का कायाकल्प' करके नई भाषा-शैली चलाई। अपने संपादन कौशल से द्विवेदी जी ने साहित्य जगत् में एक नई क्रान्ति पैदा कर दी। ध्रुव तारे की भाँति हिन्दी-पत्रकारिता के मार्ग-दर्शक द्विवेदी जी ने अपनी लगन, सच्चाई, परिश्रम और त्याग के बल पर हिन्दी भाषा और साहित्य को समृद्ध और परिष्कृत किया। 'सरस्वती' के माध्यम से द्विवेदी जी ने बीसियों लेखकों को हिन्दी साहित्य क्षेत्र में आगे बढ़ाया।

'सरस्वती' का यह सौभाग्य रहा है कि उसे आचार्य द्विवेदी के बाद भी सुयोग्य, हिन्दी-प्रेमी तथा उद्भट सम्पादक मिलते रहे। पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी, प० देवीदत्त शुक्ल, देवीदयाल चतुर्वेदी और पं० श्रीनारायण चतुर्वेदी। बीच में कुछ महीनों के लिए बन्द होने के बाद 'सरस्वती' फिर निकलने लगी है।

सन् १६०१ में निकले, पत्रों में 'समालोचक' का विशिष्ट स्थान है यह अनेक भाषाओं के प्रकाड विद्वान पं० चन्द्रधर शर्मा गुलेरी के सम्पादन में निकला 'समालोचक' बड़ा सारगर्भित पत्र था। गुलेरी जी की अनूठी शैली और प्रतिभा की छाप के कारण अल्पायु होते हुए भी यह पत्र स्मरणीय है।

सन् १६०३ में कलकत्ता से 'हितवार्ता' साप्ताहिक निकला जिसमें पं० गोविंद नारायण मिश्र के लेख 'विभक्ति विचार' और 'प्राकृत विचार' प्रकाशित हुए थे। उन्हीं के कारण मिश्र जी हिन्दी जगत् में प्रसिद्ध हुए हैं। १६०४ में ब्राह्मण-अब्राह्मण संघर्ष के परिणामस्वरूप पं० भीमसेन शर्मा ने आर्य समाज से अलग होकर 'ब्राह्मण सर्वस्व' तेजस्वी पत्र निकाला। १६०५ में प्रकाशित पत्रों में विष्णु दिगम्बर पलुस्कर का पत्र 'संगीतामृत प्रवाह' उल्लेखनीय है। लाहौर से निकले इस पत्र के संपादक पं० ठाकुर श्रीधर थे।

सन् १६०७ हिन्दी-पत्रकारिता के इतिहास में महत्त्वपूर्ण वर्ष है। उस वर्ष उत्तर-प्रदेश की राजनीति में जाग्रति लाने वाला साप्ताहिक 'अभ्युदय' प्रयाग से निकला जिसके संपादक पं० मदनमोहन मालवीय थे। बाद में बाबू पुरुषोत्तमदास टंडन और फिर पं० कृष्णकांत मालवीय भी इसके संपादक बने।

इसी वर्ष लोकमान्य तिलक ने 'केसरी' का हिन्दी संस्करण 'हिन्दी केसरी' नाम से प्रकाशित किया। आगे चलकर लोकमान्य तिलक पर राजद्रोह का मुकदमा चला और उन्हें सजा हो गई तो इस पत्र के संपादक ने सरकार से माफी माँग ली। इससे दुखी होकर लोकमान्य तिलक ने 'हिन्दी केसरी' को बंद कर दिया। सन् १६०७ में ही सपादकाचार्य पं० अम्बिकाप्रसाद बाजपेयी ने कलकत्ते से 'नृसिंह' मासिक निकाला। 'नृसिंह' उग्रराष्ट्रीयता का समर्थक शुद्ध राजनैतिक पत्र था जिसका जीवन अल्पकालीन ही रहा। 'एक लिपि विस्तार परिषद्' की स्थापना और 'देवनागर' पत्र का प्रकाशन भारतीय सास्कृतिक इतिहास की महत्त्वपूर्ण घटना है। १६०७ में ही 'देवनागर' नामक भारतीय चित्र, विविध भाषाओं के लेखों से विभूषित एक अद्वितीय सचित्र मासिक श्री यशोदानन्दन अखोरी के संपादन में निकला। 'देवनागर' का प्रकाशन भारतीय पत्रकारिता में एक सशक्त नवीन प्रयोग था। यह पत्रिका मूलतः सास्कृतिक थी।

श्री अरविन्द घोष के 'कर्म योगिन' से प्रेरित होकर सन् १६०६ में प्रयाग से 'कर्मयोगी' साप्ताहिक का प्रकाशन हुआ। इस पत्र को पढ़ने के कारण अनेक विद्यार्थी स्कूल-कालेजों से निकाल दिए गए और इसी पत्र को पढ़ने से स्व० गणेशशंकर विद्यार्थी को भी नौकरी छोड़नी पड़ी थी। अल्पकाल में ही 'कर्मयोगी' के तीन सम्पादकों को लम्बी सजाएँ देने पर भी जब पत्र चलता रहा तो सरकार ने लम्बी जमानत माँग कर इसका प्रकाशन बन्द कर दिया।

हिन्दी साहित्य की दो अन्य महत्त्वपूर्ण पत्रिकाओं 'इन्दु' और 'मर्यादा' का प्रकाशन भी सन् १६०६ में ही आरम्भ हुआ। 'इन्दु' का प्रकाशन काशी से जयशंकर प्रसाद ने किया, जिसके संपादक श्री अम्बिकाप्रसाद गुप्त थे। इसी के द्वारा प्रसाद जी

साहित्य जगत में अवतीर्ण हुए। इस साहित्यिक पत्रिका से ही छायावादिता की मूल प्रवृत्ति सामने आई।

'मर्यादा' मासिक का प्रकाशन महामना मालवीय जी की प्रेरणा से प्रयाग में हुआ। इसके संपादक पं० कृष्णकांत मालवीय थे जिसमें राजनैतिक लेख खुलकर निकलते थे। हिन्दू विश्वविद्यालय की परिकल्पना सबसे पहले 'मर्यादा' में ही निकली थी। बाद में यह पत्रिका काशी से निकलने लगी जिसका सपादन कुछ समय तक बाबू श्री प्रकाश और डॉ० सम्पूर्णनन्द ने भी किया।

शाहाबाद से सन् १९१२ में पं० ईश्वरीप्रसाद शर्मा ने 'मनोरंजन' मासिक निकाला। यह शुद्ध साहित्यिक पत्र अपने समय में बड़ा ही लोकप्रिय था।

सन् १९१३ का सबसे महत्त्वपूर्ण प्रकाशन है 'प्रताप'। जिसे अमर शहीद गणेशशंकर विद्यार्थी ने अपने कुछ मित्रों के सहयोग से निकाला। 'प्रताप' का लक्ष्य ही स्वाभिमान तथा उसकी स्वाधीनता के लिए सर्वस्व न्यौछावर करने वाले कार्यकर्ता पैदा करना था। विद्यार्थी जी ने 'रामप्रसाद 'बिस्मिल', चन्द्रशेखर आजाद और भगतसिंह आदि क्रांतिकारी नेताओं का बराबर पोषण किया। 'प्रताप' किसान आंदोलन का समर्थक था। किसानो के पक्ष-पोषण के कारण ही विद्यार्थी जी को कारावास का दंड मिला। 'प्रताप' बाद में दैनिक हो गया।

अप्रैल १९१३ मे ही खंडवा से 'प्रभा' नामक मासिक निकला। १९१७ मे इसका प्रकाशन कानपुर के प्रताप प्रेस से होने लगा। तभी से यह विविध विषय सपन्न सचित्र राजनैतिक मासिक पत्रिका हो गई। इसके सपादक गणेशशंकर विद्यार्थी बाद मे श्री कृष्णदत्त पालीवाल, सन् १९२३ मे पं० माखनलाल चतुर्वेदी और बाद में पं० बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' हुए। सन् १९१४ मे डॉ० काशीप्रसाद जायसवाल के सपादन में विद्वत्तापूर्ण एवं सुसंपादित 'पाटली पुत्र' साप्ताहिक निकाला।

द्विवेदी-युग की विशेषता यह रही कि हिन्दी पत्रों ने साहित्य, धर्म और समाज की तुलना में राजनीति पर अधिक ध्यान देना आरम्भ किया।

गांधी युग

गांधी जी के व्यक्तित्व और नेतृत्व से हिंदी-पत्रकारिता को बढने का अवसर प्राप्त हुआ। वे स्वयं भी एक प्रतिभाशाली पत्रकार थे। उन्होंने 'यंग इण्डिया', नवजीवन', तथा 'हरिजन' नामक पत्र निकालकर, पत्रकारिता के विकास मे उल्लेखनीय योगदान प्रदान किया। इन पत्रो में छपा एक-एक शब्द राष्ट्र के लिए आदर्श सिद्धात बन गया था। इनकी प्रेरणा से अनेक हिंदी पत्र-पत्रिकाएँ प्रकाशित हुई। इनके युग की विशेषता यह थी कि साहित्यिक पत्रकारिता राजनैतिक पत्रकारिता से भिन्न बन गई थी और हिन्दी-पत्रकारिता को साम्यवादी एवं समाजवादी प्रवृत्तियाँ प्रभावित कर रही थी।

सन् १९२० मे जबलपुर से पं० माखनलाल चतुर्वेदी ने 'कर्मवीर' साप्ताहिक को

जन्म दिया, जो कुछ दिनों के पश्चात् खंडवा चला गया। यह पत्र राजनीति में गर्म दल का समर्थक था और अंग्रेजी शासन का कोप सहन करते हुए भी राष्ट्र के तन-मन-प्राण मे स्वतन्त्रता की अखंड ज्योति प्रज्ज्वलित की। इसी वर्ष ज्ञान मंडल काशी से अर्थशास्त्र की एक मासिक पत्रिका 'स्वार्थ' भी सामने आई।

१९२१ मे गांधी जी के गुजराती 'नवजीवन' का हिंदी रूपान्तर 'हिन्दी नवजीवन' प्रकाशित हुआ और इसके सम्पादक जमनालाल बजाज हुआ करते थे। गाधी जी के 'यंग इण्डिय' का हिन्दी रूप 'तरुण भारत' था जिसका सम्पादन पं० मथुराप्रसाद दीक्षित किया करते थे।

जुलाई १९२२ में 'माधुरी' जिसका सपादन दुलारेलाल भार्गव तथा रूपनारायण पाडेय किया करते थे, निकली। यह एक साहित्यिक मासिक पत्रिका थी, जिसका हिंदी साहित्य में विशेष स्थान था। इसके सपादक मुशी प्रेमचन्द्र, पं० कृष्णबिहारी, सूर्यकात त्रिपाठी 'निराला' और शिवपूजन सहाय आदि थे। सामाजिक सुधारो से ओत-प्रोत 'चांद' मासिक पत्रिका का शुभारम्भ नवम्बर १९२२ मे हुआ। कुछ दिनों के पश्चात् इसमें राजनैतिक सामग्री भी प्रकाशित होने लगी। इसी वर्ष रामकृष्ण मिशन के तत्वावधान मे स्वामी माधवानन्द के सम्पादकत्व में कलकत्ते से 'समन्वय' मासिक पत्रिका, जिसमें धार्मिक, आध्यात्मिक, सामाजिक के साथ-साथ साहित्यिक सामग्री भी प्रकाशित होती थी।

कलकत्ता की पवित्र भूमि से सन् १९२३ मे 'मतवाला' साप्ताहिक पत्रिका ने जन्म लिया। इस पत्रिका मे उदीयमान साहित्यकारो—महाकवि निराला, उग्र जी, शिवपूजन सहाय आदि के साहित्यिक लेख एवं कविताएँ प्रकाशित होती थी।

सन् १९२४ मे गाधी जी का असहयोग आदोलन समाप्त हो गया, परन्तु १९२४-२५ में अनेक पत्र-पत्रिकाएँ निकली जिनमे सबसे अधिक प्रभावशाली और लोकप्रिय था आगरे से निकलने वाला साप्ताहिक 'सैनिक' जिसके सम्पादक गणेशशंकर विद्यार्थी हुआ करते थे। यह पत्र राजनैतिक प्रधान पत्र था। हिंदू धर्म के ज्ञान तथा भक्ति का प्रतिनिधित्व करने वाला 'कल्याण' सन् १९२५ मे प्रकाशित हुआ। इसके सम्पादक श्री हनुमानप्रसाद पोद्दार थे जो आजीवन इसके सम्पादक रहे।

सन् १९२६ में भी अनेक प्रभावशाली पत्र निकले। कलकत्ता से साप्ताहिक 'हिन्दूपंच' प्रकाशित हुआ। यह पत्र हिन्दू विचारधारा का पोषक और समर्थक था। इसी वर्ष और इस स्थान से 'सेनापति' प० रामगोविन्द द्विवेदी के सम्पादकत्व मे प्रकाशित हुआ। दिल्ली से रामचन्द्र वर्मा के सम्पादन मे 'महारथी' निकला। इसमे राजनैतिक और सामाजिक समस्याओ पर अधिकतर लेख प्रकाशित होते थे। इसी वर्ष 'बालक' नामक मासिक पत्रिका को श्री रामलोचनशरण ने प्रकाशित किया।

'माधुरी' से हटकर १९२७ मे श्री दुलारेलाल भार्गव ने लखनऊ से ही 'सुधा' नामक पत्रिका का प्रकाशन आरम्भ किया। साहित्यिक पत्रिका के रूप में निकली

स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी पत्रकारिता

स्वातंत्र्य आन्दोलन से आलोकित जन-मानस के लिए देश की आजादी एक नया मोड़ लाई। स्वतन्त्रता के बाद पत्रकारिता की दृष्टि से सबसे महत्त्वपूर्ण एवं उल्लेखनीय बात यह हुई कि लोकतन्त्र की स्थापना के बाद आयोजित आर्थिक विकास का उद्देश्य सफल बनाने के लिए आर्थिक प्रयत्नो मे जनता को साझीदार बनाने के लिए जनता तक उसकी भाषा में पहुँचने और उसको समझाने-समझने की आवश्यकता स्पष्ट अनुभव की गई। सत्ता के इस दृष्टिकोण के कारण इस कार्य की पूँजी का सहायक होना सरल हो गया और पत्रकारिता सम्मानजनक जीवन जीने योग्य व्यवसाय बन गई। हिन्दी में विविध विषयों की कुछ पत्रिकाओ का यहाँ उल्लेख आवश्यक है, जो विषयानुसार नीचे किया जाएगा।

राजनैतिक पत्रिकाएँ

देश मे कुल पत्रिकाओ की लगभग ५० प्रतिशत पत्रिकाओं का स्वर राजनैतिक होता है। फिर भी उत्तम राजनैतिक पत्रिकाएं कम ही हैं। कुछ राजनैतिक पत्रिकाएं हैं—'अव्यक्त' (कलकत्ता), हिन्दी ब्लिट्ज' (बम्बई), 'जन' (दिल्ली) 'जनयुग' (दिल्ली), 'सोशलिस्ट पैनरैमा' (दिल्ली), 'साक्षी (दिल्ली), 'दशादिशा' (दिल्ली), 'विकास' (सहारनपुर) 'दिनमान' (दिल्ली), 'लोकमान्य' (कलकत्ता), 'नयाजीवन' (सहारनपुर), 'लोकराज' (दिल्ली), 'पाचजन्य' (लखनऊ), 'लोकतन्त्र समीक्षा' (दिल्ली)' 'प्रजा सेवक' (जोधपुर)।

इनमे सबसे अच्छा पत्र 'दिनमान' है। जन अच्छा राजनैतिक मासिक था, जो डॉ० राममनोहर लोहिया की मृत्यु के बाद न चल सका। जार्ज फर्नान्डीज का 'प्रतिपक्ष' भी अच्छा निकला था जो बन्द हो गया। वामपक्षी धारा का पत्र 'मुक्तधारा' भी कुछ दिन निकलकर बन्द हो गया। 'दिनमान' के बाद 'लोकराज' अच्छी सामग्री दे रहा है।

साहित्यिक पत्रिकाएँ

साहित्यिक पत्रिकाओं में भी विविध विधाओं की पत्रिकाएँ निकली। 'कविता', 'कविताएँ', 'काव्य दृष्टि', 'नई कविता' 'अन्तराल', 'हम', 'अनास्था' तथा 'निकष', आदि पत्रिकाएँ केवल कविता पत्रिकाएँ थी। 'नटरंग' नाटक विधा की ओर 'अभीक', 'बुलबुल', ठिठोली', 'दीवानातेज', 'मसखरा', 'रंग', 'रंग चकल्लस', 'लोटपोट', व्यंग्य', 'हास्य-कलश', और 'हिन्दी शंकर्स वीकली' हास्य व्यंग्य की पत्रिकाएँ थीं। 'आलोचना', 'चाणक्य', 'दृष्टिकोण', 'प्रकर' 'समीक्षा' 'समीक्षालोक' 'साहित्यलोचन' आदि समीक्षा की ओर 'अनुसंधान', 'अभिनव भारती', 'गवेषणा', 'परंपरा', 'परिशोध', 'परिषद पत्रिका', 'भारतीय साहित्य', 'मरु भारती', 'राजस्थान भारती', 'लोक साहित्य', 'विश्व भारती पत्रिका', 'वैचारिकी', 'शोध-पत्रिका' 'शोध भारती', 'संभावना', 'साहित्य मार्ग', 'सम्मेलन पत्रिका', 'हिन्दी अनुशीलन' आदि शोधपरक हिन्दी साहित्य की पत्रिका रही हैं।

पत्रिकाएँ सामाजिक एवं राजनैतिक सामग्री प्रधान हो गईं। इसमें उच्चकोटि के साहित्यिक, सामाजिक और धार्मिक विषयों पर लेख रहते थे।

सस्ता साहित्य मंडल, अजमेर के गाँधीवादी विचारधारा तथा खादी कार्य का राजपूताना में प्रचार करने के लिए श्री हरीभाऊ उपाध्याय तथा श्री क्षेमानन्द 'राहत' के संपादन में, त्याग भूमि' मासिक निकला। 'प्रभा' के बाद राजनैतिक पत्रिका का अभाव 'त्याग भूमि' ने पूरा किया। इसके संपादकीय मुख्यतः राजनैतिक होते थे इसलिए उनका ऐतिहासिक महत्त्व था। तत्कालीन हिन्दी पत्रिकाओं में 'त्याग भूमि' का विशिष्ट स्थान था।

समसामयिक साहित्य पर प्रभाव डालने तथा लेखक वर्ग पैदा करने की दृष्टि से 'विशाल भारत' का स्थान सरस्वती के पश्चात् आता है। इसका प्रकाशन जनवरी १९२८ मे श्री रामानन्द चट्टोपाध्याय ने कलकत्ते से आरम्भ किया। पं० बनारसीदास चतुर्वेदी एक लम्बे समय तक इसके सम्पादक रहे। इस पत्र ने साहित्य के क्षेत्र में सराहनीय कार्य किया। इसी वर्ष मध्य भारत हिंदी साहित्य समिति, इंदौर की ओर से 'वीणा' मासिक पत्रिका निकली, जिसके सम्पादक पं० कालकाप्रसाद दीक्षित थे। यह भी साहित्यिक मासिक पत्रिका थी।

जनवरी १९२९ मे पटना से 'शक्ति' मासिक पत्रिका श्री रामवृक्ष के सम्पादकत्व मे निकली। सन् १९३० मे रामानुजलाल श्रीवास्तव ने 'प्रेमा' नामक साहित्यिक पत्रिका को निकाला। इसी वर्ष उपन्यास सम्राट् मुंशी प्रेमचन्द ने काशी से 'हंस' नामक एक क्रांतिकारी पत्र का प्रकाशन किया। इस पत्र ने साहित्यिक क्षेत्र में एक नई दिशा प्रदान की। बम्बई से भी 'हंस' कुछ दिनों मुन्शी प्रेमचन्द्र और क० मा० मुंशी के संयुक्त सम्पादन मे निकला।

सन् १९३१ मे हिन्दुस्तानी अकादमी ने त्रैमासिक 'हिन्दुस्तानी' प्रयाग से निकाला। यह हिंदी और उर्दू मे निकलती थी। इसमे उच्चकोटि के विद्वानों के लेख प्रकाशित होते थे। कठिन राजनैतिक परिस्थितियों के होने पर विनोदशंकर व्यास द्वारा 'जागरण' पाक्षिक निकाला गया तथा इसके सम्पादक शिवपूजन सहाय हुआ करते थे। इस पत्र को उच्चकोटि के साहित्यकारों का समर्थन प्राप्त था।

इस युग के कुछ अन्य पत्र थे, 'हरिजन सेवक' 'योगी' (पटना), 'नव शक्ति' (पटना), 'नालंदा' (पटना), 'जनता' (पटना), 'देशदूत', 'आरती' और और 'अग्रदूत' 'विश्ववाणी' (कलकत्ता), 'दीदी' (प्रयाग), साहित्य 'साहित्य, संदेश' (आगरा), 'श्याम' (कालाकांकर) 'सर्वोदय' (वर्धा), 'विश्वभारती' (शांतिनिकेतन), 'संघर्ष' (लखनऊ)।

'विशाल भारत' से टीकमगढ़ जाने के बाद पं० बनारसीदास चतुर्वेदी ने हिन्दी बोलियों का प्रमुख मासिक 'मधुकर' निकाला। लगभग इसी समय जेल से निकलकर सुप्रसिद्ध क्रान्तिकारी (अब स्व०) यशपाल ने 'विप्लव' नामक मासिक लखनऊ से निकाला। इनके अलावा भी अन्य अनेक अच्छी पत्रिकाएँ भी इस युग में निकली।

स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी पत्रकारिता

स्वातंत्र्य आन्दोलन से आलोकित जन-मानस के लिए देश की आजादी एक नया मोड़ लाई। स्वतन्त्रता के बाद पत्रकारिता की दृष्टि से सबसे महत्त्वपूर्ण एवं उल्लेखनीय बात यह हुई कि लोकतन्त्र की स्थापना के बाद आयोजित आर्थिक विकास का उद्देश्य सफल बनाने के लिए आर्थिक प्रयत्नों में जनता को साझीदार बनाने के लिए जनता तक उसकी भाषा में पहुँचने और उसको समझाने-समझने की आवश्यकता स्पष्ट अनुभव की गई। सत्ता के इस दृष्टिकोण के कारण इस कार्य की पूँजी का सहायक होना सरल हो गया और पत्रकारिता सम्मानजनक जीवन जीने योग्य व्यवसाय बन गई। हिन्दी में विविध विषयों की कुछ पत्रिकाओं का यहाँ उल्लेख आवश्यक है, जो विषयानुसार नीचे किया जाएगा।

राजनैतिक पत्रिकाएँ

देश मे कुल पत्रिकाओं की लगभग ५० प्रतिशत पत्रिकाओं का स्वर राजनैतिक होता है। फिर भी उत्तम राजनैतिक पत्रिकाएं कम ही हैं। कुछ राजनैतिक पत्रिकाएं हैं—'अव्यक्त' (कलकत्ता), हिन्दी ब्लिट्ज' (बम्बई), 'जन' (दिल्ली) 'जनयुग' (दिल्ली), 'सोशलिस्ट पैनारेमा' (दिल्ली), 'साक्षी' (दिल्ली), 'दशादिशा' (दिल्ली), 'विकास' (सहारनपुर) 'दिनमान' (दिल्ली), 'लोकमान्य' (कलकत्ता), 'नयाजीवन' (सहारनपुर), 'लोकराज' (दिल्ली), 'पांचजन्य' (लखनऊ), 'लोकतन्त्र समीक्षा' (दिल्ली)' 'प्रजा सेवक' (जोधपुर)।

इनमें सबसे अच्छा पत्र 'दिनमान' है। जन अच्छा राजनैतिक मासिक था, जो डॉ० राममनोहर लोहिया की मृत्यु के बाद न चल सका। जार्ज फर्नान्डीज का 'प्रतिपक्ष' भी अच्छा निकला था जो बन्द हो गया। वामपक्षी धारा का पत्र 'मुक्तधारा' भी कुछ दिन निकलकर बन्द हो गया। 'दिनमान' के बाद 'लोकराज' अच्छी सामग्री दे रहा है।

साहित्यिक पत्रिकाएँ

साहित्यिक पत्रिकाओं मे भी विविध विधाओं की पत्रिकाएँ निकलीं। 'कविता', 'कविताएँ', 'काव्य दृष्टि', 'नई कविता' 'अन्तराल', 'हम', 'अनास्था' तथा 'निकष', आदि पत्रिकाएँ केवल कविता पत्रिकाएँ थीं। 'नटरंग' नाटक विधा की ओर 'अभीक', 'बुलबुल', ठिठोली', 'दीवानातेज', 'मसखरा', 'रंग', 'रंग चकल्लस', 'लोटपोट', व्यंग्य', 'हास्य-कलश', और 'हिन्दी शंकर्स वीकली' हास्य व्यंग्य की पत्रिकाएँ थीं। 'आलोचना', 'चाणक्य', 'दृष्टिकोण', 'प्रकर' 'समीक्षा' 'समीक्षालोक' 'साहित्यलोचन' आदि समीक्षा की ओर 'अनुसंधान', 'अभिनव भारती', 'गवेषणा', 'परंपरा', 'परिशोध', 'परिषद पत्रिका', 'भारतीय साहित्य', 'मरु भारती', 'राजस्थान भारती', 'लोक साहित्य', 'विश्व भारती पत्रिका', 'वैचारिकी', 'शोध-पत्रिका' 'शोध भारती', 'संभावना', 'साहित्य मार्ग', 'सम्मेलन पत्रिका', 'हिन्दी अनुशीलन' आदि शोधपरक हिन्दी साहित्य की पत्रिका रही हैं।

'अणिमा' (जयपुर)' अन्तर्राष्ट्रीय कहानियाँ (लखनऊ), 'आवेश' (दिल्ली), 'कथायन' '(पिलानी), 'कथालोक' (दिल्ली), 'कहानी' (इलाहाद)' 'कहानीकार' (वाराणसी), गल्प भारती' (कलकत्ता), 'कई कहानियाँ' (इलाहाद), 'नागफनी' (कलकत्ता), 'नीहारिका' (आगरा), मंच' (अम्बाला), 'मनोहर कहानियाँ' 'माया', (इलाहाबाद) 'रचना' (वाराणसी), 'लहर' (अजमेर), 'रचना' (दिल्ली), 'साथी' (मुरादाबाद), 'समकालीन', 'सारिका' (बम्बई) आदि कहानी संचेतना की विधा की पत्रिकाएँ रही हैं। इनमें 'सारिका' हिन्दी कहानी की प्रतिनिधि पत्रिकाएँ रही है।

सभी प्रकार की साहित्यिक सामग्री देने वाली अच्छी पत्रिकाएं हैं, 'अरुण' (मुरादाबाद), 'कंचन प्रभा' (कानपुर), 'कादंबिनी' (दिल्ली) 'धर्मयुग' (बंबई), 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान' (नई दिल्ली), 'नवनीत' (बम्बई), 'अजन्ता' (हैदराबाद), 'अमिता (लखनऊ), 'आजकल' (दिल्ली), 'कल्पना' (हैदराबाद), 'देवनागर' (नई दिल्ली), 'नई धारा' (पटना), 'नया प्रतीक' (नई दिल्ली), 'भाषा' 'मधुमती', 'अवन्तिका' (पटना) आदि।

इनमें 'धर्मयुग', 'साप्ताहिक हिन्दूस्तान', 'कादम्बिनी', 'कंचन', 'प्रभा' आदि उच्चस्तरीय पत्रिकाएँ हैं।

शिक्षा सम्बन्धी पत्रिकाएँ

'नया शिक्षक' (बीकानेर), 'नई तालीम' (वाराणसी), 'भारतीय शिक्षा' (लखनऊ)' 'भारती' (बम्बई), 'शिक्षक बंधु' (अलीगढ) और 'हिन्दी शिक्षक' आदि निकलती हैं।

आर्थिक पत्रिकाएँ

भारत आर्थिक काल से गुजर रहा है। अतः कुछ पत्रिकाएँ केवल आर्थिक पहलू पर ही निकलती हैं, जो निम्नलिखित हैं : 'आर्थिक चेतना' (नई दिल्ली), 'आर्थिक जगत' (कलकत्ता), 'आर्थिक' (वाराणसी), 'उत्पादकता' (कानपुर), 'उद्यम' (नागपुर), 'उद्योग भारती' (कलकत्ता), 'उद्योग व्यापार पत्रिका' (नई दिल्ली), 'खादी ग्रामोद्योग' (बम्बई), 'जन उद्योग' (दिल्ली), 'जागृति' (बम्बई), 'योजना' (नई दिल्ली) आदि प्रकाशित हो रही हैं।

भारत एक कृषि प्रधान देश है। यहाँ से कृषि पर अनेक पत्रिकाएँ निकल रही हैं। इनमें—'उन्नत कृषि' (नई दिल्ली), 'उद्यान जगत' (कैथल), 'कृषक जगत' (भोपाल), 'किसान भारती' (पंत नगर), 'खेती' (नई दिल्ली), 'गांव', 'ग्रामीण दुनिया' (नई दिल्ली), 'पोल्ट्री गाइड' (नई दिल्ली), 'सेवा ग्राम' (दिल्ली) आदि हैं।

विज्ञान विषयक पत्रिकाएँ।

'आविष्कार' (दिल्ली), 'प्राणीलोक' (दिल्ली), 'प्राणी-शास्त्र' (लखनऊ), 'विज्ञान' (प्रयाग), 'विज्ञान प्रगति' (दिल्ली), 'विज्ञान परिषद अनुसंधान पत्रिका'

प्रेस, इलाहाबाद) भी अच्छी बाल पत्रिकाएँ निकली थी, किन्तु बन्द हो गई।

महिला पत्रिकाएँ

महिलाओं की अच्छी पत्रिकाओं की बड़ी आवश्यकता है। 'अंगज' (दिल्ली), 'अम्बिका' (दिल्ली) आदि अच्छी पत्रिकाएँ निकलती थी, परन्तु चली नही। 'आर्य-महिला' (वाराणसी), 'ऊषा' (इन्दौर), 'धरती' (नई दिल्ली), 'मनोरमा' (माया प्रेस, इलाहाबाद), 'महिला प्रगति के पथ पर' (नई दिल्ली) आदि कुछ पत्रिकाएँ निकल रही है।

फिल्म पत्रिकाएँ

फिल्मों के प्रचार और अभिनेता-अभिनेत्रियों के विषय में व्यापक जिज्ञासा का लाभ उठाकर बहुत-सी फिल्मी पत्रिकाएँ निकली, बंद भी हुई और आज भी निकल रही है। जिनमें से कुछ हैं—'उर्वशी' (बम्बई), 'चित्रा' (दिल्ली), 'चित्रलेखा', 'छायाकार', 'नवचित्रपट', 'प्रिय', 'फिल्माजलि', 'फिल्मी कलियाँ', 'फिल्मी दुनिया', 'युग छाया', 'रग भूमि', 'सिनेल' और 'सुषमा' (दिल्ली), 'माधुरी' (बम्बई), 'मेनका' (बम्बई), 'रमा' (वाराणसी), 'सिनेरिपोर्टर' (नई दिल्ली) आदि। इन सभी में हलके स्तर की सामग्री रहती है। केवल 'माधुरी' पत्रिका ही फिल्मों के सम्बन्धों मे स्वस्थ सामग्री देती है और उसे स्तरीय पत्रिका कहा जा सकता है।

इनके अतिरिक्त खेल, ज्योतिष, विधि, कामकला आदि की पत्रिकाएँ भी निकलती हैं। विधि के क्षेत्र मे निकल रही 'उच्च न्यायालय निर्णय पत्रिका' और 'उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका' विशेष रूप से प्रामाणिक सामग्री दे रही है।

उपरोक्त अध्ययन से स्पष्ट हो जाता है कि सन् १९७३ मे १२,६५३ समाचार पत्रों की तुलना में १९७४ के अन्त में १२,१८५ समाचार-पत्र थे। इनमें लगभग एक-तिहाई समाचार-पत्र दिल्ली, बम्बई, कलकत्ता और मद्रास से प्रकाशित होते हैं।

समाचार-पत्रों के भाषावार अध्ययन से स्पष्ट हो जाता है कि सन् १९७४ मे हिन्दी में सर्वाधिक संख्या ३,२०० पत्रिकाएँ प्रकाशित हुईं। इसके पश्चात् अंग्रेजी में २,४५३, उर्दू मे ९१५, बगला मे ७३९, मराठी में ७१७, गुजराती में ५६६, तमिल मे ५२७, मलयालम मे ४६५, तेलुगु में ४२५, कन्नड़ में ३३१ और पंजाबी में २६८ समाचार-पत्र प्रकाशित हुए। दो भाषाओं वाले समाचार-पत्र ९८९ थे।

प्रेस कानून

कुछ प्रेस कानूनो में परिवर्तन लाने के लिए ८ दिसम्बर, १९७५ को तीन अध्यादेश जारी किए गए। एक अध्यादेश का उद्देश्य ससदीय कार्यवाही (प्रकाशन सुरक्षा) अधिनियम १९५६ को रद्द करना तथा दूसरे का उद्देश्य १९६५ के प्रेस परिषद् अधिनियम का रद्द करना था। उनका स्थान फरवरी, १९७६ में संसद द्वारा अनुमोदित विधेयक ने ले लिया है।

प्रेस परिषद् १९६६ मे समाचार पत्रों के लिए आचार-संहिता बनाने तथा उनके अधिकारों तथा उत्तरदायित्वों में सन्तुलन रखने के लिए बनाई गई थी क्योंकि इस उद्देश्य की प्राप्ति नही हुई, इसलिए अधिनियम को रद्द करने का निर्णय किया गया।

तीसरा अध्यादेश (आपत्तिजनक सामग्री प्रकाशन पर सेवा का अध्यादेश १९७५) का उद्देश्य उन प्रकाशनों के विरुद्ध कार्यवाही करना है, जिनसे सवैधानिक तौर पर स्थापित सरकार के खिलाफ लोगो में असन्तोष पैदा हो, जिनमे आवश्यक वस्तुओ या सेवाओ के उत्पादन, पूर्ति और वितरण मे अड़चन डालने के लिए उकसाया गया हो, जिनसे समाज के विभिन्न वर्गों मे फूट पडती हो तथा जिनमे अभद्रता या अश्लीलता हो। इस अध्यादेश में जहाँ प्रतिबन्धात्मक आदेश के उल्लघन करने वाले प्रकाशनों को जब्त करने की व्यवस्था है, वहाँ असन्तुष्ट पक्ष को उच्च न्यायालय या केन्द्रीय सरकार से अभिवेदन और अपील करने का अवसर देने की भी व्यवस्था है।

विघटनकारी और साम्प्रदायिक तत्त्वों से निपटने हेतु, जिनमे राष्ट्र की एकता को खतरा था, राष्ट्रपति ने २६ जून, १९७५ को आपात्काल की घोषणा की। इस विशेष स्थिति से निपटने के लिए तत्कालीन सरकार ने समाचार पत्रों पर अस्थाई प्रतिबंध लगाये। इन प्रतिबंधों को सन् १९७७ मे सरकार के बदलने पर हटा दिया गया है और वर्तमान सरकार (जनता पार्टी की सरकार) ने पत्र, प्रेस को स्वतन्त्र कर दिया है।

उपसंहार

आधुनिक भारतीय इतिहास के अन्वेषी-अध्येताओं ने हिन्दी पत्रकारिता विकास-धारा के अनुशीलन को अपेक्षित महत्त्व नहीं दिया। चूँकि उन्हें यह स्पष्ट न था कि आधुनिक हिन्दी पत्रकारिता राष्ट्रीय नव-जागरण की द्युति-संवाहिका रही है। प्रस्तुत पुस्तक में उत्तर प्रदेश जिसे सन् १९०२ से पूर्व नार्थ वैस्टर्न प्रोविन्सिज के नाम से संबोधित किया जाता था, की हिन्दी पत्रकारिता, जिसने सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक एवं हिन्दी साहित्यिक अर्थात् समग्र राष्ट्रीय चेतना को आत्मसात् कर प्रतिबिम्बित किया, के मूल स्वरों को गवेषणात्मक, प्रामाणिक तथा विवेचनात्मक रूप में पिछले अध्यायों में प्रस्तुत करने की चेष्टा की गयी है।

आधुनिक भारतीय नव-जागरण की सबसे बड़ी उपलब्धियों में आधुनिकता अर्थात् वैज्ञानिक दृष्टिकोण जो पूर्व तथा पश्चिम के मध्य जागृति-सेतु बना। इस चेतना के अंकुर भारत में सर्वप्रथम बंगाल में प्रस्फुटित हुए। शेष प्रांतों में और विशेषतः उत्तर प्रदेश में इसका अंकुरण कुछ विलम्ब से हुआ।

आधुनिकता का प्रभाव भारतीय मानस-पटल पर कुछ इतना प्रभावशाली हुआ कि वे पश्चिम जगत् को अधिकाधिक परखने एवं जानने के लिए व्यग्र हो उठे, किन्तु इसे पूर्ण-रूपेण आत्मसात् करने के लिए अंग्रेजी भाषा का बोध आवश्यक था। सुधारवादी आन्दोलन के आदि संचालक और भारतीय नव-जागरण के उन्नायक राजा राममोहनराय ने इसे सही रूप में समझ अंग्रेजी शिक्षा के प्रचार का समर्थन किया। अंग्रेजी के माध्यम से शिक्षित भारतीयों ने भारतीयता की ओर से आँख नहीं मूँदी वरन् अपनी परम्परा को आधुनिक संदर्भ में प्रस्तुत करने के लिए नई दिशा देने का प्रयास किया। इसके लिए आवश्यक था कि पाश्चात्य शिक्षा से पाश्चात्य वाङ्मय से अवगत होना। उन्नीसवीं शताब्दी की पत्रकारिता उसी वैचारिक क्रांति की वाहिका बनी।

प्रारम्भ में कुछ स्वतन्त्र विचारों वाले यूरोपियन जेम्स आगस्टस हिकी तथा जेम्स सिल्क बकिंघम ने भारतीय आधुनिक पत्रकारिता की नींव डाली। ईसाई मि

का भी इस कार्य में सराहनीय योग रहा, जिन्होंने भारतीय भाषाओं में अनेक पत्र-पत्रिकाएँ प्रकाशित कीं। ईसाई मिशनरी को ब्रिटिश सरकार भी हर सम्भव सहायता दे रही थी, क्योंकि मिशनरी पत्र सरकार का समर्थन तथा ईसाई धर्म का प्रचार कर रहे थे। राजा राममोहन राय ने इस भेद-भाव पूर्ण नीति को अत्यन्त गम्भीरता से परखा और भारतीयता को दृष्टि में रखकर 'ब्रह्मनिकल मैगजीन' का प्रकाशन किया।

भारतीय पत्रकारिता के इतिहास में एक नया अध्याय तब आरम्भ होता है, जब स्वयं प्रबुद्ध भारतीयों ने संयोजकत्व तथा सम्पादकत्व सम्भाला और पत्रों का आरम्भ किया। इसका श्रेय आधुनिकता के जन्मदाता राजा राममोहन राय को जाता है, जिन्होंने कई पत्र निकालकर भारत में प्रेस की स्थापना की। इस प्रकार भारत में प्रेस की स्थापना को प्रस्तुत पुस्तक में दिखाने की चेष्टा की गई है।

भारतीय नव जागरण का आरम्भ बंगाल मे सर्वप्रथम हुआ। स्वभावतः भारतीय पत्रकारिता की जन्म-भूमि बंगाल ही बन गई और हिन्दी पत्रकारिता के उद्भव-विकास का इतिहास ३० मई, १८२६ से आरम्भ होता है। इस दिन हिन्दी के प्रथम पत्र 'उदंत मार्त्तण्ड' का प्रकाशन पं० जुगलकिशोर शुक्ल द्वारा हुआ था। परन्तु उत्तर प्रदेश (तत्कालीन नार्थ वैस्टर्न प्रोविन्सिज) मे हिन्दी पत्रकारिता का जन्म लगभग १६ वर्ष विलम्ब से होता है। यहाँ से राजा शिवप्रसाद 'सितारे हिन्द' ने अपना 'बनारस अखबार' (साप्ताहिक) जनवरी, १८४५ ई० मे काशी मे प्रकाशित किया और यही से इस राज्य की हिन्दी पत्रकारिता के उद्भव-विकास का शुभारम्भ होता है, परन्तु धीमी गति से। तत्पश्चात् यह राज्य हिन्दी पत्रकारिता का गढ़ बन गया। इस राज्य मे हिन्दी पत्रकारिता के उद्भव-विकास को विस्तार से दिखाया गया है।

१९वीं शती के उत्तरार्द्ध में मध्यम वर्ग के शिक्षित वर्ग ने जो सीमित था, ने पत्र-पत्रिकाओं को जन्म दिया और उनके माध्यम से समाज-सुधार, राजनैतिक अधिकारों, आर्थिक-दशा तथा हिन्दी साहित्य के विकास हेतु पुरजोर अभियान चलाया। हिन्दी पत्रकारिता के इस अभियान से तत्कालीन भारत मे ब्रिटिश सरकार भयभीत हो उठी और उसने हिन्दी पत्रकारिता के बढ़ते चरणों को काटने तथा दमन हेतु अनेक प्रशासनिक तथा संवैधानिक कदम उठाये। फलत. सरकार और पत्रकारिता के मध्य संघर्ष छिड़ना स्वाभाविक था। इस संघर्ष के कारण पत्रकारों को अनेक प्रकार के आर्थिक संकटों का सामना करना पड़ा, यातनायें सहनी पड़ीं, और कभी-कभी जीवन से हाथ धोना पड़ा। इस प्रकार पत्रकारिता का इतिहास राष्ट्रीय नव-जागरण का इतिहास बन गया और दोनों की विकास-भूमिकाएँ एक दूसरे की पूरक बन गईं। अत. पुस्तक में हिन्दी पत्रकारिता और सरकार के सम्बन्धों को अधिकाधिक रूप दिखाने का प्रयत्न किया गया है।

उन्नीसवी शताब्दी के उत्तरार्द्ध मे हिन्दी समाचार-पत्रों ने समाज मे फैली कुप्रथाओं के विरुद्ध सर्वप्रथम अभियान आरम्भ किया। उन दिनों समाज मे छोटी

कन्याओं की हत्या, विधवाओं का पुनर्विवाह न करना, बाल-विवाह, दहेज प्रथा, वेश्यावृत्ति, अंध-विश्वास एवं जाति-प्रथा सरीखी कुप्रथाओं ने समाज को अपने शिकंजों में जकड़ा हुआ था। इन सबके विरुद्ध बुद्धिजीवी वर्ग ने पत्रकारिता के माध्यम से जन-साधारण में चेतना लाने का वातावरण तैयार किया अर्थात् समाज-सुधार मे हिन्दी-पत्रकारिता के योगदान को उभारकर लाने की चेष्टा की गई है।

अखिल भारतीय कांग्रेस की स्थापना से पूर्व किसी राष्ट्रीय स्तर की संस्था की अनुपस्थिति में केवल पत्रकारिता ही थी, जिसने अंग्रेजों द्वारा किए जा रहे आर्थिक शोषण के विरुद्ध अभियान चलाया तथा अंग्रेजी सरकार की गलत नीतियों का भांडा फोडा। सन् १८५८ के पश्चात् अंग्रेजी सरकार दिन-प्रतिदिन नये-नये कर लगा कर गरीब भारतीय जनता का आर्थिक शोषण कर रही थी। इस शोषणात्मक नीति के विरुद्ध हिन्दी पत्रों ने पुरजोर प्रचार किया और भारतीय असंतोष को उभार कर स्वदेशी आंदोलनों को जन्म दिया।

हिन्दी पत्रो ने अंग्रेजो की जातीय एवं रंग-भेद नीति का विरोध, केन्द्रीय लेजिस्लेटिव कांसिल में, प्रांतीय लेजिस्लेटिव कांसिल मे, तथा ब्रिटिश संसद मे भारतीय प्रतिनिधित्व की मांगों को भी सरकार के समक्ष रखकर जनता मे नव-जागरण की लहर उत्पन्न की। फलतः दिसम्बर, १८८५ ई० में अखिल भारतीय कांग्रेस की स्थापना हुई, जिसने सराहनीय कार्य किया। हिन्दी-पत्रकारिता ने इसके कार्य-क्रम की रूप-रेखा को प्रकाशित कर जन-सामान्य तक पहुँचाने में सहयोग दिया। इस प्रकार पुस्तक में राजनैतिक चेतना में हिन्दी-पत्रकारिता के योग को दिखाया गया है।

उन्नीसवीं शताब्दी में उर्दू-फारसी और अंग्रेजी भाषा का बोल-बाला था। हिंदी गद्य-निर्माण के लिए प्रतिकूल परिस्थितियाँ बनी हुई थीं। ऐसे विकट समय में हिन्दी पत्रकारिता के क्षेत्र में कुछ महान् प्रतिभाएँ कूदी और अपनी-अपनी पत्र-पत्रिकाएँ प्रकाशित कर हिन्दी गद्य-निर्माण हेतु, उनमें सरल और जन-साधारण की भाषा में लेख प्रकाशित किए और हिन्दी को लोकप्रिय बनाया। अतः पुस्तक में हिन्दी गद्य-विकास में पत्रकारिता के सक्रिय योगदान पर प्रकाश डाला गया है।

यह ऐतिहासिक सत्य है कि स्वतन्त्रता आंदोलन का प्राय प्रत्येक प्रबुद्ध पुरस्कर्ता प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से पत्रकार अवश्य रहा है। उदाहरणार्थ राजा शिवप्रसाद, राजा लक्ष्मणसिंह, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, पं० बालकृष्ण भट्ट, बालमुकुन्द गुप्त, पं० मदन-मोहन मालवीय, राजा रामपाल सिंह, पं० अयोध्या प्रसाद, सदासुख लाल, देवकीनन्दन त्रिपाठी, रामकिशन वर्मा, जगन्नाथ तिवारी, हाकिम जवाहरलाल, गणेशीलाल, प्रताप नारायण मिश्र, बाबू जगन्नाथ दास, राधाकृष्ण दास, नवीनचन्द राय, बाबू तोताराम और बाबू श्यामसुन्दर दास और अन्य ने उत्तर प्रदेश की पवित्र भूमि पर अपने पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से जनता को राष्ट्रीय आंदोलनों की सभी विकासधार और मोड़ने में गौरवपूर्ण योगदान दिया। प्रस्तुत पुस्तक में उपरोक्त कुछ प्रति

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, महामना मदनमोहन मालवीय, पं० बालकृष्ण भट्ट, बालमुकुन्द गुप्त, और प्रतापनारायण मिश्र के योगदान और इनके जीवन परिचय का संक्षेप में वर्णन किया गया है।

आर्य समाज की पत्रकारिता ने नव जागरण में मुख्य भूमिका निभाई थी। अतः इसके पत्र-पत्रिकाओं के उद्भव-विकास को संक्षेप मे दिखाने का प्रयास किया। हिन्दी के बहुत से पत्र और पत्रिकाएँ न्यूनाधिक धार्मिक भावनाओ और विचारों को भी उभार कर लाती थी। अतः ऐसे पत्र और पत्रिकाओं को भी अलग से लिखने की चेष्टा की गई। यद्यपि इन्हें चुनने में हिन्दी-पत्रकारिता के उदभव-विकास को भी संक्षेप में लिखने का प्रयास किया गया है।

प्रमुख पत्रकार

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र उन महान पुरुषों में से हैं, जो अपनी असाधारण विशेषताओं की अमिट छाप छोड़ जाते हैं। १८ वर्ष की अल्प आयु में ही उन्होंने अपनी साहित्यिक विलक्षण प्रतिभा एवं सूझ-बूझ से साहित्य के क्षेत्र में इतना कार्य किया, जितना अन्य किसी साहित्यकार ने नहीं किया। भारतेन्दु जी बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे। उनकी बुद्धि प्रखर थी और उनमें नेतृत्व करने का गुण सहज रूप से विद्यमान था। उन्होंने स्वयं समाचार पत्र-पत्रिकाएँ निकाल कर हिन्दी-पत्रकारिता का मार्ग प्रशस्त किया।

भारतेन्दु जी का समय पूर्वी तथा पश्चिमी सभ्यताओं के मध्य का संघर्षकाल था। विदेशी शासन के बावजूद उन्होंने विद्यमान राष्ट्रीय प्रवृत्तियों को जागृत किया। वे तत्कालीन राजनैतिक परिस्थितियों से भली-भाँति अवगत थे। अतः उन्होंने मध्यम मार्ग अपना कर सामयिक विवेक का परिचय दिया। प्रचार के माध्यम के रूप में उन्होंने समाज, क्लब, रंगमंच, व्याख्यान आदि के साथ ही पत्र-पत्रिकाओं को भी स्वीकार किया।

भारतेन्दु जी ने १५ अगस्त, १८६७ को काशी से 'कवि-वचन-सुधा' मासिक पत्रिका का प्रकाशन कर हिन्दी पत्रकारिता के नये युग का आरम्भ किया। आरम्भ में इसमें प्रसिद्ध कवियों की कविताओं का प्रकाशन होता था। भारतेन्दु जी इसके माध्यम से भारतीय जनता को हिन्दी कविता की परम्परा से परिचित कराना चाहते थे। इस पत्रिका के प्रथम अंक को देखने का सौभाग्य मुझे कलकत्ता नेशनल लाइब्रेरी में हुआ। इसके प्रथम पृष्ठ का आरम्भ 'श्री गोपीजन वल्लभाय नमः' से होता है। इसमें १६ पृष्ठ होते थे। धीरे-धीरे इसमें राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक तथा साधारण मनोरंजन के लेख भी प्रकाशित होने आरम्भ हुए।

'कवि-वचन-सुधा' शीघ्र ही मासिक से पाक्षिक हो गयी और इसमें पद्य के साथ

गद्य का भी समावेश हुआ। सन् १८७५ में यह साप्ताहिक हुई और सन् १८८५ तक हिन्दी और अंग्रेजी में प्रकाशित होती रही। बाद में 'कवि-वचन-सुधा' को नियमित रूप से निकालने के लिए उन्होंने अन्य लोगों को सौंप दिया। तत्पश्चात्, भारतेन्दु जी ने इसमें लिखना छोड़ दिया और सन् १८८३ से इसका स्तर गिरना आरम्भ हो गया और १८८५ में यह बन्द हो गई।

'कवि-वचन-सुधा' के साप्ताहिक हो जाने के पश्चात् भारतेन्दु जी ने १५ अक्टूबर, १८७३ को मासिक पत्रिका 'हरिश्चन्द्र मैगजीन' का प्रकाशन आरम्भ किया। यह आठ पृष्ठों में निकलती थी। यह शुद्ध रूप से साहित्यिक पत्रिका थी, जिसमें कविता, नाटक, कला, इतिहास, परिहास, समालोचना आदि प्रकाशित होते थे। आठ अंकों के प्रकाशन के पश्चात् जून १८७४ में इसका नाम 'हरिश्चन्द्र चन्द्रिका' कर दिया गया। यह पत्रिका भी अत्यन्त लोकप्रिय हुई। सरकार भी इसकी प्रतियाँ खरीदती थी किन्तु 'कवि-वचन-सुधा' की भाँति जब इसमें देश-भक्तिपूर्ण लेख प्रकाशित होने लगे तो सरकार ने इसे लेना बन्द कर दिया।

यह पत्रिका आठ वर्षों तक चली तथा सन् १८८० में पं० मोहनलाल विष्णु पण्ड्या के आग्रह पर भारतेन्दु जी ने उन्हें सौंप दिया तथा कुछ समय तक यह 'हरिश्चन्द्र चन्द्रिका' और 'मोहन चन्द्रिका' के नाम से काशी से प्रकाशित होती रही। सन् १८८४ में भारतेन्दु जी ने 'नवोदित हरिश्चन्द्र चन्द्रिका' का प्रकाशन पुनः प्रारम्भ किया और अपने जीवन के अन्तिम समय तक वे इसका प्रकाशन करते रहे।

भारतेन्दु जी ने अपनी मौलिक सूझ-बूझ के फलस्वरूप केवल महिलाओं हेतु १ जनवरी, १८७४ से 'बाल-बोधिनी' नामक मासिक पत्रिका का प्रकाशन प्रारम्भ किया। स्त्री शिक्षोपयोगी यह पत्रिका चार वर्षों तक प्रकाशित होती रही। इस पत्रिका के महत्त्व को स्वीकार करते हुए भारत सरकार ने इसकी एक-सौ प्रतियाँ खरीदनी प्रारम्भ की थी। इन पत्र-पत्रिकाओं के अतिरिक्त भारतेन्दु जी ने वैष्णव धर्म-प्रधान एक पत्रिका 'भगवत तोषिणी' नाम से प्रकाशित की, जो अनेक कारणों से एक वर्ष से अधिक समय तक नहीं चल सकी।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का पत्रकारिता से लगाव उनके निधन समय ६ जनवरी, १८८५ तक रहा। उनके द्वारा सम्पादित एवं प्रकाशित पत्र-पत्रिकाओं में 'कवि-वचन-सुधा' एवं 'हरिश्चन्द्र चन्द्रिका' का सर्वाधिक महत्त्व है।

भारतेन्दु जी ने तत्कालीन अन्य पत्र-पत्रिकाओं के सम्पादकों का सही दिशा में मार्ग-दर्शन किया। इनसे प्रेरणा लेकर पं० बालकृष्ण भट्ट ने 'हिन्दी-प्रदीप', लाला सीताराम ने 'भारत बन्धु', प्रतापनारायण मिश्र ने 'ब्राह्मण', लाला श्रीनिवासदास ने 'सदादर्श', राधाचरण गोस्वामी ने 'भारतेन्दु', बाबू लालेश्वर प्रसाद ने 'काशी पत्रिका', बदरी नारायण चौधरी ने 'आनन्द कादम्बिनी' तथा 'नागरी नीरद' प्रकाशित की।

पत्रकार की हैसियत से भारतेन्दु जी ने सर्व-साधारण में शिक्षण, मनोरंजन,

जागरण आदि हेतु सामाजिक विषयों पर लेख, टिप्पणियाँ, सम्पादकीय आदि लिखने का श्रम अपने जीवन के अन्तिम समय तक जारी रखा ।

इस प्रकार स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि भारतेन्दु जी समाचार-पत्रों के महत्त्व से भली-भाँति परिचित थे। वे समाज-चेतना के लिए पत्रकारिता को एक सशक्त माध्यम मानते थे। अतः उन्होंने पत्रकारिता के आधार को दृढ करने तथा उसकी कला एवं परम्परा को सही दिशा में विकसित करने के लिए समयानुसार प्रयास किया। अतः हिन्दी पत्रकारिता के विकास के इतिहास मे भारतेन्दु जी की पत्रकारिता का विशेष स्थान सदैव बना रहेगा।

भारतेन्दु का जन्म ९ सितम्बर, १८५० को काशी में हुआ था। इनके पिताजी का नाम गोपालचन्द्र (गिरधरदास) था। प्रारम्भिक शिक्षा घर पर समाप्त करके विद्यालय में प्रवेश लिया। शिक्षा-प्राप्ति के पश्चात् १७ वर्ष की अल्प आयु में देश-सेवा हेतु पत्रिकारिता के क्षेत्र मे कूद पड़े। पत्रकारिता के साथ-ही-साथ इन्होंने मौलिक और अनूदित लगभग १७५ पुस्तकें प्रकाशित की। उन्हे हिन्दी, उर्दू, संस्कृत, फारसी तथा अंग्रेजी आदि पर पूर्ण अधिकार था। इस प्रकार कहा जा सकता है कि भारतेन्दु जी आधुनिक हिन्दी साहित्य के प्रवर्तक तथा हिन्दी पत्रिकारिता के आलोक स्तम्भ हैं।

महामना मदनमोहन मालवीय

सन् १८५७ के प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम के दमन के पश्चात् अंग्रेज यह समझ बैठा था कि अब भारत मे आजादी का नाम लेने वाला नही रहा। उनका ऐसा सोचना किसी सीमा तक उचित भी था, क्योकि उन्होने देश-भक्तों को जिस प्रकार से कुचला, फाँसी पर लटकाया और खून की नदियाँ बहाईं, उसका उदाहरण विश्व इतिहास में नही मिलता; परन्तु वे अंधकार मे थे। भारत माँ ने पं० मदनमोहन मालवीय जी सरीखे अनेक सुपुत्रों को जन्म दिया, जिसने सन् १८५७ के स्वतंतता संग्राम के असफल होने के कारणो को दृष्टि मे रखकर नव-निर्माण हेतु पत्रकारिता, जिसने सामाजिक साहित्यिक, धार्मिक एवं राजनैतिक अर्थात् समग्र राष्ट्रीय चेतना को आत्मसात कर प्रतिबिम्बित किया, को आलोक-स्तम्भ बनाया।

मालवीय जी ने देश-सेवा का जो क्षेत्र चुना, वह शिक्षण और सम्पादन कला का था। उन्होंने सन् १८८५ से १८८७ तक 'इंडियन ओपिनियन' नामक पत्र का सम्पादन किया। तत्पश्चात् कांग्रेस के मंच पर उनकी भेंट राजा रामपाल सिंह से हुई। राजा साहब ने उनसे अपने पत्र का सम्पादन-भार लेने की प्रार्थना की। मालवीय जी ने उनकी प्रार्थना स्वीकार कर दैनिक 'हिन्दोस्तान' का सम्पादन सन् १८८ १८८९ तक किया। उन्होंने सम्पादक की कुर्सी सम्हालते समय राजा रामपाल

गद्य का भी समावेश हुआ। सन् १८७५ में यह साप्ताहिक हुई और सन् १८८५ तक हिन्दी और अंग्रेजी में प्रकाशित होती रही। बाद में 'कवि-वचन-सुधा' को नियमित रूप से निकालने के लिए उन्होने अन्य लोगों को सौंप दिया। तत्पश्चात्, भारतेन्दु जी ने इसमें लिखना छोड दिया और सन् १८८३ से इसका स्तर गिरना आरम्भ हो गया और १८८५ में यह बन्द हो गई।

'कवि-वचन-सुधा' के साप्ताहिक हो जाने के पश्चात् भारतेन्दु जी ने १५ अक्टूबर, १८७३ को मासिक पत्रिका 'हरिश्चन्द्र मैगजीन' का प्रकाशन आरम्भ किया। यह आठ पृष्ठों में निकलती थी। यह शुद्ध रूप से साहित्यिक पत्रिका थी, जिसमे कविता, नाटक, कला, इतिहास, परिहास, समालोचना आदि प्रकाशित होते थे। आठ अंकों के प्रकाशन के पश्चात् जून १८७४ मे इसका नाम 'हरिश्चन्द्र चन्द्रिका' कर दिया गया। यह पत्रिका भी अत्यन्त लोकप्रिय हुई। सरकार भी इसकी प्रतियाँ खरीदती थी किन्तु 'कवि-वचन-सुधा' की भाँति जब इसमें देश-भक्तिपूर्ण लेख प्रकाशित होने लगे तो सरकार ने इसे लेना बन्द कर दिया।

यह पत्रिका आठ वर्षों तक चली तथा सन् १८८० में पं० मोहनलाल विष्णु पण्डया के आग्रह पर भारतेन्दु जी ने उन्हे सौप दिया तथा कुछ समय तक यह 'हरिश्चन्द्र चन्द्रिका' और 'मोहन चन्द्रिका' के नाम से काशी से प्रकाशित होती रही। सन् १८८४ में भारतेन्दु जी ने 'नवोदित हरिश्चन्द्र चन्द्रिका' का प्रकाशन पुनः प्रारम्भ किया और अपने जीवन के अन्तिम समय तक वे इसका प्रकाशन करते रहे।

भारतेन्दु जी ने अपनी मौलिक सूझ-बूझ के फलस्वरूप केवल महिलाओं हेतु १ जनवरी, १८७४ से 'बाल-बोधिनी' नामक मासिक पत्रिका का प्रकाशन प्रारम्भ किया। स्त्री शिक्षोपयोगी यह पत्रिका चार वर्षों तक प्रकाशित होती रही। इस पत्रिका के महत्त्व को स्वीकार करते हुए भारत सरकार ने इसकी एक-सौ प्रतियाँ खरीदनी प्रारम्भ की थी। इन पत्र-पत्रिकाओ के अतिरिक्त भारतेन्दु जी ने वैष्णव धर्म-प्रधान एक पत्रिका 'भगवत तोषिणी' नाम से प्रकाशित की, जो अनेक कारणों से एक वर्ष से अधिक समय तक नही चल सकी।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का पत्रकारिता से लगाव उनके निधन समय ६ जनवरी, १८८५ तक रहा। उनके द्वारा सम्पादित एवं प्रकाशित पत्र-पत्रिकाओं में 'कवि-वचन-सुधा' एवं 'हरिश्चन्द्र चन्द्रिका' का सर्वाधिक महत्त्व है।

भारतेन्दु जी ने तत्कालीन अन्य पत्र-पत्रिकाओ के सम्पादकों का सही दिशा मे मार्ग-दर्शन किया। इनसे प्रेरणा लेकर पं० बालकृष्ण भट्ट ने 'हिन्दी-प्रदीप', लाला सीताराम ने 'भारत बन्धु', प्रतापनारायण मिश्र ने 'ब्राह्मण', लाला श्रीनिवासदास ने 'सदादर्श', राधाचरण गोस्वामी ने 'भारतेन्दु', बाबू लालेश्वर प्रसाद ने 'काशी पत्रिका', बदरी नारायण चौधरी ने 'आनन्द कादम्बिनी' तथा 'नागरी नीरद' प्रकाशित की।

पत्रकार की हैसियत से भारतेन्दु जी ने सर्व-साधारण मे शिक्षा, मनोरंजन,

जागरण आदि हेतु सामाजिक विषयों पर लेख, टिप्पणियाँ, सम्पादकीय आदि लिखने का क्रम अपने जीवन के अन्तिम समय तक जारी रखा।

इस प्रकार स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि भारतेन्दु जी समाचार-पत्रों के महत्व से भली-भाँति परिचित थे। वे समाज-चेतना के लिए पत्रकारिता को एक सशक्त माध्यम मानते थे। अतः उन्होंने पत्रकारिता के आधार को दृढ करने तथा उसकी कला एवं परम्परा को सही दिशा में विकसित करने के लिए समयानुसार प्रयास किया। अतः हिन्दी पत्रकारिता के विकास के इतिहास मे भारतेन्दु जी की पत्रकारिता का विशेष स्थान सदैव बना रहेगा।

भारतेन्दु का जन्म ९ सितम्बर, १८५० को काशी मे हुआ था। इनके पिताजी का नाम गोपालचन्द्र (गिरधरदास) था। प्रारम्भिक शिक्षा घर पर समाप्त करके विद्यालय में प्रवेश लिया। शिक्षा-प्राप्ति के पश्चात् १७ वर्ष की अल्प आयु में देश-सेवा हेतु पत्रिकारिता के क्षेत्र में कूद पडे। पत्रकारिता के साथ-ही-साथ इन्होंने मौलिक और अनूदित लगभग १७५ पुस्तकें प्रकाशित की। उन्हे हिन्दी, उर्दू, संस्कृत, फारसी तथा अंग्रेजी आदि पर पूर्ण अधिकार था। इस प्रकार कहा जा सकता है कि भारतेन्दु जी आधुनिक हिन्दी साहित्य के प्रवर्तक तथा हिन्दी पत्रिकारिता के आलोक स्तम्भ है।

महामना मदनमोहन मालवीय

सन् १८५७ के प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम के दमन के पश्चात् अंग्रेज यह समझ बैठा था कि अब भारत मे आजादी का नाम लेने वाला नही रहा। उनका ऐसा सोचना किसी सीमा तक उचित भी था, क्योकि उन्होने देश-भक्तो को जिस प्रकार से कुचला, फाँसी पर लटकाया और खून की नदियाँ बहाईं, उसका उदाहरण विश्व इतिहास में नही मिलता; परन्तु वे अंधकार मे थे। भारत माँ ने पं० मदनमोहन मालवीय जी सरीखे अनेक सुपुत्रो को जन्म दिया, जिसने सन् १८५७ के स्वतंतता संग्राम के असफल होने के कारणो को दृष्टि में रखकर नव-निर्माण हेतु पत्रकारिता, जिसने सामाजिक साहित्यिक, धार्मिक एवं राजनैतिक अर्थात् समग्र राष्ट्रीय चेतना को आत्मसात कर प्रतिबिम्बित किया, को आलोक-स्तम्भ बनाया।

मालवीय जी ने देश-सेवा का जो क्षेत्र चुना, वह शिक्षण और सम्पादन कला का था। उन्होंने सन् १८८५ से १८८७ तक 'इडियन ओपिनियन' नामक पत्र का सम्पादन किया। तत्पश्चात् कांग्रेस के मंच पर उनकी भेंट राजा रामपाल सिंह से हुई। राजा साहब ने उनसे अपने पत्र का सम्पादन-भार लेने की प्रार्थना की। मालवीय जी ने उनकी प्रार्थना स्वीकार कर दैनिक 'हिन्दोस्तान' का सम्पादन सन् १८८७ से १८८९ तक किया। उन्होंने सम्पादक की कुर्सी सम्हालते समय राजा रामपाल सिंह से

अपनी शर्त तय कर ली थी कि राजा साहब उनके सम्पादन कार्य में कोई हस्तक्षेप नही करेंगे। इस प्रकार मालवीय जी इस प्रथम हिन्दी दैनिक का सम्पादन कुशलता-पूर्वक करते रहे। इस सम्पादन कार्य में कई उद्‌भट विद्वानों - गोपालराम गहमरी, अमृतलाल चक्रवर्ती, बाबू बालमुकुन्द गुप्त, शशिलाल तथा पं० प्रतापनारायण मिश्र आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। बाबू बालमुकुन्द गुप्त को मालवीय जी ने लाहौर से प्रकाशित होने वाले 'कोहेनूर' नामक उर्दू पत्र के सम्पादक पद से त्याग-पत्र दिलाकर दैनिक 'हिन्दोस्तान' में सम्पादक नियुक्त किया। यद्यपि उन दिनों बाबू बालमुकुन्द गुप्त हिन्दी भली प्रकार नही जानते थे, किन्तु मालवीय जी की प्रेरणा से उर्दू छोड़कर हिन्दी सीखी और आधुनिक हिन्दी साहित्य मे अभूतपूर्व कार्य किया।

सन् १६०८ में बसन्त पंचमी के दिन मालवीय जी ने प्रयाग से क्रांति का अगुवा 'अभ्युदय' नामक साप्ताहिक पत्र निकाला, जिस का सम्पादन कुछ दिनों तक बाबू पुरुषोत्तमदास टंडन ने भी किया। यह पत्र उन्होने अपने उद्देश्यों को साकार बनाने के उद्देश्य से प्रकाशित किया, जो अपने ढंग का उत्कृष्ट पत्र था। इस पत्र का सम्पादन उनके भतीजे स्व० कृष्णकात मालवीय ने भी किया। इसका संचालन और सम्पादन उनके पौत्र श्री पदकांत मालवीय ने भी किया।

'अभ्युदय' के पश्चात् मालवीय जी ने 'मर्यादा' मासिक पत्रिका का संचालन भी किया। इतना कुछ होने पर भी मालवीय जी सन्तुष्ट नही हो पा रहे थे। जो कुछ सोचते थे, उसको जनता तक पहुँचाने हेतु उन्होने २४ अक्टूबर, १६०६ को विजय दशमी के दिन 'लीडर' नामक दैनिक पत्र का शुभारम्भ किया। मालवीय जी की देख-रेख में हिन्दी दैनिक 'भारत' भी निकलता था। इन दोनो पत्रो के लिए मालवीय जी को अपनी पत्नी के गहने तक बेचने पड़े।

मालवीय जी के अनुसार एक पत्रकार आदर्श मान-मर्यादा से ओत-प्रोत हो, उसमें देश-प्रेम कूट-कूट कर भरा हो, ताकि वे देश का मार्ग-दर्शन ठीक प्रकार से कर सके। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए उन्होने अकालियों से 'हिन्दुस्तान टाइम्स' पत्र खरीद कर बहुत दिनों तक चलाया। परन्तु अधिक कार्य में व्यस्त होने के कारण, बाद में उन्होंने इसे एक लिमिटेड कम्पनी को सौंप दिया। आज नई दिल्ली से 'हिन्दुस्तान टाइम्स' (अंग्रेजी मे) और 'हिन्दुस्तान' (हिन्दी में) प्रकाशित हो रहे है, वे मालवीय जी की प्रेरणा का फल है।

बहुत से छोटे-मोटे पत्र-पत्रिकाओं को मालवीय जी का संरक्षण और सहयोग भी प्राप्त होता रहा। दिल्ली से प्रकाशित होने वाले 'गोपाल' साप्ताहिक के संरक्षक मालवीय जी थे। इस पत्र के आर्थिक संकट को दूर करने के लिए मालवीय जी ने बड़े-बड़े उद्योगपतियो को पत्र लिखे।

मालवीय जी ने २० जुलाई, १६३३ की गुरु-पूर्णिमा को 'सनातन धर्म' नामक साप्ताहिक पत्र प्रकाशित किया। इसमें विशेषतः उनके धार्मिक विचार प्रकाशित होते

अपनी शर्त तय कर ली थी कि राजा साहब उनके सम्पादन कार्य में कोई हस्तक्षेप नहीं करेंगे। इस प्रकार मालवीय जी इस प्रथम हिन्दी दैनिक का सम्पादन कुशलता-पूर्वक करते रहे। इस सम्पादन कार्य में कई उद्‌भट विद्वानों - गोपालराम गहमरी, अमृतलाल चक्रवर्ती, बाबू बालमुकुन्द गुप्त, शशिलाल तथा पं० प्रतापनारायण मिश्र आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। बाबू बालमुकुन्द गुप्त को मालवीय जी ने लाहौर से प्रकाशित होने वाले 'कोहेनूर' नामक उर्दू पत्र के सम्पादक पद से त्याग-पत्र दिलाकर दैनिक 'हिन्दोस्तान' में सम्पादक नियुक्त किया। यद्यपि उन दिनों बाबू बालमुकुन्द गुप्त हिन्दी भली प्रकार नहीं जानते थे, किन्तु मालवीय जी की प्रेरणा से उर्दू छोड़कर हिन्दी सीखी और आधुनिक हिन्दी साहित्य में अभूतपूर्व कार्य किया।

सन् १६०८ में बसन्त पंचमी के दिन मालवीय जी ने प्रयाग से क्रांति का अगुवा 'अभ्युदय' नामक साप्ताहिक पत्र निकाला, जिस का सम्पादन कुछ दिनों तक बाबू पुरुषोत्तमदास टंडन ने भी किया। यह पत्र उन्होंने अपने उद्देश्यों को साकार बनाने के उद्देश्य से प्रकाशित किया, जो अपने ढंग का उत्कृष्ट पत्र था। इस पत्र का सम्पादन उनके भतीजे स्व० कृष्णकांत मालवीय ने भी किया। इसका संचालन और सम्पादन उनके पौत्र श्री पदकांत मालवीय ने भी किया।

'अभ्युदय' के पश्चात् मालवीय जी ने 'मर्यादा' मासिक पत्रिका का संचालन भी किया। इतना कुछ होने पर भी मालवीय जी सन्तुष्ट नहीं हो पा रहे थे। जो कुछ सोचते थे, उसको जनता तक पहुँचाने हेतु उन्होंने २४ अक्टूबर, १६०६ को विजय दशमी के दिन 'लीडर' नामक दैनिक पत्र का शुभारम्भ किया। मालवीय जी की देख-रेख में हिन्दी दैनिक 'भारत' भी निकलता था। इन दोनों पत्रों के लिए मालवीय जी को अपनी पत्नी के गहने तक बेचने पड़े।

मालवीय जी के अनुसार एक पत्रकार आदर्श मान-मर्यादा से ओत-प्रोत हो, उसमें देश-प्रेम कूट-कूट कर भरा हो, ताकि वे देश का मार्ग-दर्शन ठीक प्रकार से कर सके। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए उन्होंने अकालियों से 'हिन्दुस्तान टाइम्स' पत्र खरीद कर बहुत दिनों तक चलाया। परन्तु अधिक कार्य में व्यस्त होने के कारण, बाद में उन्होंने इसे एक लिमिटेड कम्पनी को सौंप दिया। आज नई दिल्ली से 'हिन्दुस्तान टाइम्स' (अंग्रेजी मे) और 'हिन्दुस्तान' (हिन्दी मे) प्रकाशित हो रहे है, वे मालवीय जी की प्रेरणा का फल है।

बहुत से छोटे-मोटे पत्र-पत्रिकाओ को मालवीय जी का संरक्षण और सहयोग भी प्राप्त होता रहा। दिल्ली से प्रकाशित होने वाले 'गोपाल' साप्ताहिक के संरक्षक मालवीय जी थे। इस पत्र के आर्थिक संकट को दूर करने के लिए मालवीय जी ने बड़े-बड़े उद्योगपतियों को पत्र लिखे।

मालवीय जी ने २० जुलाई, १६३३ की गुरु-पूर्णिमा को 'सनातन धर्म' नामक साप्ताहिक पत्र प्रकाशित किया। इसमे विशेषत: उनके धार्मिक विचार प्रकाशित होते

थे। पत्रकारिता के क्षेत्र में वे सभी कार्य संकलन, पत्र का मेकअप, गेटअप, करेक्शन, प्रूफ-रीडिंग आदि में सिद्ध-हस्त थे।

मालवीय जी ने साधनहीन ब्राह्मण परिवार में जन्म से लेकर, जिस साहस से पढ़कर देश-सेवा एवं समाज-सेवा का कार्य अपनी पत्रकारिता के अनुशीलन के माध्यम से किया, वह कम लोग कर सकते हैं, यद्यपि भारत भूमि वीरों की भूमि है, तथापि मालवीय जी सरीखे विरले ही हो सकते हैं। उन्होंने देश और समाज के लिए करोड़ों रुपया संग्रह किया और उसमें से एक कौड़ी भी अपने व्यक्तिगत कार्य में नहीं खर्ची। वर्तमान पीढ़ी को उनके महान् प्रेरणादायक जीवन से प्रेरणा लेनी चाहिए।

मालवीय जी का जन्म २५ दिसम्बर, १८६१ में इलाहाबाद के विद्वान ब्राह्मण परिवार में हुआ था। इनके पिता का नाम पं० बैजनाथ मालवीय था। बी० ए०, एल० एल० बी० परीक्षा उत्तीर्ण करके अध्यापक रूप में जीवन क्षेत्र में उतरे। परन्तु देश की तत्कालीन, सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक शैक्षिक-शिक्षा तथा धार्मिक परिस्थितियों ने उन्हें देश व समाज-सेवा के लिए विवश किया। अतः अध्यापन कार्य छोड़ सेवा के क्षेत्र में कूद पड़े। अपने अन्तिम समय तक देश-सेवा में रत रहे। १२ नवम्बर, १९४६ को उस महामानव का देहावसान हो गया।

पं० बालकृष्ण भट्ट

मानवीय जीवन में पत्रकारिता का बड़ा महत्त्व है। भारतीय पत्रकार-प्रधानतः हिन्दी भाषा के पत्रकार अपनी देश-भक्ति के लिए बड़े प्रसिद्ध थे। भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम में उन्होंने अभूतपूर्व त्याग व बलिदान किया। इन पत्रकारों में पं० बालकृष्ण भट्ट का नाम अग्रणीय है।

भट्ट जी ने अपनी मनोभावनाओं को जनता तक पहुँचाने तथा समाज में नई जागृति सृजन करने के लिए १ सितम्बर, १८७७ को अपनी मासिक हिन्दी पत्रिका 'हिन्दी-प्रदीप' को विक्टोरिया प्रेस, प्रयाग से प्रकाशित किया। यह पत्रिका १६ पृष्ठों में होती थी, जिसका वार्षिक मूल्य एक रुपया ग्यारह आना था। यह पत्रिका साधारण कागज पर निकलती थी और हरे या गुलाबी रंग का इसका मुख पृष्ठ होता था। पत्रिका में छपे भट्ट जी के लेख और निबंध व्यंग्यात्मक शैली में होते थे। उनके लेख किसी-न-किसी गम्भीर सामाजिक, राजनैतिक या धार्मिक आशय से परिमंडित होते थे।

उन्नीसवी शताब्दी के उत्तरार्द्ध में समाचार-पत्रों ने समाज में फैली कुप्रथाओं के विरुद्ध सर्वप्रथम अभियान आरम्भ किया। उन दिनों समाज में छोटी कन्याओं की हत्या, बाल-विवाह, विधवा विवाह न करना, दहेज प्रथा, वेश्यावृत्ति, अंधविश्वास एवं जाति प्रथा सरीखी कुप्रथाओं ने समाज को अपने शिकंजे में जकड़ा हुआ था। इनके

विरुद्ध भट्ट जी ने 'हिन्दी-प्रदीप' के माध्यम से जन-साधारण में चेतना लाने का वातावरण तैयार किया। 'हिन्दी-प्रदीप' के जून १८९० के अंक में भट्ट जी ने लिखा —"विवाह-आयु को कानून द्वारा निश्चित करना चाहिए। लड़कियों की आयु १२ से १४ वर्ष और लड़कों की आयु १८ से २० वर्ष होनी चाहिए।"

भट्ट जी सामाजिक अंधविश्वासों और रूढ़ियों के प्रति व्यंग्य कसा करते थे। एक स्थान पर तत्कालीन नारी समाज में प्रचलित पर्दा-प्रथा की भर्त्सना करते हुए व्यंग्य किया—"बाबू दंदान तोड विलायत की राह के लिए कदम उठाए हैं बबुआयन घर गोबर ही पाथती रही। बाबू साहब, लाला साहब, मिस्टर सी एण्ड सी कहे जाने की उमंग में फूले न समाते। 'पर ललाइन कौआ हकनी ही रह गई।'

छुआ-छूत जो समाज मे दीपक का काम करती है इसके विरुद्ध भट्ट जी ने पुरजोर अभियान चलाया। 'हिन्दी प्रदीप' के जुलाई १८८४ के अंक मे उन्होंने लिखा — 'छुआ-छूत की प्रथा अमानवीय और अन्यायपूर्ण है। क्योंकि यह धार्मिक भावनाओं को ठेस पहुँचाती है।"

अंग्रेजो की रंग-भेद एवं जातीय नीति भारतीय मे जनता व्यग्रता उत्पन्न कर रही थी। भारतीयो को कुत्ते तथा नीग्रो आदि शब्दो से सम्बोधित करना अंग्रेजों का स्वभाव बन गया था। भट्ट जी ने 'हिन्दी-प्रदीप' मे इसका विरोध करते हुए लिखा—"अंग्रेज अफसर भारतीयो का अनादर करते हैं और उनकी भावनाओं की उपेक्षा करते हैं जो एक सरेआम अन्याय है।"

पत्रकारिता के बढ़ते चरण अंग्रेजो के लिए घातक सिद्ध हो रहे थे। अतः वाइसराय लार्ड लिटन की सरकार ने १४ मार्च १८७६ मे वर्नाकूलर प्रेस एक्ट पास करके भारतीय पत्रकारिता का गला घोंट दिया। भट्ट जी ने इसका खुले रूप से विरोध करते हुए, 'हिन्दी-प्रदीप' के अप्रैल, १८७८ के अंक में लिखा - 'यदि भारतीय पत्रकार इसलिए अयोग्य है कि वे विश्वविद्यालय के स्नातक नही अथवा वे कोट पतलून नही पहनते, अथवा वे अपनी सभ्यता और संस्कृति से चिपके हुए हैं, तब तो अंग्रेज अपनी जगह सही हैं। यदि शिक्षा का अर्थ सच्चाई, शक्ति, योग्यता, सही और गलत में अन्तर करना, ईमानदारी तथा देश भक्ति है तो भारतीय पत्रकार उतने ही शिक्षित है, जितने अंग्रेज पत्रकार।"

प्रातीय लेजिस्लेटिव कांसिल मे भारतीय प्रतिनिधित्व की मांग को सरकार के सामने रखते हुए भट्ट जी ने 'हिन्दी-प्रदीप' के अक्टूबर १८८६ के अंक में लिखा, "उत्तर प्रदेश के सभी प्रमुख नगरो—आगरा, कानपुर, इलाहाबाद, बनारस, और लखनऊ को इस कासिल मे प्रतिनिधित्व अवश्य मिलना चाहिए। क्योंकि अंग्रेज भारतीयों के विचार, भावनाओ, प्रथाओं और दशा से अपरिचित हैं। अतः आधे सदस्य भारतीय होने चाहिए और वे चुनाव द्वारा आने चाहिएं।'

फलतः भट्टजी एक निर्भीक राष्ट्रवादी पत्रकार थे। जिस समय स्वराज्य का

नाम लेना भी अपराध समझा जाता था, ब्रिटिश सरकार के विरोध मे एक शब्द भी लिखना गुनाह था, अंग्रेज अफसरों के विरोध मे चूं कर सकना जेल जाने के लिए पर्याप्त मसाला था; ऐसे समय में भट्टजी ने सच्चे तथा देश-भक्त पत्रकार के दायित्व को भली-भांति निभाया।

भट्टजी का जन्म ३ जून, १८४४ को प्रयाग मे हुआ था। इनके पिताजी का नाम वेणीप्रसाद भट्ट था। एंट्रेंस पास करके भारतेन्दु जी की 'कवि-वचन-सुधा' मे अपना प्रथम लेख - 'कलिराज की सभा' प्रकाशित कराके लेखन का कार्य आरम्भ किया। इन्होने 'हिन्दी प्रदीप' और कालाकाकर से प्रकाशित होने वाले साप्ताहिक समाचार-पत्र 'सम्राट' का कुशलता पूर्वक संपादन किया। इनके लेख हिन्दी, संस्कृत, उर्दू और फारसी भाषाओ मे प्रकाशित होते थे, परन्तु 'हिन्दी-प्रदीप' के माध्यम से उन्होने राष्ट्रीय चेतना, हिंदी प्रेम तथा निर्भीकता का परिचय दिया। इनका स्वर्गवास १४ सितम्बर, १९१४ ई० को हुआ।

बालमुकुन्द गुप्त

हिन्दी-पत्रकारिता की प्रारम्भिक अवस्था को सुदृढ करने मे बाबू बालमुकुन्द गुप्त का विशिष्ट स्थान है। श्री गुप्त जी उर्दू की दुनिया से हिन्दी मे पधारे थे। रामचन्द्र शुक्ल ने उन्हे अपने समय का सबसे अनुभवी और कुशल संपादक माना था। उनका व्यंग्य उनके विरोधियों को झकझोर देता था। 'शिव शम्भू के चिट्ठे' मे लार्ड कर्जन पर जो उन्होने खुला और निर्भीक प्रहार किया था, वह नैतिक वल और भाषाई क्षमता का अपूर्व उदाहरण है। अपने समय मे उनका हिंदी पत्रकारिता के आकाश पर अखंड साम्राज्य था।

गुप्तजी का जन्म हरियाणा के गुडियानी नामक कस्बे मे सन १८६५ के नवम्बर महीने मे हुआ था। भारतेन्दु जी के काल मे ही गुप्त जी सामने आए। गुप्त जी ने १८८६ में 'अखबारे चुनार' नामक उर्दू अखबार का सम्पादन किया। तत्पश्चात उन्होने लाहौर के 'कोहनूर' नामक अखबार का सम्पादन सन् १८८८ से १८८९ तक किया।

सन् १८८९ मे 'श्री भारतवर्ष धर्म महामंडल' का महा-अधिवेशन जो वृन्दावन में हुआ था, के अवसर पर उनकी भेंट पंडित मदनमोहन मालवीय से हुई। मालवीयजी ने उन्हे हिन्दी दैनिक 'हिन्दोस्तान' के सम्पादकीय मंडल मे आने का आग्रह किया। 'हिन्दोस्तान' को कालाकाकर के राजा रामपालसिंह निकाला करते थे और उसका सम्पादन मालवीयजी किया करते थे।

गुप्तजी सन १८८९ में 'हिन्दोस्तान' के सम्पादकीय विभाग मे आए। यहीं से उनकी हिंदी सेवा आरम्भ होती है। यही पर उन्होने प्रतापनारायण मिश्र से हिन्दी में कविता करनी सीखी। सन् १८९२ में गुप्तजी अमृतलाल चक्रवर्ती के सम्पादकत्व

में प्रकाशित 'हिन्दी बंगवासी' के सह-सम्पादक नियुक्त होकर कलकत्ते गए। कलकत्ते में लगभग ६ वर्ष तक 'हिन्दी बंगवासी' में अनेक विषयों पर गद्य और पद्य लिखकर हिन्दी विकास में अपना सक्रिय योगदान दिया।

सन् १८९९ से अपने जीवन के अन्त (१९०७) तक वह कलकत्ता से प्रकाशित 'भारत मित्र' के प्रधान सम्पादक पद पर कार्यरत रहे। उनकी लेखनी के प्रभाव से 'भारत मित्र' अपने समय का प्रमुख हिंदी पत्र कहलाने लगा था।

गुप्तजी भारतीय राष्ट्रीयता के प्रबल समर्थक और भारतीय संस्कृति के दृढ़ पोषक थे, लेकिन रूढ़िवाद तथा पोगापन उन्हें सहन नही था। जिस समय गुप्तजी ने पत्रकारिता के क्षेत्र मे प्रवेश किया, उस समय अखिल भारतीय कांग्रेस की स्थापना हो चुकी थी। समस्त भारत मे राष्ट्रीय भावनाएँ हिलोरें ले रही थी। अतः गुप्तजी ने अपनी पत्रकारिता के माध्यम से राष्ट्रीय जागृति को बढाने मे अपना योगदान दिया।

उन्होने अपने लेखो मे अनेक विद्वानो पं० प्रतापनारायण मिश्र, पं० देवकीनंदन तिवारी, पं० अम्बिकादत्त व्यास, पं० देवीसहाय पाडेय, प्रभूदयाल, बाबु रामदीनसिंह, पं० गौरीदत्त, माधव प्रसाद मिश्र, हरबर्ट स्पेंसर, मैक्समूलर आदि का परिचय दिया। अपने काल के जिन पत्रो का वर्णन किया, उनमें 'बनारस अखबार', 'सुधारक', 'कवि-वचन-सुधा', 'अल्मोड़ा अखबार', 'हिन्दी दीप्ति प्रकाश', 'बिहार बन्धु', 'सदादर्श', 'काशी पत्रिका', 'सार सुधानिधि,' 'उचित वक्ता', 'भारत मित्र', दैनिक पत्र 'हिन्दोस्तान', आदि के नाम हैं।

गुप्त जी ने अनेक रचनाएं की, जिनमे रत्नावली नाटिका, हरिदास, हिन्दी भाषा, स्फुट कविता, बालमुकुन्द गुप्त निबंधावली प्रमुख हैं। उनकी भाषा हिन्दी, उर्दू, फारसी, बंगला और अंग्रेजी थी। अतः कहा जा सकता है कि गुप्तजी एक निर्भीक एवं तेजस्वी पत्रकार और हिन्दी गद्य तथा व्यंग्य-साहित्य के आलोक स्तंभ थे। उनमें भारतीय राष्ट्रीयता कूट-कूट कर भरी थी और वे भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता से ओत-प्रोत थे।

प्रताप नारायण मिश्र

१५ मार्च, १८७३ का दिन हिन्दी पत्रकारिता तथा हिन्दी गद्य के लेखन के इतिहास मे महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। इस दिन पं० प्रतापनारायण मिश्र ने कानपुर से 'ब्राह्मण' पत्र का शुभारम्भ किया था। वे निर्धनता में मस्त, हँसमुख, निर्भीक तथा अनेक भाषाओं के पंडित थे। वे हिन्दुत्व के प्रहरी, तथा हिन्दी के अनन्य भक्त थे। हिन्दी पत्रकारिता, हिन्दी, और देश भक्ति से ओत-प्रोत होकर उन्होने पत्रकारिता के क्षेत्र में पदार्पण किया। इन्होंने लगभग ५० पुस्तकें लिखी, किन्तु उनकी प्रसिद्धि आज भी उनके निबंधों के कारण है, जो प्रायः 'ब्राह्मण' पत्र में प्रकाशित होते थे।

उस समय पत्रकारिता एक घाटे का सौदा था। परन्तु पत्रकारिता ने उनको इतना आकर्षित कर लिया था कि उन्हें और कोई वस्तु अपनी ओर खीच नहीं सकती थी। अतः जुलाई १८८९ में राजा रामपाल सिंह के सुप्रसिद्ध पत्र 'हिंदोस्तान' में सह-सम्पादक होकर कालाकांकर चले गये। वहां पर वेतन तथा अन्य सभी प्रकार की सुविधाएं उपलब्ध थी। साथ ही सम्पादक मंडल में पं० मदनमोहन मालवीय, बालमुकुन्द गुप्त, पं० राधाचरण चौबे तथा रामलाल मिश्र, आदि का साथ भी सुखद था। किन्तु वह स्वाभिमानी ब्राह्मण किसी की नौकरी आदि में बंद नही रह सका, और एक वर्ष पश्चात् जौलाई १८९० में वह पुनः कानपुर लौट आये। वे कालाकांकर में रहते हुए भी 'ब्राह्मण' का सम्पादन कर रहे थे। यह पत्र उन्हें प्राणों से भी प्यारा था। कानपुर आने पर मिश्र जी ने अपना सारा समय इसके लिए समर्पित कर दिया और अनेक कठिनाइयों के होते हुए भी सन १८९४ तक पत्र को प्रकाशित करते रहे। उनके जीवन की बहुमूल्य उपलब्धि 'ब्राह्मण' पत्र हिन्दी पत्रकारिता इतिहास की एक अमूल्य निधि है। पाठकों ने इस निधि का हृदय से स्वागत किया। इस स्वागत का श्रेय उनकी शैली को जाता है, जिसकी सबसे बड़ी विशेषता सरलता एवं आत्मीयता है। भाषा की सरलता का उदाहरण प्रस्तुत है :

"अब तो आप समझ गए न कि आप क्या हैं? "आप कौन है? कहां के हैं? कौन के हैं? यदि यह भी न हो सके तो लेख पढ के आपे से बाहर जाइये तो हमारा क्या अपराध है? हम केवल जी में कह लेंगे - शाव। आप न समझो तो अमां की पड़ी छै। ऐं। अब भी नही समझे? वाह रे आप।"[1]

उनकी भाषा मुहावरेदार और घरेलू होती थी। मालवीयजी और बालमुकुन्द गुप्त मिश्र जी को अपना गुरु मानते थे। बालकृष्ण भट्ट उनसे बहुत प्रभावित थे और भारतेन्दुजी भी उन्हें अत्यन्त मान देते थे। इस सारी प्रसिद्धि का कारण उनका चुटीला हास्य, सत्य कथन, साहस और देश-प्रेम था। उनका 'ब्राह्मण' पत्र इन सभी आदर्शों का मूर्तिमान था। उनके साहित्य का अधिकांश भाग 'ब्राह्मण' में प्रकाशित होता था और इसी पत्र के माध्यम से उनकी सशक्त शैली का ज्ञान होता है।

मिश्र जी ने 'ब्राह्मण' में राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक और साहित्यिक अनेक लेख प्रकाशित किए। उनका वर्गीकरण सरल कार्य नही है क्योकि एक ही निबंध कही तो राजनैतिक ही जाता है, कही सामाजिक और कही उसमें हास्य-व्यंग्य परिलक्षित होता है। यही कारण है कि उनके एक ही निबंध में विभिन्न शैलियां विद्यमान हैं बहुत कठिनाई से कोई एक निबंध प्राप्त होता है जिसमें एक ही शैली प्राप्त होती है। लेकिन मिश्रजी के निबंध इन सब बातों के होते हुए भी रुचिकर होते हैं। पाठक ऊबता नहीं है चूंकि वे पाठकों की रुचि और आवश्यकतानुसार ही लिखते थे।

उन्होंने वर्णनात्मक और उपदेशात्मक शैलियों का बहुत प्रयोग किया। उनके

१. 'ब्राह्मण' ख० ६, सं० ८, 'भाव' शीर्षक लेख

उपदेश में हर नया वाक्य होता है और नये वाक्य में नया विचार। कही-कही एक वाक्य में कई उपवाक्य होते है और उनमे भिन्न-भिन्न सलाह होती है। ऐसी शैली को शास्त्रीय परिभाषा में समास शैली की संज्ञा दी जाती है।

मिश्र जी भारतेन्दु जी के अनन्य भक्त थे। वे श्री गणेशाय नमः के स्थान पर श्री हरिश्चन्द्राय नमः लिखा करते थे। उन्होंने भारतेन्दु मृत्यु सवत भी चलाया था जिसे अपने 'ब्राह्मण' समाचार पत्र के मुखपृष्ट पर लिखा करते थे। 'ब्राह्मण' के ऊपर अर्धचंद्र और एक के चिन्ह अकित रहते थे। इनमें अर्धचन्द्र भारतेन्दु का और एक भारतीय एकता का प्रतीक था। एकता पर जो लेख उन्होंने प्रकाशित किए उनमें भावात्मक तथा विचारात्मक शैली अपनाई गई। उनके काव्यात्मक लेखो मे अलंकृत शैली का प्रयोग मिलता है।

मिश्र जी मुहावरेदार भाषा के शौकीन थे। 'ब्राह्मण' पत्र में ऐसे अनेक लेख प्राप्त होते हैं, जिनमे मुहावरो की भरमार है। उदाहरण के लिए, "सर्वं सहायक सबल को कोउ न निबल सहाय।"[1]

किन्तु मिश्र जी अपने समय की कमियो से दूर नही थे। उस समय विराम चिन्हों का प्रचलन नही था। इसलिए उनकी भाषा मे विराम चिन्हो की बहुत अशुद्धियाँ उपलब्ध होती है। इतना कुछ होते हुए भी उनकी भाषा अन्य तत्कालीन साहित्यिक प्रतिभाओ की अपेक्षा कही अधिक सात्विक तथा अधिक व्यावहारिक थी। उन्होंने ग्रामीण शब्दो, मुहावरो तथा कहावतों का प्रयोग किया है जिसके कारण उनकी खूब आलोचना भी होती है, परन्तु उनकी इस भाषा ने सर्वसाधारण का ध्यान उर्दू-फारसी से हटाकर हिन्दी की ओर आकर्षित किया था। वे 'ब्राह्मण' पत्र मे सामान्य जनता की भाषा मे, सामान्य जनता के लिए सामान्य जन-कल्याण की भावना से लिखते थे.। यही कारण है कि उनका 'ब्राह्मण' पत्र राज्य प्रासादो से लेकर गाँव की चौपाल तक समान रूप से आदर पाता था।

निष्कर्ष यह निकलता है कि मिश्र जी ने अपनी पत्रकारिता के माध्यम से जहाँ सामाजिक तथा राजनैतिक चेतना लाने का प्रयास किया, वहाँ साथ-ही-साथ हिन्दी गद्य के विकास मे पूर्ण योगदान दिया।

मिश्रजी का जन्म २७ सितम्बर,१८५६ को कानपुर मे हुआ था। आपके पिता का नाम पं० संकरा प्रसाद मिश्र था। आपकी शिक्षा अधिकतर घर पर ही हुई। आपने १५ मार्च १८८३ से 'ब्राह्मण' पत्र का प्रकाशन किया। लेकिन १८८६ में दैनिक 'हिन्दोस्तान' में कुछ एक वर्ष के लिए सह-सम्पादक का कार्य भी कुशलतापूर्वक किया। आपने लगभग ३२ पुस्तको की रचना की, जिनमे १२ अनूदित तथा २० मौलिक है। मिश्रजी भारतेन्दु-मडल के सशक्त कवि, गद्यकार, पत्रकार, नाटककार, निबंधकार तथा अनुवादक माने जाते हैं। वे हिन्दी के परम तथा अनन्य उपासक थे। उनका स्वर्गवास जुलाई १८९४ ई० मे हुआ।

१. 'ब्राह्मण', ख० २, स० ४

समाचार-पत्रों की सूची

दैनिक-हिन्दी

हिन्दोस्तान—कालाकाकर, राजा रामपाल सिंह, १८८५ ई०
भारतोदय—कानपुर, बाबू सीताराम, १८८५ ई०

साप्ताहिक

बनारस अखबार—काशी, राजा शिवप्रसाद, १८४५ ई०
मालवा अखबार—मुरादाबाद, — १८४५ ई०
सुधाकर – काशी, तारा मोहन मैत्रेय, १८५० ई०
बुद्धिप्रकाश—आगरा, सदासुखलाल, १८५२ ई०
प्रजा हितैषी—आगरा, राजा लक्ष्मणसिंह, १८५५ ई०
सर्वहितकारक—आगरा, शिवनारायण, १८५५ ई०
धर्मप्रकाश—आगरा, मनसुखराम, १८५५ ई०
सूरजप्रकाश – आगरा, गणेशीलाल, १८५६ ई०
सर्वोपकारक—आगरा, शिवनारायण, १८६१ ई०
जगत समाचार – आगरा — १८६१ ई०
जगत्प्रकाश—मुरादाबाद, — १८६६ ई०
अल्मोड़ा अखबार अल्मोडा—पं० सदानन्द, १८६६ ई०
ज्ञानप्रकाश—कानपुर, — १८७० ई०
मयूर गजट—मेरठ, — १८७० ई०
इन्दुप्रकाश – कानपुर, — १८७१ ई०
नागरी प्रकाश—मेरठ, — १८७१ ई०
चरणचंद्रिका – बनारस, — १८७२ ई०
— १८७३ ई०

प्रिंस आफ वेल्स गजट—मुरादाबाद, — १८७३ ई०
भारत बंधु—अलीगढ़, तोताराम, — १८७४ ई०
काशी पत्रिका - काशी, लक्ष्मीशंकर मिश्र, १८७५ ई०
आनन्द लहरी—बनारस, धीरज शास्त्री, १८७५ ई०
नागरी पत्रिका—इलाहाबाद, सदासुखलाल, १८७७ ई०
शुभ चिन्तक - कानपुर, — १८७८ ई०
सज्जन विनोद—आगरा, कृष्णलाल, १८७८ ई०
काशी पंच—काशी, — १८७८ ई०
प्रयाग समाचार—इलाहाबाद, देवकीनन्दन त्रिपाठी, १८८२ ई०
बनारस गजट—बनारस, — १८८२ ई०
काशी समाचार—काशी, बिहारीसिंह, १८८३ ई०
ग्रुञ्ज गजट—बुलन्दशहर, गंगासहाय, १८८५ ई०
वेदांत प्रकाश—इलाहाबाद, — १८८५ ई०
सत्यार्थ प्रकाश— — — १८८५ ई०
भारत जीवन—बनारस, रामकिशन वर्मा, १८८५ ई०
जियालाल प्रकाश—फरुखनगर, जियालाल, १८८७ ई०
आर्य समाचार—मेरठ, मुंशी कल्याणराय, १८८८ ई०
मित्र—बनारस, पं० दामोदर, १८८९ ई०
कायस्थ शुभचिन्तक—बरेली, ठाकुरप्रसाद, १८८९ ई०
प्रजा हितकारक—आगरा, रामचन्द्र गुप्ता, १८८९ ई०
खिचड़ी समाचार—इलाहाबाद, — १८९० ई०
कायस्थ समाचार - इलाहाबाद, — १८९० ई०
कायस्थ पंथ—इलाहाबाद, — १८९० ई०
सुदर्शन चक्र—वृन्दावन, पं० ठाकुरप्रसाद शर्मा, १८९० ई०
गो-सेवक—बनारस, जगत नारायण, १८९२ ई०
नागरी निरोध—मिर्जापुर, काशी प्रसाद, १८९२ ई०
सनाढ्य उपकारक - आगरा, हीरालाल, १८९४ ई०
नीति प्रकाश—मुरादाबाद, बंशीधर, १८९४ ई०
बंशी वाला—मुरादाबाद, बंशीधर, १८९४ ई०
सत्योपकारी—बरेली, ठाकुरप्रसाद, १८९४ ई०
भारत भूषण—बनारस, रामप्यारी, १८९४ ई०
वेदप्रकाश—कानपुर, हीरालाल, १८९४ ई०
विश कर्मा—मथुरा, सुन्दर देव, १८९५ ई०
चतुर्वेदी—आगरा, हीरालाल, १८९५ ई०
नित्य पत्र—इलाहाबाद, विद्याधर्मवर्द्धिनी प्रेस, १८९५ ई०

संसार दर्पण—झांसी, पं० अयोध्या प्रसाद, १८९५ ई०
स्वतन्त्र—लखनऊ, — १८९५ ई०
आर्य भास्कर—लखीमपुर, सूरज प्रसाद, १८९६ ई०
विद्या विनोद—लखनऊ, कृष्ण बलदेव, १-९७ ई०
प्रताप—अलीगढ़, ज्वालानगर, १८९७ ई०
जैन गजट—देवबंद, — १८९७ ई०
आर्य मित्र—मुरादाबाद, पं० भगवानदीन, १८९७ ई०
रसिक वटिका—कानपुर, व्रजभूषणलाल, १८९७ ई०
त्रिवेणी तरंग—इलाहाबाद, पं० जगन्नाथ तिवारी, १८९९ ई०
प्रेम पत्रिका—कानपुर, मनोहर लाल, १८९९ ई०
सर्वोहितकारी—अल्मोड़ा, देवीप्रसाद, १९०० ई०

पाक्षिक

प्रजाहित—इटावा, हाकिम जवाहरलाल, १८६३ ई०
विद्यादर्श—मेरठ, — १८६९ ई०
समयविनोदनी नैनीताल, जयदत्त जोशी, १८६९ ई०
प्रेम-पत्र - आगरा, रायबहादुर, १८७२ ई०
भारतेन्दु—वृन्दावन, राधाचरण गोस्वामी, १८८३ ई०
प्रयाग मित्र—इलाहाबाद, वैजनाथ, १८८७ ई०
सनातनधर्म पत्र वृंदावन, १८९१ ई०
विगी वृंदावन—वृंदावन, नन्हेलाल गोस्वामी, १८९२ ई०
कायस्थ कांफ्रेंस प्रकाश—लखनऊ, दीपनारायण वर्मा, १८९४ ई०
कुमायू समाचार—अल्मोड़ा, लाला डोरीदास, १८९४ ई०
काल भैरव - बनारस, गणेश बाबाजी फड़के, १८९७ ई०
सर्वहितकारक—अल्मोड़ा, लाला देवीदास, १९०० ई०

मासिक

लोक-मित्र—सिकंदरा (निकट आगरा), — १८६३ ई०
भारत खंड मित्र—आगरा, वंशीधर, १८६४ ई०
ज्ञान दीपक—सिकन्दरा, — १८६६ ई०
कवि-वचन-सुधा - काशी, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, १८६७ ई०
मंगल समाचार—अलीगढ़, ठाकुर गौरीप्रसाद, १८६९ ई०
हरिश्चन्द्र मैगजीन—बनारस, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, १८७३ ई०
मर्यादा पारीपति समाचार—आगरा, दुर्गाप्रसाद शुक्ल, १८७३ ई०

प्रयाग धर्मप्रकाश—इलाहाबाद, पं० शिवरतन, १८७५ ई०
आर्य पत्रिका—मिर्जापुर, जान हैवट, १८७५ ई०
आर्य दर्पण, आर्य भूषण—शाहजहाँपुर, मुंशी बख्तावरसिंह, १८७६ ई०
धर्म समाज पत्र—अलीगढ़, — १८७६ ई०
धर्म पत्र - इलाहाबाद, सदासुखलाल, १८७६ ई०
धर्म-प्रकाश—इलाहाबाद, सदासुखलाल, १८७६ ई०
हिन्दी-प्रदीप—इलाहाबाद, बालकृष्ण, भट्ट, १८७७ ई०
जैन पत्रिका—इलाहाबाद, — १८८० ई०
परमार्थ ज्ञान चन्द्रिका - बनारस, प्रेमचन्द्र, १८८० ई०
आनन्द कादम्बिनी मिर्जापुर, बद्रीनारायण, १८८१ ई०
आरोग्य दर्पण—इलाहाबाद, पं० जगन्नाथ, १८८१ ई०
कुलश्रेष्ठ समाचार - अलीगढ़, तोरीलाल, १८८२ ई०
ऋग्वेद भाष्यम - इलाहाबाद, परोपकारनी सभा, १८८२ ई०
यजुर्वेद भाष्यमं - इलाहाबाद, परोपकारनी सभा, १८८२ ई०
देवनागरी प्रचारक—देवनागरी प्रचारिणी सभा, मेरठ पं० गोरीदत्त, १८८२ ई०
ब्राह्मण—कानपुर, प्रतापनारायण मिश्र, १८८३ ई०
भारत सुधा प्रवर्त्तक—फरुखाबाद, कालीचरण, १८८३ ई०
सत्यप्रकाश—बरेली, बिशनलाल एम० ए०, १८८३ ई०
शुभ चिन्तक - शाहजहाँपुर, बाबू सीताराम, १८८३ ई०
दिनकर प्रकाश—लखनऊ, बालभद्र मिश्र, १८८३ ई०
कविकुल कुंज दिवाकर—बस्ती, पं० रामनाथ शुक्ल, १८८४ ई०
वैष्णव पत्रिका—बनारस, अम्बिकादत्त व्यास, १८८४ ई०
कान्य-कुब्ज प्रकाश—लखनऊ, सीताराम, १८८३ ई०
धर्म प्रचारक—बनारस, राधा के० दास, १८८५ ई०
कवि अमृत वर्षनी—लखनऊ, पं० शिवदत्त मिश्र, १८८५ ई०
गौ धर्मप्रकाश - फरुखाबाद, पं० हरदयाल शर्मा, १८८५ ई०
भारतचन्द्रोदय - कानपुर, बाबू गुरुबख्शसिंह, १८८५ ई०
धर्म प्रकाश मुरादाबाद, गोरीलाल, १८८५ ई०
रसिक पंथ—इलाहाबाद, बालभद्र, १८८६ ई०
शुभ संवाद—लखनऊ, पं० लक्ष्मण, १८८६ ई०
गुर्जर समाचार—मथुरा, रामनारायण, १८८७ ई०
आयुर्वेद उद्धारक—मथुरा, मथुरादत्त, १८८७ ई०
नारदमुनी—मेरठ, — १८८८ ई०
खत्री हितकारी - मथुरा, पं रामनारायण, १८८८ ई०
भारत भगनि—इलाहाबाद, पं० भीमसैन शर्मा, १८८८ ई०

क्षत्री अधिकारी—काशी, हरप्रसाद, १८८८ ई०
उपनिषद्—इलाहाबाद, गोपालदीन, १८८९ ई०
आरोग्य सुधाकर - मुजफ्फरनगर, पं० मुरलीधर, १८८९ ई०
विचार पत्र इटावा, — १८७९ ई०
भारत भानु—लखनऊ, पं० मुखनदास, १८८९ ई०
जाट समाचार—आगरा, बाबू कन्हैयालाल सिंह, १८८९ ई०
कायस्थ पत्रिका लखनऊ, देवीप्रसाद, १८८९ ई०
सुगृहिणी—इलाहाबाद, श्रीमती हेमन्तकुमारी, १८८९ ई०
आरोग्य जीवन इलाहाबाद, गजानन्द, १८८९ ई०
हिन्दी पंच—अलीगढ़, — १८९० ई०
बृजराज मथुरा, — १८९० ई०
परोपकारी आगरा, परोपकारनी सभा, १८९० ई०
ब्रह्मावर्त—बनारस, पं० कृपाराम, १८९० ई०
आर्य मित्र—काशी, बाबू भूतनाथ मुकर्जी, १८९० ई०
भारत प्रकाश - मुरादाबाद, पं० बनवारीलाल, १८९० ई०
सत्य धर्म मित्र—आगरा, — १८९० ई०
जगत मित्र—मथुरा, पं० क्षेत्रपाल शर्मा, १८९१ ई०
मानव धर्म-शास्त्र—इलाहाबाद, भीमसेन शर्मा, १८९१ ई०
शिक्षक—मथुरा, एम० सी० शुक्ला, १८९१ ई०
सतयुग—बरेली, ठाकुरप्रसाद, १८९२ ई०
क्षत्री हितोपदेशक—आगरा, हरनाथसिंह, १८९२ ई०
जैन हितैषी—मुरादाबाद, बाबू पन्नालाल, १८९२ ई०
बृजवासी—मथुरा, आर० एल० बर्मन, १८९२ ई०
ब्राह्मण हितकारी—काशी, पं० कृपाराम, १८९२ ई०
सरस्वती—काशी, पं० बनवारीलाल, १८९२ ई०
साकेत जीवन—अयोध्या, पं० रामनारायण सिंह, १८९२ ई०
भारत प्रताप मुरादाबाद, पं० प्रतापकिशन, १८९३ ई०
भट्ट भास्कर—कानपुर, पन्नालाल, १८९३ ई०
सुधा-सागर- कानपुर, छदम्मीलाल दुबे, १८९३ ई०
महेश्वरी पत्र—अलीगढ़, — १८९४ ई०
रत्नाकर इलाहाबाद, पं० शिवरम पांडेय वैद्य, १८९४ ई०
नया पत्र इलाहाबाद, — १८९४ ई०
साहित्य सुधा निधि - काशी, जगन्नाथदास, १८९४ ई०
दीन-बंधु—फर्रुखाबाद, गुरदयाल, १८९५ ई०
जैन समाचार -लखनऊ, कन्हैयालाल, १८९५ ई०

काशी वैभव—काशी, — १८९६ ई०
चंद्रिका—लखनऊ, हजारीलाल, १८९७ ई०
भारतोपदेशक—मेरठ, ब्रह्मानन्द, १८९७ ई०
उपन्यास—काशी, किशोरीलाल, १८९८ ई०
सनातन धर्म—सहारनपुर, — १८९८ ई०
विचार पत्रिका—मुरादाबाद, — १८९८ ई०
तत्त्व प्रभाकर—मुरादाबाद, भगवानदीन, १८९८ ई०
उपन्यास लहरी—काशी, देवकीनन्दन, १८९८ ई०
पंडित पत्रिका—काशी, बालकृष्ण शास्त्री, १८९८ ई०
निर्भय ब्रह्मानन्द—इटावा, बालकृष्ण, १९०० ई०
सुदर्शन—काशी, देवकीनन्दन खत्री, १९०० ई०
सनातन धर्म पताका—मुरादाबाद, रामस्वरूप, १९०० ई०
राजपूत—आगरा, हनुमंतसिंह, १९०० ई०
जैनी—इलाहाबाद, मनोहरलाल, १९०० ई०
प्रेम-पत्रिका—कानपुर, पं० मनोहरलाल, १९०० ई०
भारतोद्धारक—मेरठ, तुलसीराम, १९०० ई०

११ सहायक आधार-स्रोत

अप्रकाशित स्रोत

१. एन० डब्लू० पी०, अवध तथा पंजाब और बंगाल के स्वदेशी समाचार-पत्रों पर रिपोर्टस् – १८६४-१९००; ये रिपोर्टस् वर्नाकूलर पत्रों पर महत्त्वपूर्ण स्रोत हैं। ये अनुवादक के द्वारा साप्ताहिक तैयार की जाती थी जो गोपनीय प्रलेख हैं। ये बहुत अच्छे ढंग से तैयार की गई हैं और इनमें कार्टून भी लिखे गए। ये रिपोर्टस् राष्ट्रीय अभिलेखागार नई दिल्ली में सुरक्षित रखी हैं।

२. ठगी और डैकती विभाग, भारत सरकार द्वारा तैयार की गई, जो राष्ट्रीय अभिलेखागार नई दिल्ली में सुरक्षित है।

३. गवर्नर-जनरल का निजी पत्र-व्यवहार और संक्षिप्त संस्मरण जो राष्ट्रीय अभिलेखागार नई दिल्ली में माइक्रो-फिल्म में सुरक्षित है और निम्न प्रकार से है :

(i) डफरिन और अवा का संचयन (१८८४-८८) अक्सेशन नं० १४३५-१४८०

(ii) ड्यूक ऑफ अरगील सेक्रेटरी आफ स्टेट फॉर इण्डिया (१८६८-७४) अक्सेशन नं० १६८०-१६९४।

(iii) लार्ड मायो गवर्नर-जनरल के पेपर्स (१८६९-७२) अ० नं० १५५७-१५७१

(iv) सैलीस्बरी सेक्रेटरी ऑफ स्टेट फॉर इण्डिया के पेपर्स (१८७४-७८ ई०) अ० नं० १८८३-१९१४

(v) लार्ड लिटन, गवर्नर-जनरल के पेपर्स (१८७६-८०ई०) अ० नं० १४३५-१४८०

(vi) लंसडाउन, गवर्नर-जनरल (१८८८-९४ ई०) के पेपर्स अ० नं० १०५०-१६६१

(vii) सर एच० एच० फोव्लर, सेक्रेटरी ऑफ स्टेट फॉर इण्डिया के पेपर्स (१८९४ ई०) अ० नं० १५८५

(viii) लार्ड हैमील्टन, सेक्रेटरी ऑफ स्टेट फॉर इण्डिया के पेपर्स (१८९४-१९०४ ई०) अ० नं० १५७२-१५८३

(ix) लार्ड कर्जन, गवर्नर-जनरल के पेपर्स (१८९९-१९०५ ई०) अ० नं० १६३०-१६४३

राष्ट्रीय अभिलेखागार में आरम्भिक सूची पत्रों का भंडार उपलब्ध नहीं है. बल्कि माइक्रोफिल्म में उपलब्ध है।

४. भारतीय सरकार के राजनैतिक, न्यायिक, पुलिस और विदेश विभागों की गोपनीय कार्यवाही रा० अ० नई दिल्ली में सुरक्षित है।

५. हंसर्ड की संसदीय डिबेटस् रा० अ० नई दिल्ली मे सुरक्षित हैं।

६. गवर्नर-जनरल की परिषद की कार्यवाही; रा० अ० नई दिल्ली।

७. मैटिरियल एण्ड मोरल प्रोग्रेस रा० अ० नई दिल्ली।

८. अखिल भारतीय राष्ट्रीय काग्रेस: अध्यक्षीय भाषण प्रथम १८८५ से १९०० (मद्रास, १९३४ ई०)

९. कुछ कमीशन जो भारतीय सरकार द्वारा नियुक्त हुये, की रिपोर्ट :

(१) पब्लिक सर्विस कमीशन १८८७

(२) प्रेस कमीशन १९५४

१०. सेक्रेटरी ऑफ स्टेट फॉर इण्डिया के पत्र भारत सरकार को और भारत सरकार के पत्र सेक्रेटरी ऑफ स्टेट फॉर इण्डिया को।

११. नेहरू संग्रहालय तथा पुस्तकालय तीन मूर्ति भवन नई दिल्ली मे कुछ स्वदेशी समाचार पत्रो की माइक्रोफिलमस् सुरक्षित हैं, जिनमे 'भारत जीवन' और 'हिन्दी-प्रदीप' हैं।

१२. डॉ० एस० आर मलहोत्रा लंदन के विश्वविद्यालय, इंस्टीचूट ऑफ कामन-वैल्थ स्टेडीज, से भारतीय प्रेस से सम्बन्धित कुछ पेपर्स लाये हैं, जो नेहरू संग्रहालय तथा पुस्तकालय नई दिल्ली में हैं।

१३. कुछ समाचार-पत्र-पत्रिका विभिन्न पुस्तकालयों में उपलब्ध हैं।

(१) भारतीय कला भवन काशी में : 'हरिश्चन्द्र मैगजीन' के वोलूम १, नं० ३, ४, ५, ६, १२, 'कवि-वचन-सुधा' : वोलूम ५ नं० ६ (१८७४ ई०) और वोलूम ०, नं० ११ सोमवार १८७६ ई०;

'प्रयाग समाचार' और 'हिन्दुस्तान' हरिश्चन्द्रिका वोलूम १, नं० ६ (जून १८७४ ई०)।

(२) नागरी प्रचारिणी सभा काशी में 'बुद्धि प्रकाश' १८५३ई०; हरिश्चंद्रिका वोलूम १ नं० ९-११ (१८७४ ई०); हिन्दी-प्रदीप १८९०-१९०९ ई०; काशी पत्रिका १८८१-१८९४ ई०; भारत मित्र (साप्ताहिक) १८७७ ई० और 'वेदप्रकाश' १८९०-१९०७ ई०; 'हिन्दी-प्रदीप' १८९१-१९००; आनन्द कादम्बिनी माला ४-८ भारतेन्दु १८९१ ई०, रसिक मित्र १८९७-९८।

(३) भारतीय भवन लाइब्रेरी इलाहाबाद में पीयूष प्रवास १८८०-१८८९ ई०; हिन्दी-प्रदीप १८७७-१८९९ ई०; ब्राह्मण १८८३-१८८५ ई०; सुगृहणी १८८७-१८८९ ई०; भारतोद्धारक १८८४-८५; गौ-धर्म-प्रकाश, १८८५-८६, ई० हरिश्चंद्रिका १८९७ ई०।

(४) सार्वजनिक पुस्तकालय, मथुरा में भारत जीवन १८८४-१९००

(५) राष्ट्रीय पुस्तकालय कलकत्ता में बहुत से पुराने पत्र उपलब्ध हैं।

उपरोक्त पुस्तकालयों के अतिरिक्त निम्नलिखित पुस्तकालयों को भी देखा गया :

१. यू० पी० सेक्रेटेरियट लाइब्रेरी लखनऊ
२. गंगाप्रसाद लाइब्रेरी लखनऊ
३. हिंदी साहित्य सम्मेलन संग्रहालय, इलाहाबाद
४. म्यूनिसिपल संग्रहालय, इलाहाबाद
५. श्री भारतेन्दु लाइब्रेरी काशी
३. नागरी प्रचारिणी सोसायटी, आगरा

प्रकाशित स्रोत

हिन्दी पुस्तकें

१. हिन्दी भाषा के सामयिक पत्रों का इतिहास—श्री राधाकृष्ण दास
२. गुप्त निबन्धावली, प्रथम भाग—श्री झावरमल शर्मा, श्री बनारसीदास चतुर्वेदी
३. हिन्दी साहित्य का इतिहास—आचार्य रामचन्द्र शुक्ल
४. समाचार पत्रों का इतिहास—पं० अम्बिकाप्रसाद बाजपेयी
५. पत्र और पत्रकार—पं० कमलापति त्रिपाठी

६. भारतेन्दु युग—डॉ० रामविलास शर्मा
७. कांग्रेस का इतिहास, प्रथम खंड—डॉ० पट्टाभि सीतारमैया
८. हिन्दी पत्रकारिता : विविध आयाम—डॉ० वेदप्रताप वैदिक
६. महामना मालवीय और पत्रकारिता—लक्ष्मीशंकर व्यास

अंग्रेजी पुस्तकें

1. *Aggarwal, Sushila—Press, Public opinion of Government in India* (Jaipur)
2. Ambedkar, B.R.—Annihilation of Caste, (Bombay). 1936)
3. Altekar, A.S.—State & Government in Ancient India (3rd Ed.) (1958)
4. Arnat Stanford—History of the Indian Press (1829)
5. Audit Bureau—The History of the Press in India, (Bombay, 1958)
6. Barns, Margarita—The Indian Press (Bombay, 1940).
7. Bannerji, S.N.—A Nation in Making, (London, 1925)
8. Bannerji, W.R.—Indian Politics (Calcutta, 1898)
9. *Besant, Annie—How India Wrought for Freedom (London, 1915)*
10. Bhatnagar, Ram Ratan—Rise and Growth of Hindi Journalism (Allahabad, 1947)
11. Birdwood, Sir George—The Native Press of India (1879)
12. Charles, H. Heimsath—Indian Nationalism and Hindu Social Reform, (Bombay, 1964)
13. Chalapathy M.—The Press in India (New Delhi, 1968)
14. Chand, Tara—History of Freedom Movement in India, Vol. Two, Publication Division, Govt. of India (New Delhi, 1967)
15. Chatterji, A C.—India's Struggle for Freedom (1947)
16. Chintamani, C.Y.—Indian Politics Since the Mutiny, (Waltair, 1937)
17. Chirol, Sir Valentine—Indian Unrest (London, 1910).
18. Datta, K.K.—Social—Cultural Background of Modern India (Meerut, 1972)
19. Desai, A.R.—Social Background of Indian Nationalism. (Bombay, 1984)

20. George, T.J.S.– -The Provincial Press in India (New Delhi)
21. Ghosh, H.P.– Press & Press Laws in India (Calcutta, 1930)
22. Gopal, S.—British Policy in India (1885-1905), (1965)
23. Iyer, Viswanath—The Indian Press (1945)
24. Iyengar, A. Rangswami—The News Papers Press in India, (Banglore City, 1933)
25. Kautilya's Arthsastra, Book I
26. Kane, V.P.—History of Dharamsastra, vol. II, pt. I, (Poona)
27. Khare, Prem Shankar, The Growth of Press & Public Opinion in India (1857—1918), (Allahabad)
28. Kaur, Manmohan– Role of women in the Freedom Movement, (1857—1947), (Delhi, 1968)
29. Mahabharat (Add. 159. II)
30. Mani. A.D.—Journalism in India, New Delhi
31. Majumdar, R.C. –History of Freedom Movement, in India, vol. I, (1962), (2) British Peramountay & Indian Renaissance, vol IX & X
32. Majumdar, A—Congress & Congress men in Pre-Gandhian Era· (1885=1917) (Ist Ed.), (Calcutta, 1967)
33. Moitra Mohit—History of Indian Journalism, (Calcutta)
34. Murthy, N.K.—Indian Journalism (Origin, Growth & Development of Indian Journalism) from Ashoka to Nehru, (Mysore Ist Ed. 1966)
35. Narain, Prem—Press and Politics in India, (Delhi-6, 1969)
36. Natarajan, J.—History of Indian Journalism, Govt. of Indian Publication, (1954)
37. Natarajan, S.—A Century of Social Reform in India, (Bombay 1959)
38. ...—A History of Press in India, (Bombay, 1962)
39. Narasimhen, V.K.—The Press and the Administration (New, Delhi, 1961)
40. Nehru, J.L.—The Discovery of India, 2nd Ed., (Calcutta, 1946)
41. ...—Auto-Biography (1938)
42. Nehru, Rameshwari—The Harijan Movement

43. Panigrahi, Lalita—British Social Policy and Female Infanticide in India.
44. Prasad Beni—The Age of Imperial Unity, Ist Ed., (Bombay 1951)
45. Rai, Lajpat—The Arya Samaj
46. ——Young India, (Lahore, 1927)
47. Rizvi, S.A.A.— History of Freedom Struggle in Uttar Pradesh, (Lucknow, 1947)
48. Sanial, S.C.—History of the Indian Press, Article in the Calcutta Review (1907—1917)
49. Singh, G N.—Landmarks in Indian Constitutional and National Development (1933)
50. Sen, S.P.—Indian Press.
51. Srinivasan, C.R.—Press and Public, (1955)
52. S. P. Sharma : The contribution of Press in the Growth of Social and Political Consciousness in U. P. & Punjab ; 1858—1910 (Unpublished Thesis), 1976

श्रीकृष्ण 'मायूस' का

जीवनोपयोगी एवं बालोपयोगी साहित्य

१. कहानी जलियां वाले बाग की : इस पुस्तक में लेखक ने बड़ी ही सुरुचिपूर्ण भाषा में 'जलियां वाले बाग' के हत्या-काण्ड पर प्रकाश डाला है । सचित्र पुनर्मुद्रित संस्करण । ५-००
२. कहानी आजादी की आग की : इस पुस्तक में सरल एवं मधुर भाषा में स्वतंत्रता की लड़ाई के लिए किये गये प्रयत्नों का ऐतिहासिक ब्योरा है । सचित्र पुनर्मुद्रित संस्करण । प्रेस में
३. कहानी धरती के सुहाग की : इस पुस्तक में भारत के औद्योगिक एवं कृषि-क्षेत्र के प्रयासों का सुन्दर चित्रमय वर्णन है । भाषा सरल और सुबोध है । पुनर्मुद्रित संस्करण । ५-००
४. कहानी बच्चों के अनुराग की : इस पुस्तक में बच्चों के लिए परियों, जिन्नों, राजा-रानियों की सचित्र मनोरंजक कहानियाँ दी हैं । भाषा सरल एवं सुबोध है । पुनर्मुद्रित संस्करण । ५-००
५. कहानी राजपूती आन की : 'आन' के लिए राजपूतों ने अपनी आहुति दे दी । सारा संसार उनकी वीरता के गीत गाता है । प्रस्तुत पुस्तक में राजपूतों के शौर्य का सचित्र ऐतिहासिक वर्णन है । भाषा सरल और शैली ओजपूर्ण है । ५-००
६. कहानी मराठा मान की : मराठों के विकास से लेकर विनाश तक का सचित्र ऐतिहासिक वर्णन है । भाषा सरल है । ५-००
७. कहानी मुगलों की शान की : इस पुस्तक मे मुगल सम्राटों के नृशंस कार्यों का वर्णन है । ऐतिहासिक तथ्यों का निरूपण चमत्कारिक है । ५-००
८. कहानी शब्द-भेदी बाण की : शब्द-भेदी बाण के इतिहास का सरल वर्णन है । मुख्य पात्र चौहान-सम्राट पृथ्वीराज हैं । घटनाएँ ऐतिहासिक हैं । ५-००
९. कहानी ठाट-बाट की : बच्चों के मनोरंजन के लिए सुन्दर-सुन्दर शिक्षाप्रद सचित्र रोचक कहानियाँ हैं । ५-००
१०. कहानी खुदा जाट की : जाट जाति बड़ी ही चतुर और वीर है, इस पुस्तक में उसकी चतुराई और सूझ-बूझ की शिक्षाप्रद कहानियां हैं । ५-००
११. प्रीत किये दुःख होय : अन्तर्राष्ट्रीय महिला वर्ष के उपलक्ष्य में भावनात्मक 'उपन्यासिकाओं' का सुन्दर संग्रह । ७-००
१२. पर्वत और पगडंडी : स्त्री-पुरुष की समस्याओं पर ऐसा उपन्यास, जिसमें समाज की खलबली का चित्रण है, सरल भाषा और शैली प्रभावशाली है । १६-००

१३. **पिथौरा की पद्मनी :** समुद्र-शिखर गढ़ की राजकुमारी पद्मिनी और दिल्लीश्वर के प्रणय और पाणिग्रहण का ऐतिहासिक तथ्यपूर्ण वर्णन। उपन्यास। तृतीय सं० (प्रेस में) — प्रेस मे

१४. **चित्ररेखा :** सिंध और मुल्तान की प्रसिद्ध नर्तकी चित्ररेखा के प्रणय की कथा है। दिल्लीश्वर पृथ्वीराज चौहान और मुहम्मद गोरी के युद्ध का सजीव वर्णन। ऐतिहासिक उपन्यास। — प्रेस में

१५. **भ्रष्टाचार और हम :** समाज के प्रत्येक वर्ग द्वारा किये जाने वाले भ्रष्टाचार का भंडा-फोड। हास्य-व्यंग-विनोद और प्रतीकात्मक शैली। संशोधित द्वितीय संस्करण। — प्रेस में

१६. **नई डगर :** वर्तमान परिवेश में नारी की सामाजिक स्थिति का चित्रण। उपन्यास रोचक है। भाषा चटक और शैली ओजमयी है। संशोधित संस्करण। — प्रेस मे

१७. **कहानी बेटी काबूली खान की :** अफगानिस्तान के पठान सरदार की बेटी 'जीनत' जिसने 'मुरसान' के राजा महेन्द्रप्रताप सिंह के साथ स्वतन्त्रता-संग्राम में योग दिया की रोमांचक कहानी—भाषा सरल। — ५-००

१८. **कहानी अनुशासन पर्व की :** आपातकालीन स्थिति में देश ने चमत्कारिक उन्नति की है। इसका एक-सौ दिनों का सम्पूर्ण विवरण। बच्चों व बड़ों तक के लिए उपयोगी कृति। — ५-००

एवं

१९.	**बालकाण्ड :** डा० जगदीश नारायण बंसल	१०-००
२०.	**जिओ और जीने दो :** भरतराम भट्ट (नाटक)	७-५०
२१.	**अन्तिम दान :** डॉ० रामेश्वरनाथ भार्गव (नाटक)	७-५०
२२.	**निबन्ध रत्नावली :** डॉ० भटनागर	८-००
२३.	**हर मोड़ साक्षी है :** डॉ० धर्मवीर शर्मा (कविता)	१५-००
२४.	**रास्ते अलग-अलग :** प्रहलाद कंसल (उपन्यास)	१०-००

शीघ्र प्रकाश्य

१. **भक्ति-काव्य की दार्शनिक चेतना :** डॉ० नारायणदत्त वाजपेई — प्रेस में

२. **कर्णाटकी :** श्रीकृष्ण 'मायूस' — प्रेस में

एवं अन्य सभी प्रकार की पुस्तकें प्राप्त करने का एकमात्र स्थान।

राज पब्लिशिंग हाउस
पुराना सीलमपुर पूर्व, दिल्ली-११००३१

डा० श्रीपाल शर्मा, एम० ए० पी-एच० डी०

जन्म-स्थान	: ग्राम अंगदपुर जोहड़ी (मेरठ) (उत्तर प्रदेश)
जन्म-तिथि	: १ जनवरी, १९३८ ई०
शिक्षा	: एम० ए०, मेरठ विश्वविद्यालय, १९७०, पी-एच० डी० १९७६
साहित्य-साधना	: पुस्तकों, शोध जनरलों एवं पत्र-पत्रिकाओं मे लगभग पचास ऐतिहासिक लेख प्रकाशित हो चुके हैं।
रुचि	: संघर्ष एवं इतिहास-लेखन में। पत्रकारिता सम्बन्धी ज्ञान खोजने के जिज्ञासु।